CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दहरविद्या

प्रवक्ता

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीदक्षिणामूर्ति-
निरंजनपीठाधीश्वर श्री १०८ स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज
आचार्य महामण्डलेश्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

श्रीदक्षिणामूर्तिसंस्कृतग्रंथमाला–७०

दहरविद्या

प्रवक्ता

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीदक्षिणामूर्ति–
निरंजनपीठाधीश्वर श्री १०८ स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज
आचार्य महामण्डलेश्वर

प्रकाशक

श्रीदक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन
वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक

श्रीदक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन
डी ४९/९ मिश्रपोखरा वाराणसी २२१ ०१०

प्रथम संस्करण : २०६८ संवत्
१२२३ शंकराब्द
२०११ ईस्वी

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य पच्चास रुपयेमात्र

मुद्रक : सौरभ प्रिन्टर्स प्रा. लि.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशकीय

आत्मसाक्षात्कार वह अलौकिक अनुभव है जो मानव के अस्तित्व का, उसे मिले वैदिक प्रबोधन का, किं वा जगत्-सृजन का वास्तविक उद्देश्य है। स्वयं की सचाई जाने बिना संसार में, इह-पर किसी धरातल पर चाहे जो प्राप्त हो जाये, तृप्ति संभव नहीं, पूर्णता संभव नहीं, अशान्ति व मर-मिटना संभव नहीं। भगवान् भाष्यकार आचार्य शंकर द्वारा व्याख्यात वेदान्त दर्शन इसी उद्देश्य की पूर्ति से गतार्थ होता है। आत्मबोध के लिये उपनिषदों ने जो विविध साधनों का विधान किया उनमें अनेक उपासनायें भी हैं। आत्मा के निरावरण में साक्षात् सक्षम न होने पर भी इन उपासनाओं का मोक्षलाभ में योगदान शास्त्र-न्याय-अनुभव सम्मत है। श्रवणादि ही साधन हैं, उनके योग्य अधिकारी के लिये ही वे कारगर हो पाते हैं, बाकी मुमुक्षु उनमें सर्वथा तत्पर हो नहीं पाते अतः यथाशक्ति श्रवणादि करने पर भी उन्हें लाभान्वित होने का स्पष्ट अनुभव नहीं होता। इसलिये मोक्षेच्छुकों को चाहिये कि उपनिषदों में बतायी परमात्म-उपासना का नियमतः अभ्यास करें। आचार्य महामण्डलेश्वर श्री १०८ **स्वामी महेशानन्दगिरिजी महाराज** ने अनेक प्रवचन-शृंखलाएँ इन उपासना-प्रसंगों पर व्यक्त कीं, अनेक प्रकाशित भी हैं। ईस्वी सन् १९७६ में दिल्ली संन्यास आश्रम की दैनिक कथा के क्रम में मार्च २५ से अप्रैल ११ तक चली उनकी कथा छान्दोग्य उपनिषत् के अन्तिम भाग में आयी **दहरविद्या** के विषय पर थी।

स्वामी श्री महानन्दगिरिजी द्वारा लिखी तभी जा चुकने पर भी इसका प्रकाशन अब सम्भव हुआ है। इसका अक्षर-संयोजन श्री अशोक गुप्त ने सेवाभाव से किया है। सभी आस्तिक इसके अध्ययन से परमात्मोपासना में प्रेरित हो कल्याण के भागी बनें यही इस प्रकाशन का उद्देश्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

प्रवचन	पृष्ठ
प्रथम	१
द्वितीय	१८
तृतीय	३६
चतुर्थ	५२
पंचम	७२
षष्ठ	८८
सप्तम	१०६
अष्टम	१२२
नवम	१४०
दशम	१५७
एकादश	१७६
द्वादश	१९२
त्रयोदश	२०६
चतुर्दश	२२२
पञ्चदश	२३८
षोडश	२४१
सप्तदश	२५०
अनुबन्ध	२६३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

दहरविद्या

प्रथम प्रवचन

२५.३.७६

छान्दोग्य उपनिषद् के आठवें अध्याय की दहरविद्या के बारे में कुछ विचार करेंगे। छान्दोग्य उपनिषद् सामवेद की कौथुमी शाखा की उपनिषद् है। ऋग्वेद के मंत्र को छन्द कहते हैं। मंत्र का ही दूसरा नाम छन्द है। 'छदि छादने' धातु से निष्पन्न छन्द शब्द बताता है कि यह किसी चीज़ को ढाँकता है। भाषा में भी छन्द का तात्पर्य नियत अक्षर और नियत पादों की रचना होता है, जिसको साधारण भाषा में पद्य कह देते हैं। छन्द में अक्षर भी नियत होते हैं, इस छन्द में आठ अक्षर होंगे, इसमें बारह, इसमें चौबीस इत्यादि। इसी प्रकार पाद भी निश्चित होते हैं, अमुक छन्द में तीन पाद या चरण अथवा दो चरण होंगे। नियत पाद अक्षर योजना को लोक में छन्द या पद्य कहते हैं। नियत पाद अक्षरों के अंदर तत्त्व को ढाँककर रखा जाता है अर्थात् नियत पाद और अक्षर के द्वारा किसी विषय को बताया जाता है, इसलिये वह छन्द हुआ। चूँकि ऋग्वेद के मंत्र नियत पाद-अक्षरों वाले हैं इसलिये उन्हें छन्द कहते हैं। यदि उन छन्दों का गान किया जाये तो वे छंदोग हो जाते हैं। मंत्र का गान सामवेद में होता है। ऋग्वेद के मंत्रों को जब भिन्न-भिन्न प्रकार से गाया जाता है तब उसका नाम साम है। सामवेद में ऋक् से भिन्न कोई मंत्र नहीं है, केवल गान के भेद से ही भेद है। इसीलिये ऋक् को साम की योनि बताया जाता है। ऋक् वह रचना है और साम गान का प्रकार, 'गीतिषु सामाख्या।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंत्र के अर्थ में पाद और अक्षर शब्दों का प्रयोग किया। साधारण रूप से पाद और अक्षर हो ही गये, लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से वेदों के अंदर किसी भी मंत्र की किसी न किसी छन्दरूपता का प्रतिपादन किया गया है अतः उसका कुछ गूढ तात्पर्य है। अक्षर परब्रह्म परमात्मा को कहते हैं 'न क्षरति इति अक्षरः।' अक्षर का एक अर्थ क ख ग आदि वर्ण होता है लेकिन अक्षर वस्तुतः परमात्मा को ही कहते हैं। इसीलिये प्रकृति और प्रकृति से उत्पन्न पदार्थों को क्षर, और परमात्मा को अक्षर कहकर गीता में क्षराक्षरयोग कहा जाता है। उपनिषदों में भी 'क्षरं प्रधानमृ अमृताक्षरं हरः क्षरात्मानौ ईशते देव एकः' इत्यादि स्थलों में प्रकृति से भिन्न प्रतिबिम्ब अर्थात् जीव को भी अक्षर शब्द से कहा है। स्वरूप से ब्रह्मरूप होने से जीव अक्षर कहा गया और उसका व प्रकृति का शासन करनेवाला हर अर्थात् भगवान् शंकर हैं। इस प्रकार प्रतिबिम्बरूप होने के कारण जीव को भी अक्षर शब्द से कह रहे हैं। प्रत्येक मंत्र में अक्षर परमात्मा छिपा हुआ है। इसी दृष्टि से वेदों की भाषा गूढ भाषा कही जाती है क्योंकि प्रत्येक मंत्र में किसी न किसी प्रकार से परमात्मा का प्रतिपादन अवश्य है। इतना ही नहीं, पद का मतलब है कि जो चीज़ तुमको चलकर कहीं पहुँचा दे। अपने पैरों को भी पद इसीलिये कहते हैं कि इनसे चलकर हम लोग कहीं पहुँचते हैं। 'पद्यते गम्यते अनेन इति' इस व्युत्पत्ति से, जिससे चलकर कहीं पहुँचा जाये अर्थात् जो हमें कहीं पहुँचाये उसे पद कहते हैं। प्रत्येक मंत्र के अंदर जैसे अक्षर परमात्मा का प्रतिपादन एक विशिष्ट प्रकार से नियत है, वैसे ही उस परमेश्वर की उस-उस स्थिति को प्राप्त करने के मार्ग या साधन भी बताये गये हैं इसीलिये पाद भी नियत हैं। मंत्र वह हुआ जिसके अंदर साध्य अक्षर परमात्मा नियत है। परमेश्वर के किसी रूप की, किसी उपाधि की हम प्राप्ति कर सकें, वह भी उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंत्र में बताया जाये और वह कैसे प्राप्त करें, उसका साधन क्या है, अर्थात् उपाय भी बताया जाये। इसलिये उसे नियत पादवाला भी कह दिया। प्रत्येक मंत्र परमात्मा के विशिष्ट रूप को बताता है और साथ में किसी-न-किसी विशिष्ट साधना को भी बताता है, यही उसकी छन्द-रूपता है। शब्द के द्वारा ही विचार को ढाँका जाता है जैसे मनुष्य अपने शरीर को वस्त्र से ढाँकता है, उसी प्रकार से किसी भी बात को शब्द से ढाँका जाता है।

जैसे मनुष्य अपने शरीर को वस्त्र से ढाँकता है उसी प्रकार से किसी भी बात को शब्दों से ढाँका जाता है। इसका मतलब है कि शब्द हमेशा बुद्धि में रूढ किया जाता है। व्यावहारिक पदार्थ बुद्धि में चढ़ाये जाते हैं। इसी को रूढार्थ कहते हैं। रूढ मायने चढा हुआ, संस्कृत में रुह धातु का यह अर्थ है। हमारी बुद्धि में, लौकिक व्यवहार में शब्दों का प्रयोग करते-करते उसका एक अर्थ चढ जाता है। जिस शब्द का प्रयोग करते हो, तुमको जो चीज़ याद आ जाती है, वह उसका रूढार्थ कहा जाता है। परमात्मा के बारे में हम लोगों ने अनुभव तो कर नहीं रखा है। जैसे किसी व्यक्ति ने यदि कमल देखा नहीं है, जब हम कहते हैं 'कमल' तो इस शब्द से उसे कोई ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि कमल का उसे कोई अनुभव नहीं है। वह पूछता है कि कमल क्या है? उसकी बुद्धि में एक शब्द 'पुष्प या फूल' चढा हुआ है। फूल की कुछ समानता जातिरूप से कमल और गेंदे दोनों में है, पुष्प्यरूप जाति दोनों में है। यद्यपि कमल और गेंदे के पात एक जैसे नहीं हैं, उनकी सुगंधि, रंग और परिमाण, लंबाई, चौड़ाई, वृत्ताकार इत्यादि कुछ भी एक जैसा नहीं है। कमल और गेंदा जिस स्थान पर उत्पन्न होते हैं वह स्थान भी एक जैसा नहीं है। यों अनेक भेद होने पर भी फूलरूप जाति की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समानता को लेकर कहना पड़ता है कि कमल एक फूल है। यह सुनते ही कि कमल एक फूल है मनुष्य को संतोष होता है कि मैंने समझ लिया। क्योंकि उसने गेंदे को देख रखा है इसलिये वह सोचता है कि गेंदे के जैसी ही कोई चीज़ कमल है। वह कमल ढूँढना छोड़ देता है और मिथ्या संतोष में बैठ जाता है कि कमल को जान लिया। फिर किसी काल में यदि वह कमल देखता है तो आश्चर्य-चकित हो कर कहता है कि 'उससे यह बिलकुल भिन्न चीज़ ही है! ऐसा भी फूल हो सकता है ऐसी मैंने कल्पना ही नहीं की थी।' प्रत्येक शब्द का एक विशिष्ट अर्थ मन में रूढ हो जाता है। उस रूढार्थ का सहारा लेकर ही जिस चीज़ का अनुभव नहीं हुआ है, जो अननुभूत पदार्थ है, उसको दिखाना पड़ता है, समझाना पड़ता है। परंतु यदि उसको सुनकर मन में संतोष हो जाये, तो मानो उन शब्दों ने उस पदार्थ को ढाँक दिया। यदि इसकी जगह, मन में आये कि कमल फूल है तो समझना चाहिये कि कैसा फूल है; फूलों की दुकान में जाकर, फुलवाड़ी में जाकर भिन्न-भिन्न लोगों से पूछकर पता लगाता है कि कमल कैसा फूल होता है, तो अन्ततोगत्वा वह उसका अन्वेषण करके उस फूल को पा जाता है और उसे सही-सही समझ लेता है। यदि उसको यही नहीं बताया गया होता कि कमल फूल है तो वह बेचारा कमल को कैसे ढूँढता? किसी ऐसे व्यक्ति से पूछ लिया जिसने कमल नामक लड़का ही जाना है, वह कह देता है 'कमल मेरा बेटा है' तो श्रोता गलत जगह ढूँढने लगता है। कमल फूल है - यह ज्ञान यदि तुमको ढूँढने की तरफ प्रवृत्त करता है तब तो यह ज्ञान अंततोगत्वा तुम्हारे अपरोक्ष ज्ञान का हेतु होकर कमल का ज्ञान कराता है। यदि उसके द्वारा एक मिथ्या संतोष हो जाता है कि कमल को जान लिया, तो वह उल्टा उसके अन्वेषण को रोक देता है। इसलिये कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया है कि शब्द वस्तुतः तत्त्व को ढाँक देते हैं, आच्छादित कर देते हैं, शब्दों के द्वारा तत्त्व छिप जाता है।

वस्त्र के द्वारा ढके हुये मनुष्य को देखकर, मनुष्य को यदि ढूँढने चलें उसकी वास्तविकता को जानने चलें, तो उसका अपरोक्ष हो जाता है। एक बहुत अच्छे चित्र बनानेवाली कोई औरत थी, उसका विवाह हो गया था। विवाह होने पर पति को तो देख ही लिया था। चित्र बनाने में जुट गई। एक-दो दिन के बाद पति उधर से निकला तो उसे चित्र बनाते हुये देखा। पूछा 'किसका चित्र बना रही हो?' बोली 'आपका ही चित्र बना रही हूँ।' उसने पूछा कि 'मुझे तूने कहाँ देखा है?' पति विचारशील सत्संगी था। पत्नी ने कहा कि देख तो रही हूँ! पति कहने लगा कि 'अभी कहाँ देखा है, अभी तो तूने मेरा ढका हुआ रूप देखा है। मेरी वास्तविकता को तूने कहाँ देखा है? अभी तो तू नई-नई आई है, मैं मीठा-मीठा बोलता हूँ। जिस दिन रोटी जलाकर देगी, उस दिन मेरा गालीवाला रूप देखना। पुत्र उत्पन्न होगा और गलती करेगा तो मेरा थप्पड़ मारनेवाला रूप देखना।' जिस समय मेरे व्यापार में अधिक लाभ होगा, उस समय मेरा दर्पवाला रूप भी देख लेना और जिस समय धन का घाटा होगा उस समय मेरे बुझे हुये रूप को भी देख लेना। मैं केवल मीठा ही नहीं हूँ। तूने अभी मुझे कहाँ देखा है? यही बात श्रुति भगवती स्वयं कहती है उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचं उतत्वा श्रण्वन्। देखते हुये भी मनुष्य मुझे नहीं देखता। वाणी ही मेरा रूप है। मुझ वाणीरूप वेद को अनेक लोग देख के भी नहीं देख पाते। इस वाणी को बहुत बार सुनने पर भी नहीं सुन पाते। ऐसा नहीं कि मनुष्य बहरा है या अंधा है, किंतु अंधा और बहरा है इसलिये कि उस तत्त्व के अंदर प्रवेश करनेवाले दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोत्र उसके पास नहीं हैं। इसका मतलब यह नहीं कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई तीसरी आँख निकल आयेगी! हीरे के खण्ड को जौहरी देखता है और उसी को ग्वाला भी देखता है। जौहरी कहता है कि वह हीरे का खण्ड दस लाख का है। ग्वाला कहता है कि पासवाला काँच ज़्यादा चमक रहा है। जौहरी की कोई तीसरी आँख थोड़े ही निकली है। समझ की ही तो आँख है। इसी प्रकार श्रुति कहती है कि उसे देखते हुये भी नहीं देख रहे हैं अर्थात् उसे समझनेवाली बुद्धि अभी नहीं आई है। जो रूढि को लेकर बैठ जाये, आगे ढूँढे नहीं कि सच्ची चीज़ क्या है, तो वह बिना जाने ही संतुष्ट हो जाता है।

वेद को अभिव्यक्त करनेवाला स्वयं परमात्मा ही है।

'वेदस्य पुरुषः कर्त्ता न हि यादृशतादृशः।
किंतु त्रैलोक्यरचनानिपुणः परमेश्वरः।।'

स्मृतियों में बताया कि वेद का बनानेवाला कोई सामान्य पुरुष नहीं है वरन् तीनों लोकों की रचना में जो अत्यंत निपुण परमेश्वर है, उसी ने मार्गदर्शन कराने के लिये वेदों की रचना की। वह रचना भी कैसी की 'देवस्य पश्य काव्यं त्वं' अथर्ववेद में बताया कि परब्रह्म-परमात्मा का रूप देखो। केवल 'सुनो' नहीं कहा, क्योंकि परमेश्वर ने जैसे वेद की रचना की है, वैसे ही उसका बाह्य रूप जगत् भी तो बना दिया। केवल नाम ही नहीं, सारा जगत् भी उसी ने बनाया है। यही उसका काव्य है। यह कभी मरता नहीं है। यह अनादि अनंत सृष्टि कभी मरती नहीं। 'न जीर्यति' न कभी बुड्ढी होती है। हम इसमें आकर बुड्ढे भी हो जाते हैं, मर भी जाते हैं; निकल भी जाते हैं और प्रायः करके वापिस भी आ जाते हैं; किंतु फिर ताज़े के ताज़े बनकर आते हैं! प्रतिदिन सूर्य उदय होता है, प्रचण्ड मार्तण्ड भाव को प्राप्त होकर पुनः अस्त हो जाता है, लेकिन पुनः सवेरे ताज़ा होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ जाता है। कोई कमी उसकी ताज़गी में नहीं आती। गंगा की धारा चातुर्मास्य में बहुत बढ़ जाती है और गर्मी तक धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। मनुष्य समझता है कि गंगा जी सूख जायेंगी, तब तक पुनः वर्षा होकर गंगा की धारा पुनः वैसी की वैसी बहने लगती है। अनाज उत्पन्न होता है, हम लोग खाते चले जाते हैं। सोचते हैं कि छप्पन करोड़ हम यहीं खानेवाले और लगभग तीन अरब दूसरे खानेवाले, अनाज खत्म हो जायेगा; लेकिन यह अनाज है कि कभी खत्म नहीं हो रहा है! इसलिये ईश्वर का काव्य न कभी मरता है, न कभी बुड्ढा होता है। इसके अंदर तत्तद् व्यक्ति खत्म होते चले गये लेकिन काव्य चलता चला जा रहा है। जैसे उसने यह सृष्टिरचना की, वैसे ही इसे बतानेवाले जिस काव्य की रचना की वह वेद भी अजर अमर है। कई बार शंका होती है कि 'यह घिसा-पिटा पुराना वेद होगा, इस वैज्ञानिक युग में कोई नई बात, कोई नया मार्ग भी होगा?' बहुत वर्ष पूर्व हमको किसी ने चिट्ठी में लिखा था कि क्या इस जैट युग के अंदर बैलगाड़ी के युग की उपनिषदों से काम चलेगा? हमने जवाब दिया था कि जैट में घूमकर वहाँ पहुँच पाओ, पहुँच जाना, नहीं तो हमारी पुरानी बैलगाड़ी में आकर बैठ जाना, यह कभी किसी को मना नहीं करती और पंक्चर भी नहीं होती है! कई वर्षों के बाद वे व्यक्ति हमारे पास आये। जैट में बहुत घूम लिये लेकिन कहाँ शान्ति मिलती है! यह बैलगाड़ी हमेशा तैयार है। न यह बुड्ढी होती है और न यह मरती है क्योंकि इसके अंदर साध्य ब्रह्म और साधन धर्म छिपा हुआ है।

प्रत्येक मंत्र के अंदर वेदों के द्वारा प्रतिपाद्य केवल दो ही विषय हैं - ब्रह्म और धर्म। ब्रह्म वह तत्त्व है जिसको प्राप्त करना है, जो साध्य है। धर्म मायने वह साधन जिसके द्वारा ब्रह्म प्राप्त करना है। सामवेद की विशेषता क्या है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदमी किसी चीज़ को ठीक तरह से कब गा सकता है? जब उसका अर्थ, जिस चीज़ को वह गा रहा है, हृदयंगम हो जाये। जो चीज़ तुम्हारे दिल को गम्भीरता से स्पर्श करेगी, वही चीज़ तुम्हारे मुख से गानरूप से निकलेगी। जो चीज़ हृदय को स्पर्श नहीं कर पायेगी, उसको कहोगे तो सही लेकिन गान नहीं हो पायेगा। बड़े-बड़े ऋषियों ने बहुत से उपदेश किये। क्या कारण है कि केवल भगवद्-मुख से निस्सृत काव्य को ही गीता कहा गया? गीता अर्थात् गाई गई। भगवान् के अंदर वह तत्त्व इतना भरा हुआ था, अनुभव ऐसा पूर्ण था कि उनके लिये वह बैठकर विचार करने का, विश्लेषण करने का या समझने का विषय नहीं था। जिस चीज़ की पूर्ण अनुभूति होती है, वही पूर्णरूप से मुँह से प्रसृत होती है। इसीलिये जिन मंत्रों का साक्षात्कार ऋषियों ने किया उन्हें वे सामवेद के अंदर गा पड़े। इसी दृष्टि से उसे छन्दोग कहा गया।

छान्दोग्य सामवेद की कौथुमी शाखा की उपनिषद् हुई। उस छान्दोग्य उपनिषद् के अंदर पहले अनेक उपासनायें बताईं। फिर छठे अध्याय में उपनिषदों की प्राणभूत तत्त्वमसि विद्या श्वेतकेतु को बताई जिसके विचार को वेदांतों में बार-बार किया जाता है। जिसका उपदेश श्वेतकतु को किया गया था उसमें मूलरूप से बताया कि सृष्टि का कारण ही तुम्हारे हृदय में त्वंरूप से प्रविष्ट हुआ बैठा है। 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' से प्रारंभ किया। बार-बार श्वेतकेतु को कहा कि तू वही है जो सर्वव्यापक अखण्ड चिन्मात्र परब्रह्म परमात्मा है; वही तुम्हारे अंदर है, वह तुम ही हो। अनेक दृष्टान्तों से बताया। जब कहा 'तत्त्वमसि' तब मनुष्य अहं के द्वारा उपहित चेतन को तो पकड़ पाया लेकिन अहं से अनुपहित चेतन पकड़ में नहीं आता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' लेकिन साथ में यह समझना है कि मैं सब कुछ हूँ, 'सर्वम् खल्विदं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्म' इसे बताने के लिये सनत्कुमार विद्या सातवें अध्याय में आई। छठे अध्याय में उस परब्रह्म परमात्मा को तुमसे अभिन्न बताया और सातवें में भूमा विद्या का उपदेश किया। सर्वत्र व्यापक आनंद परब्रह्म ही तुम हो। ब्रह्म कौन? 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति यदल्पं तन्मर्त्यम्', इसको विस्तार से बताया। छठे और सातवें अध्याय में जो बात बताई गई, वह अनुभव कैसे की जाये? इस अनुभव को बतानेवाला यह आठवाँ अध्याय 'दहरविद्या या दहरोपासना' है।

इसे दहराध्याय या दहरोपासना क्यों कहते हैं? जहाँ हमें गुह्य का अनुभव होता है, वह हृदय गुफा है। बार-बार उपनिषदों में हृदय गुफा को ही अनुभव का स्थान बताया है। वेदों को जो चीज़ बतानी है वह जैसा कह आये हैं कि 'आरूढ' के द्वारा बतानी है। इसलिये शब्द वे प्रयोग करने पड़ेंगे जिनके अर्थ तुम्हें ज्ञात हैं किंतु उनके अभिप्रेत अर्थ भिन्न होंगे। जैसा अभी बताया कि फूल की कुछ समानता को लेकर हमको कमल का फूल कहना पड़ता है, नहीं तो उपदेश कैसे किया जाये; इसी प्रकार हम कहते हैं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। सत्य तुम्हारी दृष्टि में क्या है? जो चीज़ जैसी देखी है, जैसी सुनी है उसे वैसे ही कहना - यह तुम्हारी दृष्टि में सत्य है। सत्य का मतलब हुआ कि जैसा देखा सुना है, वैसा बताओ। विचार करो, ब्रह्म को सत्य भी कह रहे हैं और यह भी कह रहे हैं कि ब्रह्म कभी देखा-सुना नहीं जाता! वह है जो आँख से न देखा जा सके, कान से न सुना जा सके और सत्य को तुम समझते हो जो आँख-कान से विषय किया जा सके! वैसा होना सत्य का रूढ अर्थ हुआ जैसा देखा सुना, जबकि ब्रह्म देखा सुना जाता नहीं है, वह तो उससे परे है। जैसा तुमने देखा वह कभी बदलेगा नहीं और जो तुमने सुना वह भी नहीं बदलेगा। तुमने हमसे आकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा कि देवदत्त चोर है। हमें दस साल के व्यवहार से निश्चय हो गया कि देवदत्त चोर नहीं है। इतने पर भी यदि कोई पूछे कि यज्ञदत्त ने आपको क्या कहा था? तो यही कहना पड़ेगा कि उसने कहा था, देवदत्त चोर है। सुनी हुई बात बदलेगी नहीं। हमारा व्यवहार कह रहा है कि देवदत्त चोर नहीं है। लेकिन इससे क्या यज्ञदत्त का कहा हुआ बदल जायेगा? हमको रस्सी में साँप दीखा। रोशनी आ गई , पता चला कि यह साँप नहीं है । निश्चय हो गया कि यह साँप नहीं था। यह निश्चय होने पर भी मुझे साँप दीखा था - यह क्या कभी बदलेगा? साँप नहीं था यह निश्चय होगा, लेकिन दीखा तो था ही। जो चीज़ बदलती नहीं, वह सत्य होती है। सत्य शब्द का रूढ अर्थ है - जैसा देखा सुना उससे समानता, इस 'नहीं बदलने' को लेकर हमें ब्रह्म का उपदेश करना पड़ा जो *कभी* बदलता नहीं। सत्य का लक्षण हुआ कि विवेकपूर्वक निश्चित किये स्वरूप का जो कभी परित्याग न करे। किंतु पहले-पहल इस अर्थ में सत्य-शब्द प्रसिद्ध नहीं हो पाता क्योंकि लौकिक अनुभव में ऐसी कोई चीज़ उपलब्ध नहीं। सीधा ही कह दिया जाये कि 'जो कभी नहीं बदलता वह सत्य है' तो समझ नहीं सकोगे क्योंकि कभी न बदलने वाली चीज़ तुमने आज तक अनुभव की ही नहीं है। तुम सोचोगे, लम्बे समय तक रहनेवाली चीज़ें सत्य होंगी! तुम्हारी दृष्टि में ज़मीन, आसमान आदि नहीं बदलते। इन्हीं को न बदलनेवाला समझते हो जबकि ये सब के सब नश्वर हैं। कठोपनिषत् की श्रुति कहती है कि ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति - दोनों शक्तियों को मृत्युरूपी अचार से मिलाकर वह ब्रह्म खा जाता है! तुम 'न बदलनेवाले' का अर्थ समझोगे दीर्घकाल में बदलनेवाली चीज़ें, इसी को पकड़कर बैठ जाओगे। इसलिये 'सत्यं ब्रह्म' से उपदेश करके उस रूढि के सत्य शब्द को अव्यभिचरित अर्थ में ले जाना पड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार 'ज्ञानं ब्रह्म' में ज्ञान से प्रतीति घट पट आदि के ज्ञान की होती है। ऐसे ही ब्रह्म को जान लेंगे - ऐसा सोचते हो। ब्रह्म ऐसे ज्ञान का विषय है ही नहीं बल्कि घटज्ञान, पटज्ञान,मठज्ञान, कटज्ञान जिससे हो रहे हैं वह ज्ञान ब्रह्म है। ज्ञान शब्द रूढ हुआ घटज्ञान आदि के अंदर और वहाँ से हमें तुम्हें ले जाना है वहाँ जो इस प्रकार से कभी अनुभव में नहीं आता बल्कि अनुभूतिरूप है। जिस समय तुमको ज्ञान हो रहा है, उस समय तुम्हारा चेतन स्फुरित होता है। ज्ञानहीनावस्था में तुम अचेतन हो, जड हो। ब्रह्म जड अवस्थारूप नहीं है। शून्यरूप, अचेतनरूप नहीं है बल्कि जैसे ज्ञान में स्पष्टता है, अज्ञान का भी वैसा ही स्पष्ट भान है। उस तरफ ले जाना है। वेद जब किसी भी चीज़ का उपदेश करता है तब उसके सामने समस्या नये शब्दों को गढ़ने की नहीं है कि ब्रह्म के लिये नये शब्द गढ़कर रख दिये जायें। बहुत-से लोग समझते ऐसा ही हैं। कहते हैं ब्रह्म अनामी, अरूपी है। उसे अनामी, अरूपी कहेंगे तो तुम्हारी समझ में क्या आयेगा? बात शुरू करो जो नाम-रूप हमारी समझ में आ रहे हैं उनसे, फिर आगे बढ़ो। उपदेशक की विशेषता यह है कि तुम जहाँ हो, वहाँ से अंगुली पकड़कर आगे ले जाये। विशेषता यह नहीं है कि केवल कह दिया कि 'तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा, तुम लायक या योग्य नहीं हो' अगर जिज्ञासु समझने में इतने लायक होते तो वक्ता के पास क्यों आते? नहीं समझ पा रहे हैं, यह स्पष्ट है। वक्ता के पास इसी आशा को लेकर आये थे कि वह समझा सकेगा। वह समझा नहीं सके तो नाकामयाब वह हुआ, न कि श्रोता। वेद ऐसा नहीं करता कि नये-नये शब्द अनामी-अरूपी इत्यादि बना दे जो किसी की समझ में ही न आयें। इसलिये वेद ने प्रसिद्ध शब्दों को लिया जिनको तुमने अनुभव किया है। सत्य, ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द तुम्हारे जाने हुये शब्द हैं। इनके द्वारा धीरे-धीरे पहुँचाना वहाँ है जो इन सबसे परे है।

इसी प्रकार से उस परमात्मा की उपलब्धि के स्थान को गुफा या गुहा शब्द से कहा। तैत्तिरीय उपनिषद् कहती है 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायाम्।' यहाँ गुहा शब्द कहा। बृहदारण्यक में भी कहा कि पुरुष इस गुहा में छिपा हुआ है। यहाँ छान्दोग्य उपनिषद् में भी गुहा शब्द से कहेंगे। गुहा का मतलब यह नहीं समझ लेना कि सचमुच कोई पत्थर का पहाड़ है जिसके अंदर सुरंग है, उसमें मशाल लेकर जायेंगे तो ब्रह्म मिल जायेगा! गुहा में धीरे-धीरे पैर जमाकर प्रवेश करना पड़ता है। प्राचीन तक्षशिला विश्वविद्यालय था, उसमें बच्चों को भर्ती करते समय उनकी परीक्षा की जाती थी। आजकल की प्रवेश-परीक्षायें बच्चों की योग्यता की परीक्षा नहीं हैं। हमारे एक प्रिय मित्र सुना रहे थे कि उनकी लड़की किसी अच्छे स्कूल में भरती होने गई। स्कूलवालों ने कहा कि यह भर्ती होने लायक नहीं है। ब्राह्मण की लड़की है, पिता उसे पढ़ाते-लिखाते रहते थे, उन्होंने उससे पूछा कि विद्यालय में पूछा क्या? उसने कहा 'मुझसे यह प्रश्न पूछा गया कि तुम यहाँ कैसे पहुँची हो, मोटर में या किसी और वाहन से? मैंने कहा कि मैं रिक्शा में आई हूँ। बस, उन्होंने कहा - जाओ।' इसी से उन्होंने लिखकर भेज दिया कि लड़की भर्ती नहीं हो सकती है! पिता कहने लगे 'लड़की फेल नहीं हुई है, लड़की का बाप फेल हुआ है! मोटर में जाने वाली होती तो भर्ती के लायक होती।' इसी प्रकार परिचय, धन आदि के प्रयोग से वर्तमान काल में विद्यालयों में प्रवेश हो रहे हैं, बच्चों की योग्यता की परीक्षा से नहीं। लेकिन हमारे प्राचीन विश्वविद्यालयों में ऐसा नहीं था। तक्षशिला में परीक्षा का प्रकार था कि एक अंधेरी गुफा में एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरफ से घुसकर दूसरी तरफ से निकलना था। उसके बीच में एक बड़ा घण्टा लटका था, जगह छोटी-सी थी। यदि उसमें से घुसकर जाते समय एक धम्म की आवाज़ हुई और बच्चा नीचे से होकर बाहर निकल आया तो उसे उत्तम वर्ग में भर्ती कर दिया जाता था। यदि एक बार टन की आवाज़ हुई तो उसे मध्यम वर्ग में भर्ती किया जाता था। यदि एक बार से ज़्यादा आवाज़ हुई तो उसे वापिस भेज देते थे कि भर्ती होने के लायक नहीं है! बात क्या थी? जो व्यक्ति उत्तम वर्ग में जाता था वह जब उसमें घुसता था तो यह सोचकर कि अंधेरा है, धीरे-धीरे हाथ-पैर जमा कर चलता था। यह उत्तम बुद्धिमान् का लक्षण हुआ। घण्टा टोह लेता था और घण्टेवाली जगह पर नीचे बैठकर निकल जाता था। जिससे टन की आवाज़ होती थी, वह चलता तो था बिना टटोले हुये, उसका माथा घण्टे में लगता था पर तब समझ लेता था कि यहाँ कोई चीज़ लगी हुई है अतः फिर सँभलकर नीचे हो जाता था। वह मध्यमवर्गी हुआ। जिसकी दो-तीन बार आवाज़ आई उसने टटोला नहीं, इतना ही नहीं, उसमें बार-बार अपना सिर पटका। वह जाकर खेती करे, पढ़कर क्या होगा! इस प्रकार की छोटी-छोटी परीक्षायें होती थीं जिनसे योग्यता का पता लग जाता था।

हम लोग गुहा में जाते हैं तो बड़ा सँभल-सँभल कर चलना पड़ता है, जल्दबाजी से काम नहीं होता। इसी प्रकार जब हम ब्रह्म का अन्वेषण करते हैं, ब्रह्म को ढूँढते हैं तो जल्दी बाजी का काम नहीं है। धीरे-धीरे सँभल-सँभल कर टटोलकर चलना होगा। दूसरी बात, गुहा चारों तरफ से सुरक्षित होती है। प्रवेश का स्थान छोटा होता है, आगे जगह बड़ी होती है। लेकिन वह स्थान सुरक्षित होता है। गुहा के अंदर पाँच सौ आदमी बैठे हों और गुहा के दरवाज़े पर एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंदूकवाला आदमी बैठा हो तो पाँच सौ को बचा लेगा। इसी प्रकार परमेश्वर का अन्वेषण भी चारों तरफ से रक्षित करना पड़ता है। आँख का दरवाज़ा खुला हुआ, कान का दरवाज़ा खुला हुआ, नाक का दरवाज़ा खुला हुआ, जीभ का दरवाज़ा खुला हुआ - इन सब द्वारों से आ - जा रहे हैं; ऐसे स्थल के अंदर ब्रह्म का अन्वेषण करोगे तो कैसे काम चलेगा, क्योंकि ये ही तो सब दुश्मन हैं। ये इन्द्रियाँ किस लिये बनाई गई हैं? ब्रह्मा जी सृष्टि बनानेवाले हैं, उन्होंने कैसी सृष्टि बनाई है? एक नियम हुआ करता है कि कोई आदमी जहर का वृक्ष लगा दे तो भी वह उसे अपने हाथ से नहीं काटना चाहता। 'विषवृक्षोपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुम् असाम्प्रतम्' कई बार ऐसी समस्या आ जाती है। पिता ने एक दुकान खोली। उसके बाद पिता का काम बढ़ गया और चार दुकानें हो गईं। पहलेवाली मनिहारी की छोटी-सी दुकान रह गई। नौकरों का वेतन तो एक ही हिसाब से रहेगा। जिन दुकानों में लाखों रुपये कमा रहा है वहाँ अच्छा वेतन देकर भी लाभ रहता है। मनिहारी की दुकान में दो सौ रुपये मुनीम ने और दो सौ रुपये दरबान ने ले लिये तो उसमें क्या बचना है! इसलिये उसमें घाटा चल रहा है। लड़का बराबरी का हो गया। एक-दो साल तक देखा, मुनीम को डाँटा। पिता से कहता है 'यह दुकान बन्द कर देनी चाहिये'। वह कहता है 'पहले अच्छा फ़ायदा होता था, इस बार माल ज़्यादा मँगाऊँगा'। वह जानता है कि इस एक से ही चार दुकानें चली हैं। लड़का समझता है कि पिताजी बेवकूफ़ हैं, हर बार टाल देते हैं जबकि घाटा हो रहा है। पिता बेवकूफ़ नहीं है, वह सब समझता है। जिस दुकान पर बैठकर आज के दिन चार दुकानों का मालिक बन गया, वह उसे कैसे बन्द कर दे? जब तक जीवित है, बन्द नहीं कर पाता। यही समस्या ब्रह्म की है। जिस वर्णाश्रम का पालन करके, जिन उपासनाओं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा यह निश्चय हुआ कि ' न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्माः' कि इन सारी चीज़ों में कोई तत्त्व नहीं, सब एक जैसी मिथ्या हैं, जिस साधन से इस स्थिति में पहुँचा, उसे अपने हाथ से कैसे उखाड़ सकता है! अतः तत्त्वबोध होने पर भी शम-दम का परित्याग नहीं हो सकता। ब्रह्माजी ने जब इन्द्रियाँ बनायीं तब उन्हें सृष्टि करनी थी। उन्होंने सोचा कि यह सृष्टि चलेगी कैसे? जब पहले-पहल महाप्रलय से उठे थे तो सत्त्वगुण बहुत था। इसलिये पहले-पहल जो बच्चे पैदा किये वे चारों सनक, सनंदन, सनत्कुमार, सनातन, अखण्ड वैराग्यवान् और निवृत्तिमार्गी हुये। 'महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो, मनवस्तथा' इस गीता में वर्णित सात कर्मकाण्डी महर्षियों के पूर्व ये चार कुमार पैदा हुये। इनको पैदा करके भला आगे सृष्टि चलनी है! चारों कुमारों ने ब्रह्मा जी से कहा 'क्यों खुद दुःखी और हमें भी दुःखी करते हो? यह सृष्टि चलाकर करोगे क्या? हम लोग भी भगवान् का भजन करें। निवृत्ति ही असली चीज़ है।' ब्रह्माजी ने कहा 'मैं सृष्टि का मालिक और मेरे ही लड़के मेरे साथ दगा कर रहे हैं!' अभी तक सनकादि ब्रह्मपुत्र बहिर्मुखी बने नहीं थे। जब तक इन्द्रियाँ बहिर्मुखी न बनें, मनुष्य को अंदर का आत्मानंद मिलता रहता है। इसलिये भगवान् भाष्यकार 'परांचि खानि व्यतृणत्' के भाष्य में लिखते हैं 'हिंसितवान्,' गुस्से में आकर ब्रह्माजी ने भयंकर हिंसा की। किसी आदमी को थोड़ा भी गलत रास्ता दिखा दो और वह मर जाये तो इसे हिंसा कहते हैं। ब्रह्माजी ने ऐसे दरवाज़े बनाये कि इन रास्तों से जीव बार-बार मरते चले जा रहे हैं। इसलिये इन्द्रियों को जब तक बंद न कर लो, तब तक काम नहीं होगा। इसे गुहा इसलिये कहा कि विवेक का यह धीरे-धीरे चलने का मार्ग है। टोह-टोह कर देखकर जिसने विवेक से काम नहीं किया, जिसने उस रास्ते को गलत समझकर वैराग्य के द्वारा संयम नहीं किया, जिसने अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रियों को वैराग्य से रोककर बाहर से चीज़ों को आने से रोक नहीं लिया, वह परमात्म-दर्शन पा नहीं सकता। उसके लिये साधन बता दिये शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा। भिन्न-भिन्न दरवाज़ों से बाहर निकलना कैसे रोकना है, इसके साधन बता दिये। ये साधन जिसे प्राप्त नहीं हो गये, वह इस गुहा में प्रवेश नहीं कर पायेगा। इस दुर्लभता को बताने के लिये ही इसे गुहा कहा।

गुहा को भी यहाँ दहर अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म कहा। जितनी छोटी जगह हो, उतना ही मनुष्य को बिलकुल एकाग्र होकर जाना पड़ता है। एक सुई बोरा सीने की आती है। उसमें भी डोरा डाला जाता है! गप्प मारते हुये भी आदमी उसमें डोरा डाल देता है। एक सिल्मे-सितारे की सुई आती है, उस सुई में धागा डालते समय किसी की कोई बात भी नहीं सुन सकते। सब तरफ से वृत्ति को एकाग्र करके डालना पड़ता है, फिर भी कई बार दायें-बायें होते-होते तब धागा अंदर जाता है क्योंकि धागा और छेद सूक्ष्म हैं। यह आत्मा तो उससे भी सूक्ष्म है 'एषोणुरात्मा' 'अणोरणीयान्', यह सूक्ष्म से सूक्ष्मतर है। जब तक सब तरफ से चित्तवृत्ति एकाग्र होकर केवल उसे विषय नहीं करेगी और शुद्ध नहीं होगी तब तक इस गुहा में चाहे जितनी एकाग्रता करते रहो, प्रवेश संभव नहीं। जैसे सिल्मा-सितारे की सुई में सुतली नहीं पो सकते वैसे पाप और दुर्वासनाओं से चित्त का जो मोटापन हुआ है, उस की छँटाई करके उसे बिलकुल शुद्ध नहीं बना लोगे, तब तक कभी भी गुहा-स्थित आत्मा की प्राप्ति नहीं होगी। इसीलिये यहाँ इसे दहर कह रहे हैं। जो छठे अध्याय में 'तत्त्वमसि' से और सातवें में 'भूमा' से प्रतिपादित किया, उसे किस प्रकार इस दहराकाश में प्रवेश करके प्राप्त कर सको, इसका साधन बतानेवाला यह अध्याय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह छंदोगों की उपनिषद् है। वेद के प्रत्येक मंत्र में साध्य-साधन ब्रह्म और धर्म छिपा हुआ है। इसके मंत्रों में नियत अक्षर और नियत पाद हैं। जब मनुष्य अक्षर ब्रह्म का अनुभव करता है तब साध्य के अनुभव के काल में भरे-पूरे दिल से गाता है। तब वह छंदोग होता है। इस प्रकार गानेवालों की यह उपनिषद् है अर्थात् तत्त्वविद्या में निष्णातों की उपनिषद् है। जो छिपा हुआ है उसे रूढ शब्दों से बताना प्रारम्भ कर उसके अवाच्य स्वरूप तक जिज्ञासु को ले जाना है। दहर आदि शब्द साधारणतः रूढ जिन अर्थों में हैं उन्हीं से समानता आदि के सहारे परम सूक्ष्म सच्चिदानन्द प्रत्यगात्मा को बताना वेदान्तों की रीति है। कुछ नये शब्द घड़ देने मात्र से जिज्ञासु का अज्ञान मिटाया नहीं जा सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय प्रवचन

२६.३.७६

सामवेद की कौथुमी शाखा की छांदोग्य उपनिषद् में आठवें अध्याय में प्रथम खण्ड के प्रथम मंत्र का विचार चल रहा है। मूलमंत्र है -

ॐ। अथ यद् इदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं
वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः। तस्मिन् यद् अन्तः,
तदन्वेष्टव्यं, तद् वाव विजिज्ञासितव्यम् इति।। ८.१.१

छठे अध्याय में परमात्मा को आत्मरूप से और सातवें अध्याय में उसी को भूमा, व्यापकरूप से बताया। उसके 'अथ' अनन्तरम् अर्थात् बाद में। किसके बाद में? परमात्म-तत्त्व को जब भली प्रकार से समझ लिया, उसके बाद में। वेदांत की प्रधान विशेषता यह है कि यह मनुष्य को आँखें बंद करके नहीं चलाता। वेदों ने कल्पना यह कर रखी है कि जीव और ईश्वर का सखा का सम्बन्ध है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' मनुष्य-शरीररूप अथवा ब्रह्माण्डरूप शरीर पर जीव और ईश्वर दो मित्र पक्षी रहते हैं। यह ऋग्वेद का उद्घोष है। मित्र का मतलब होता है जो प्रेम से तुमको समझाता हुआ चले।

एक राजाज्ञा होती है जैसे 'जिसकी आमदनी पचास हज़ार है वह बत्तीस हज़ार कर देगा।' किसी के छह बच्चे हैं, और बुड्ढे माँ-बाप बैठे हैं। दूसरे के पास रहने का मकान है, एक भी बच्चा नहीं है, माँ-बाप भी मरे हुये हैं। इन सब भेदों से राजा को कोई मतलब नहीं! हुक्म दे दिया सो दे दिया। राजा से कहो कि अमुक-अमुक परिस्थितियाँ हैं, तो कहते हैं 'हम राजा हैं और राजा अंधा हुआ करता है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब कोई कहता है कि राजा अंधेपन का काम करता है तो वैदिक इसमें कोई आश्चर्य नहीं मानता क्योंकि जो अंधा नहीं होगा वह राजा हो ही नहीं सकता! विचारशील बुद्धिमान् व्यक्ति राजा नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में इसीलिये ब्राह्मण को राजा नहीं बनाया गया। ब्राह्मण में बुद्धि है, वह सोचेगा, समझेगा; सोचना-समझना राजा का काम नहीं है। राजाज्ञा तो अंधे की लकड़ी है, जिसके सिर पर लग गई, लग गई। अंधे आदमी को यदि कोई छेड़ दे तो उसे गुस्सा आता है। वह जिस लकड़ी को पकड़कर चल रहा होता है उसी को उठाकर मारता है। जो उसको हाथ पकड़कर मदद करके ले जा रहा हो, उसके सिर पर लाठी ठोक देता है, छेड़नेवाला दूर से छेड़ रहा है, वह तो वहाँ से भाग जाता है। इसी प्रकार राजा की आज्ञा है। जो अपराधी है वह तो अपराध करके छिप जाता है। जो भला आदमी है उसे लाठी लग जाती है। राजा से कोई कहे भी 'यह तो ग़लत आदमी को लग गई,' तो वह कहता है 'हम क्या करें!' संसार में अनेक मत-मतान्तर और मज़हब इसी प्रकार से अंध-परम्परा से चलते हैं। कर्मकाण्ड सारा-का-सारा इसी अंधपरम्परा से चलता है। इसलिये उपनिषद् स्पष्ट उद्घोष करती है –

> **'अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानास्स्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः। दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः'।कठ.१.२.५।।**

लोग स्वयं अज्ञान में रहते हैं और अज्ञान में ही रहना चाहते हैं, अर्थात् न केवल अविद्या में हैं वरन् वहीं रहना चाहते हैं।

संसार में अधिकतर लोग सत्य का सामना ही नहीं करना चाहते। सत्य उनको लगता है कि हमको चीर कर रख देगा। चूँकि वे स्वयं सत्य से डरते हैं इसलिये दूसरे को भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सलाह देते हैं कि यह सत्य का ढक्कन मत खोलना, सब छिपा-छिपाया रखना। ऐसे व्यक्ति अपने को बड़ा धैर्यवाला समझते हैं कि 'देखो इतनी मूर्खता का काम करते हैं, हम कितने धैर्यवाले हैं, हम सब सहन कर रहे हैं। लड़का गाली देता है, सहन कर लेते हैं।' जो सत्यता का सामना करे उसे कहते हैं अधीर है। लड़के को पैदा किया है, वह मेरी बात न माने तो अपना रास्ता पकड़े - यह सत्य हुआ। यदि लड़का ठीक कर रहा है तो वह जो कर रहा है वह तुम भी करो। यदि गलत कर रहा है तो तुम्हारा-उसका सम्बन्ध बनता कैसे है? लेकिन इस सत्य को ढाँकनेवाला क्या कहेगा? 'हम बड़े धैर्यवाले हैं, उन सब की टक्कर खाकर भी बैठे हुये हैं।' हमको मिथ्या से मोह है, झूठ से मोह है - यह नहीं कहता। उलटा अपने को धैर्यवाला मानता है। धैर्यवाला मानने के कारण उनके मन में भावना बनती है कि 'दूसरे तो घबरा जाते हैं, भाग जाते हैं, पलायन कर जाते हैं, भगोड़े हैं। हम डटे हुये हैं।' उसको वे अपना गुण मानते हैं। धैर्य है सत्य का मुख देखने में। दध्यङ् आथर्वण महर्षि ईशावास्योपनिषद् में यही कहते हैं 'तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये', हे परमेश्वर! हमारा पोषण इस प्रकार करो कि सत्य पर पड़े ढक्कन को खोलो, मैं सत्य को देखना चाहता हूँ। मेरे अंग झुलस जायें, मुझे चिंता नहीं, इन्द्रियाँ गल जायें, कोई डर नहीं। जिनको मैंने ममता का विषय मान रखा है, वे सब मुझ से दूर हो जायें तो भी कोई चिंता नहीं। मुझे तो इस बात की जिज्ञासा है कि सत्य क्या है? सत्य का अनावरण ही परमात्मा का किया सबसे बड़ा पोषण है। इसीलिये इस प्रसंग में भगवान् का नाम ही कहा - 'हे पूषन्'। जब तक यह तीव्र विविदिषा, तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं होती, तब तक यह मार्ग दुर्लभ रहता है और जिसको यह इच्छा उत्पन्न हो गई, वह अर्जुन के शब्दों में कहता है 'अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्' चाहे मुझे सारे संसार का राज्य मिल जाये, चाहे मुझे देवराज इन्द्र का पद मिल जाये, चाहे सारे संसार में मेरा कोई विरोधी न रहे, धन-धान्य, मान सब मुझे मिल जाये, लेकिन यह सब होने पर भी 'यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्' जो मेरे हृदय में यह तीव्र शोक, जिज्ञासा उत्पन्न हुई है, वह कैसे शान्त होगी, उसको मैं कब तक छिपा कर रखूँगा? असली धैर्य तो सत्य का अन्वेषण करने में जो कष्ट आते हैं उनको सहन करना है। लेकिन जो अविद्या में पड़े हुये हैं वे इससे विपरीत, जो गलत चीज़ है उसे सहन करने को धैर्य मानते हैं।

इतना ही नहीं, यदि उनसे कहो ' ज़रा आगे चलो', तो 'पंडितं मन्यमानाः', ऋषि कहते हैं कि वे अपने को बड़ा भारी पंडित मानते हैं। सब समझे हुये हैं - ऐसा मानते हैं। मूढ लोग दौड़ रहे हैं, काल के मुख की तरफ दौड़ रहे हैं। लेकिन पूछा कि किधर को दौड़ रहे हैं, तो कहते हैं कि इसका नाम मत लो! सच्ची बात यह है कि हर एक आदमी मृत्यु के मुख में जा रहा है; और कहीं नहीं जा रहा है। हर बार जब एक साँस छोड़ते हो तो एक पैर तुमने श्मशान घाट की तरफ ले लिया। लेकिन आदमी चाहता क्या है? यह तो बात ही मत कहो। यह कहो कि हम यहाँ हमेशा बने रहें। कोई आकर 'चिरंजीव रहो', ऐसा कहे तो बड़ा खुश हो जाता है। दूसरे दिन फिर 'चिरंजीव' कह देते हैं। अगले दिन इतना भी नहीं कहते कि एक दिन कम चिरंजीव रहो क्योंकि आज चिरंजीव कहकर अगले दिन चिरंजीव कहोगे तो उसमें से एक दिन का घाटा हो चुका! लेकिन यह बात कोई सुनना नहीं चाहता, कोई कहना भी नहीं चाहता। इस बात को यदि कोई दृढतापूर्वक स्मरण कराये तब सत्य को जानना चाहोगे कि जाना कहाँ को है? याद दिलाने पर तो उधर दृष्टि जायेगी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं तो 'सब समय यहीं रहना है', मानकर यही सोचते रहते हैं कि यहाँ की व्यवस्था कैसे करें। 'अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः', दूसरे भी कहते हैं कि 'मृत्यु की बात रहने दो जी। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है!' न चालीस साल में, न साठ साल में लगता है कि हम बुड्ढे हैं और न अस्सी साल में लगेगा कि हम बुड्ढे हैं। हर उम्र में लगता है कि अभी तो बहुत समय बाकी है। यह नहीं लगता कि सांसारिक कार्य पूरा हो गया। स्वयं सत्य देखना नहीं चाहता, दूसरे उसे देखने देना नहीं चाहते, उसको ढाँकते ही रहते हैं।

वेदान्त कहता है कि यह ढाँकने योग्य वस्तु नहीं। 'मैंने कहा इसलिये करो' यह वेदान्त में नहीं कहते। यद्यपि संसार में अधिकतर आदमी चाहते यही हैं। संसार में अधिकतर आदमी चाहते हैं कि हम उनको एक सूची बनाकर दें कि यह करना और यह मत करना। कहते भी हैं 'अमुक धर्म, अमुक मज़हब बड़ा अच्छा है। किसी में दो चार बातें हैं, कोई पाँच छह ही मानता है। ऐसे ही आप भी बता दो कि हिन्दू धर्म का क्या आधार है।' हम कहते हैं कि आधार तो हम बता देंगे लेकिन हमारा आधार मूर्खों का आधार नहीं है। आधार तो बहुत सीधा है 'वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च' ब्रह्म ही जीव-जगदाकार में उपलब्ध हो रहा है। ऐसा जो मानता है बस वही सनातन धर्म को समझता है। बात तो इतनी-सी है। भगवान् भाष्यकार आचार्य शंकर भगवत्पाद जब यहाँ से चलने लगे तब कुछ शिष्यों ने कहा 'आपका भाष्य बड़ा कठिन है, क्लिष्ट है। कोई एक सरल-सी रचना कर दें तो बड़ा अच्छा हो जाये।' उन्होंने उपदेश-साहस्री नाम की किताब बनाई जिसमें हज़ार उपदेश हैं। कुछ और भी आलसी लोग थे, कहने लगे कि 'एक हज़ार बहुत होते हैं, कुछ और संक्षेप करें।' फिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने शतश्लोकी नाम का ग्रन्थ बनाया। वे श्लोक ज़रा लम्बे बन गये। उपदेश साहस्री अनुष्टुप् छंद में थी और शतश्लोकी स्रग्धरा छंद में थी। इस छंद में चार पंक्तियों वाले श्लोक होने से चार सौ पंक्तियाँ हो गयीं। तब उन्होंने दस श्लोकों की रचना की; दशश्लोकी वेदांत का इतना प्रौढ ग्रन्थ बना कि उस पर आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने सिद्धांतबिंदु नाम का ग्रन्थ लिखा जो वेदांत के उत्कृष्ट ग्रन्थों में है। अंत में उन्होंने कहा कि अगर तुम घबराकर सोचते हो कि ये भी बहुत हैं तो

'श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यद् उक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।।'

'मैं आधे श्लोक में ही बता देता हूँः ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और ब्रह्म ही तुम्हारे अंदर जीवरूप से बैठा हुआ है।' लेकिन इन उपदेशों में कोई विधि-निषेध नहीं आये! किंतु अधिकतर लोग यह स्वतंत्रता नहीं चाहते। कहते हैं 'सत्य की बात तो हो गई। यह बताओ कि नहाकर कितनी बार कुल्ला करें, कितनी बार दण्ड पेलें। यह तो हमारी समझ में आ जायेगा'। वेदान्त कहता है कि भाई! हम अधिनायक-तंत्रवादी नहीं जो हुक्म फरमायें। हमने तो वह चीज़ बतानी है जिसके आधार पर *तुम* समस्याओं का आधार निकालो। वह गुर तुम्हें बताना है जिससे जहाँ बैठो तुम अपना हल खुद निकाल लो। समस्यायें एक जैसी नहीं, देश और काल एक जैसे नहीं, संग एक जैसा नहीं। संसार में सब चीज़ें बदल रही हैं। हम कौन होते हैं तुम्हारे ऊपर एक बाँध बाँधकर कह देनेवाले कि ऐसा है और ऐसा नहीं है। लेकिन मनुष्य चूँकि बुद्धि का उपयोग नहीं करना चाहता इसलिये इससे डरता है।

कहने को लोग कहते हैं कि हम प्रजातंत्र चाहते हैं। चाहता कोई नहीं, चाहते तो तुम राजतंत्र हो कि राजा डण्डा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मारे और काम करवाये। हम विचार कर कोई कार्य करें - यह थोड़े ही चाहते हो। किसी ने बताया कि सरकार ने ग्यारह प्रतिशत कर कम कर दिया। हमने कहा 'बहुत अच्छा है। अब यह बताओ कि इस ग्यारह प्रतिशत का तुम क्या करोगे? राजा भी तुमसे लेकर गरीबों को देने की सोचता था। तब तुम्हारा कहना था कि वे कर लेकर साठ प्रतिशत खुद खा जाते हैं, गरीबों को नहीं मिलता। अब जो ग्यारह प्रतिशत तुम्हारे हाथ में आ गया, क्या यह गरीबों को दे दोगे या उसमें साठ प्रतिशत खुद ही रख लोगे? वे चालीस प्रतिशत जनता को देते थे - यह तुम भी मानते हो, क्या अब तुम स्वतंत्र होकर वह उतना प्रतिशत भी जनता को दोगे?' तब देते थे क्योंकि राजा का डण्डा था। इसलिये प्रायः मनुष्य सखाभाव को चाहते नहीं हैं। हम चाहते ही हैं डण्डा खाना इसलिये डण्डा पड़ता भी है। वेद कहता है कि कुछ भी हो जाये, राजाज्ञा की तरह तुमको हुक्म नहीं करेंगे। तुम चेतन हो, हम तुम्हारी स्वतंत्रता को कभी नहीं छीनेंगे। एक व्यक्ति खड़ा होकर राजा को गाली दे तो राजपुरुष तुरंत गर्दन पकड़कर जेल में ले जायेंगे। लेकिन समग्र ब्रह्माण्ड का अधिपति अखण्ड अप्रतिहत आज्ञावाले परमेश्वर को हम बीस साल तक गाली देते रहें, वह हमारी जबान नहीं रोकता। क्या कारण है? वह कहता है कि तुम चेतन हो, चेतन को स्वतंत्र रखना चाहिये परतंत्र नहीं बनाना चाहिये। कोई कह सकता है कि लोग इसका दुरुपयोग करेंगे। अरे भाई! दुरुपयोग करेंगे तो कभी सदुपयोग भी करेंगे। यदि हमारे हुक्म से तुमने सदुपयोग भी किया तो *तुमने* कहाँ किया! वह तो हमने किया। मालिक ने नियम कर दिया कि रोज़ दो सौ कंगलों को दे दे, तो वह देने में मुनीम क्या कर रहा है? मालिक ही मुनीम के द्वारा दे रहा है। इसी प्रकार यदि परमेश्वर ने हमको ज़बरदस्ती हुक्म दे दिया और हमने पालन कर लिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो *हम* कैसे अच्छे या सदाचारी हुये। हम तो दुराचारी बने रहे। समाज के भय से, राजा के भय से, जब तक किसी भी भय से कर रहे हैं तब तक हम तो दुराचारी हैं। हम सदाचारी तब होंगे जब बिना भय के, निर्भय होकर इस निश्चय के साथ कि 'यही ठीक है, यही करूँगा', समुचित कार्य करें। तब हम सदाचारी होंगे। ईश्वर तुम्हारा मित्रभाव कभी नहीं छोड़ेगा, मित्रभाव से तुमको समझायेगा, जब तुम्हारी समझ में आ जायेगा तभी आगे चलेगा।

यहाँ 'अथ' का मतलब हुआ कि उस परब्रह्म परमात्म-तत्त्व को छठे और सातवें अध्याय में जब समझा कर बता दिया तब। समझना बुद्धि में होता है। यहाँ आगे साधन-परम्परा बतानी है। साधन-परम्परा को किधर से चलाया जाये - इसके विषय में वेद में और दूसरों में फ़र्क है। जो वेद से भिन्न हैं वे कहते हैं कि शरीर से चलायें। पहले शरीर शुद्ध होगा तब प्राण शुद्ध होंगे, जब प्राण शुद्ध होंगे तब मन शुद्ध होगा, जब मन शुद्ध होगा तब बुद्धि शुद्ध होगी। बाकी सब मत-मतांतरों की यह प्रक्रिया है, वे कहते हैं कि पहले बाहर, तब धीरे-धीरे अंदर जाया जायेगा। यह व्यवस्था वैसी है कि सिर दर्द होने पर सिरदर्द की दवाई देना। उसके बाद देखा जायेगा कि सिर दर्द का कारण क्या था? वेदांत ठीक विपरीत करता है। वह कहता है कि इन सब रोगों का मूल कारण कौन है, इसे समझकर दूर करो। अविद्या या अज्ञान ही मूल कारण है। अज्ञान बुद्धि में रहता है। अज्ञान मन, प्राण, शरीर आदि में कहीं नहीं रहेगा। इसलिये वेदांत कहता है कि सबसे पहले तुम्हारी बुद्धि को ही शुद्ध करेंगे। जब बुद्धि शुद्ध हो जायेगी तब आगे मन इन्द्रियाँ, प्राण और शरीर तथा उससे भी आगे शरीर के व्यवहार, इन सब की शुद्धि तो तुम ज़बरदस्ती आगे बढ़ाते ही जाओगे। ज्ञान की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषता यह है कि तुमको दम नहीं लेने देगा। हमने कह दिया कि घण्टा भर ध्यान करो तो जिस दिन मौका पाकर बुखार आ गया, उस दिन नहीं करोगे। जैसे ही मौका पाओगे, टालोगे। किसी ने कहा कि अड़तालीस मिनट ध्यान करना चाहिये, तो कहोगे कि यह अच्छा काम हुआ। लेकिन जब सच्ची बात बता देंगे तब हम कहेंगे भी कि छोड़ दो, पर तुम कहोगे कि छूटता नहीं। एक लड़का शराबी हो गया। उसका पिता उसे रोज कहे 'बेटा! शराब पीना छोड़ दे।' अंत में एक दिन बेटे ने कहा -'जी! मैं छोड़ दूँगा लेकिन एक शर्त पर कि एक दिन मेरे साथ बैठकर आप भी पी लो।' पिता ने कहा 'ठीक है। मेरे एक दिन पीने से बेटा सुधर जाये तो बहुत अच्छी बात है।' पिता ने बेटे के साथ बैठकर शराब पी ली। अगले दिन पिता कहता है - 'बोतल कहाँ रखी है?' उसने कहा ठण्डी अलमारी में। क्या बात है?' पिता ने कहा -'तेरे को छोड़नी हो तो छोड़ दे, मैं अब छोड़नेवाला नहीं!' ठीक इसी प्रकार से जब मनुष्य को सत्य बात समझ में आ जाती है तब यदि उसको बतानेवाला भी कह दे कि इसे छोड़ दे, तो वह कहेगा 'आप चाहे छोड़ दो, मुझ से छूटनेवाली नहीं है।' यह सत्य में ताकत है। हुक्म में, ध्यान, जप आदि में यह ताकत नहीं है। इसीलिये बुद्धि को ही पहले शुद्ध किया जाये।

जब किसी व्यक्ति को पहले वैदिक धर्म में दीक्षित करते हैं तब उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है। जब तक यह संस्कार नहीं होता तब तक हम लोगों की शास्त्रीय भाषा में वह शूद्र के जैसा ही होता है। वह चाहे जहाँ खाये-पिये, चाहे जैसा आचरण करे। यज्ञोपवीत होने के बाद ही उस पर वैदिक धर्म के नियम लागू होते हैं। यज्ञोपवीत में दीक्षा ही गायत्री मंत्र की है और गायत्री में बुद्धि की शुद्धि की प्रार्थना है। 'धियः यः नः प्रचोदयात्' हे परमात्मा! तुम हमारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि को पवित्र करो। वह परमात्मा कैसा है? उसे जीव-ईश्वर की एकता से बताया 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य' तत्-पदार्थ सविता, जो सारे संसार को उत्पन्न करनेवाले हैं, प्रसव करनेवाले हैं। ब्रह्मसूत्र में बताया 'जन्माद्यस्य यतः' परमेश्वर वह है जिससे यह सारी सृष्टि जन्म लेती है, स्थित रहती है और लीन होती है। जो सारे जगत् को उत्पन्न करनेवाला परब्रह्म परमात्मा है, वही वरेण्य अर्थात् एकमात्र वरण के योग्य है। चुनने के लायक, पाने के लायक वही एक है। बृहदारण्यक उपनिषद् कहती है 'आरामम् अस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन;' लोग आकर बगीचा देखते हैं, बगीचेवाले को सब भूले बैठे हैं, परमेश्वर ने एक बगीचा लगाया। उसकी तरफ ध्यान किसी का नहीं है। बगीचा बड़ा सुन्दर लग रहा है। गायत्री मंत्र कहता है ' सवितुः' सारे जगत् को उसने उत्पन्न किया, लेकिन उसके जगत् के पदार्थों को नहीं चुन लेना, चुनना तो उसी को। वरण करने के योग्य तो वही है। था तो यह सब माया-जाल और विस्तार परमेश्वर के वैभव को प्रकट करने के लिये, परन्तु मनुष्य भूल कर जाता है कि उसके विस्तार को, उसके जाल को, उसके बगीचे को तो देखता है, *उसको* देखने की इच्छा नहीं करता। उसे टालता रहता है। कहता है कि 'बगीचे को तो अभी देख लो, उसको बाद में देखना।'

एक बगीचा था। वहाँ दो मित्र पहुँचे। एक दोस्त बड़ा हिसाबदाँ था। वैसे वहाँ कहा तो यह है कि वह कायस्थ था! कायस्थ लोगों की प्रसिद्धि है कि वे बहुत हिसाब लगाते रहते हैं। उसने देखा कि बढ़िया आमों का बगीचा लगा हुआ है। झट जेब से कलम कागज़ निकालकर हिसाब करने लगा कि एक लाइन में कितने पेड़ और एक पेड़ में कितने फलों का अंदाज है। किस-किस जाति के पेड़ हैं, उनमें क्या खाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दी जाती है। वह बगीचे के माली के पास बैठकर सब आँकड़े तैयार करने लग गया। दूसरे दोस्त ने इधर-उधर देखा और सीधा उस बगीचे के मालिक के पास पहुँच गया और उसने उसे बढ़िया लंगड़ा और हापुस आप खिलाये। पेट भरकर आम खाकर वह उसके साथ हँसी-खेल करने लगा। काफी समय हो गया तो वह वहाँ से उठकर अपने दोस्त के पास आया और कहा कि 'घर चलो।' वह दोस्त कहने लगा कि 'एक मिनट और रुको।' उसने कहा - 'घर पहुँचना है, बस छूट जायेगी।' वह कहने लगा - 'थोड़ा-सा ही हिसाब रह गया है'। उसने पूछा - 'भले आदमी! हिसाब जाने दो, कुछ आम भी खाये, आमों का स्वाद कैसा था?' कहने लगा समय ही कहाँ मिला! हिसाब ही ख़त्म नहीं हुआ। तूने अब तक क्या किया?' उसने कहा 'मैंने तो लंगड़े और हापुस आम खाये हैं, और कुछ नहीं किया।' विचार करो कि दोनों में बुद्धिमान् कौन है?

इसी प्रकार यह विश्व, सृष्टि या ब्रह्माण्ड बगीचा भी परमात्मा का बड़ा भारी है। अधिकतर लोग यहाँ आकर अपना हिसाब लगाते रहते हैं। वैज्ञानिक अपना हिसाब लगा रहा है, व्यापारी अपना हिसाब लगा रहा है। आयकर में कहाँ-कहाँ रिबेट मिलेगी इत्यादि सारे-के-सारे हिसाब में लगे हुये हैं। अंत में जब चलने का समय, मृत्यु का काल आता है तब भी कहता है कि थोड़ा-सा हिसाब रह गया है! 'पोते की लड़की के हाथ पीले कर जाता तो ठीक था' - यह थोड़ा हिसाब बच गया। बुद्धिमान् यहाँ आता है, सोचता है कि जिसका इतना बड़ा बगीचा है वह इसका हिसाब जाने, उससे हमें क्या मतलब। जो हमें सुख मिलेगा, वही हमारे काम का है। बाकी तो सारे-के-सारे बैंक की लिखा-पढ़ी रखते हैं। आदमी कहता है कि मैंने दस लाख कमाये। उससे पूछो -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कमाये क्या? यदि वैषयिक सुख भी समझ लो तो जो रोटी खाई, कपड़े पहने, वही तुम्हारा सुख हुआ। बैंक में पड़े हुये तुमको क्या दे रहे हैं? केवल विडम्बना करके कह रहा है कि 'मैंने कमा लिये।' सारा-का-सारा यहाँ छोड़कर जाना है। तुमने कमाये होते तो ले जाते। इसलिये जो खाया, पहना, वही तुम्हारा हुआ। यह तो मोटी दृष्टि से बताया। यह भी तो शरीर-प्राण इत्यादि ने किया, तुमको उससे क्या मिला? क्षणिक सुख भी तो नहीं मिला। जबरदस्ती शरीर ने सूखकर पहले तुमको भूखा-प्यासा बनाया, फिर उस भूख-प्यास के मिटने से तुम सुखी बनते हो! जैसा कि नीतिकार कहते हैं -

'तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति मांसाज्यकलितान्।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरम् आश्लिष्यति वधूम्
प्रतीकारं व्यधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः।।

पहले तो इस गले के साथ फँसे और गर्मी के कारण जबरदस्ती सूखकर इसने तुमको दुःख दिया। फिर तुमने बढ़िया स्वादिष्ट ठण्डी शिकन्जी बना कर पी और कहते हो कि सुख मिला! जैसे कोई आदमी तुम्हारे पैरों में काँटा ठोक दे तो बड़ा दर्द होता है। फिर निकालकर कहे कि 'दर्द मिटा दिया। मैंने तुमको ठीक कर दिया।' तो तुम कहोगे कि काँटा चुभाया ही क्यों था? इसी प्रकार गले ने जबरदस्ती पहले सूखकर तुमको दुःखी किया। उसके बाद तुमने पानी पी लिया। गला कहता है 'देखो! तुम्हें कितना आनंद, कितना मज़ा दे दिया।' इसी प्रकार संसार के सब सुखों में समझ लेना। जितने भी सुख हैं उनका सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो तो 'सुखमिति विपर्यस्यति जनः' जबरदस्ती इस दुःख को पैदा करके शरीर तुम्हारे में विपर्यय ज्ञान, उलटा ज्ञान पैदा करता है कि सुख हो गया। यथाकथंचित् शरीर प्राण को अपना रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान लो तो भी कितना सुख मिला? और वस्तुतः तो वह भी नहीं मिला! हिसाब-किताब लगाते रहे कि शरीर, मन, प्राण, इन्द्रियों को इतना-इतना मिला। बुद्धिमान् यहाँ आकर कहता है कि सबसे पहले उस परब्रह्म परमात्मा से परिचय प्राप्त करो जो इसका मालिक है, उससे दोस्ती गाँठो तब काम बने।

हमारे शास्त्रकारों ने इसलिये पहला आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम रखा जिसमें जाकर ब्रह्म से परिचय करो, ब्रह्म का ज्ञान हो। यही उसका उद्देश्य था। 'वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म' वेद को पढ़ने से परमात्मा का ज्ञान होगा और तदनुकूल जीवन तपोमय हो जायेगा। लोगों ने कहा कि यह आश्रम ही उड़ाओ, इसका नाम मत लो। यहाँ तक डरने लगे कि आठ साल के बच्चे को गृहस्थ बनाने लगे कि कहीं ऐसा न हो कि ब्रह्मचर्य के फलस्वरूप ब्रह्मज्ञान हो जाये! अब भी सारी दुनिया की शिक्षायें पिता पुत्र को पढ़वाता है। दो-दो सौ रुपये खर्च करके कान्वेन्ट स्कूल में भेजता है। दुःख केवल तब होता है जब वह गीता पढ़ते हुये पकड़ा जाये। कहते हैं 'स्कूल का काम कर, यह तेरा पढ़ने का समय है।' कारण यह है कि पिता यह चाहता नहीं कि पुत्र मालिक से परिचय प्राप्त करे। उसके लिये कोई प्रवृत्ति नहीं होती। यदि उससे परिचय प्राप्त कर लिया तो फिर लेखा-जोखा नहीं रहता है। फिर तो जैसा इसी विद्या में आगे जाकर कहेंगे, वह जो इच्छा करता है, वह उसी समय पूरी हो जाती है। वह यहाँ आकर केवल उस परम आनन्द को लेता है, इन सब हिसाबों को नहीं रखता। उसके मन में यह नहीं रहता कि कोई काम बाकी रह गया। हमारे उत्पन्न होने के पहले बागवान ही सम्हाल रहा था; हम जैसे न जाने कितने चले जायेंगे, यह बगीचा ऐसा-का-ऐसा ही रहेगा। इसमें कोई फ़र्क नहीं पड़ना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अतः हम इसके लेखे-जोखे में न पड़कर उस परमेश्वर को ही देखें, यही बुद्धिमानी है।

उसको प्राप्त करने की यह दृष्टि अथवा विविदिषा उत्पन्न होती है, जब उसका परोक्ष ज्ञान प्राप्त कर लिया जाये। वही एकमात्र जानने लायक है, चुनने लायक है। उसको चुनने के लिये कहाँ जायें? कहते हैं उसने स्वयंवर रचा रखा है जहाँ जाकर उसके गले में माला डाल दो। ठिकाना बताया 'देवस्य'; 'कोदेवो यो मनःसाक्षी' जो तुम्हारे मन का साक्षी है वही देव है। तुम्हारे मन में ही उसने स्वयंवर रचा रखा है। रेल के भाड़े का भी खर्चा नहीं, दौड़कर जाने की ज़रूरत नहीं, यह भी नहीं कि दूसरा वरण कर लेगा। वह तुम्हारे मन में ही बैठा हुआ है। किसी समय संयुक्ता का अपहरण हुआ था। पृथ्वीराज का अपमान करने के लिये उसकी मूर्ति बनाकर दरवाज़े पर रख दी गई। वह चाहता था कि संयुक्ता से विवाह करे। जयचंद नहीं चाहता था कि उससे विवाह हो। इसलिये पृथ्वीराज को नहीं बुलाया और उलटा उसका अपमान करने के लिये उसकी मूर्ति बनाकर दरवाज़े पर रख दी। फिर भी संयुक्ता ने जाकर अपनी माला उस मूर्ति पर डाली! पृथ्वीराज वहाँ छिपा हुआ खड़ा था। उसने कहा 'हो गया वरण' और लेकर चल दिया। ठीक इसी प्रकार से जीव चाहता है कि 'उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करूँ,' संयुक्ता अर्थात् जुड़ी हुई; अर्थात् अंतःकरण-विशिष्ट चेतन, चिदाभास। इससे जुड़े हुये जीवात्मा, चेतन या चिदाभास ने पृथ्वी के राजा का वरण कर रखा है। वह कोई छोटा-मोटा राजा नहीं है। सारी पृथ्वी का राजा परमात्मा है। उसी को इसने वरण कर रखा है। लेकिन ये इन्द्रियाँ, प्राण इत्यादि नहीं चाहते कि यह उसको वरण करे। इसलिये ये उस पृथ्वीराज का अपमान करने के लिये उसकी मूर्ति बनाकर रखते हैं। कहते हैं पत्नी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को परमात्मा मान लो, बाल को ही गोपाल मान लो। ये चेतन मूर्तियाँ हुईं। अथवा जड मूर्तियाँ समझ लो। इंद्रियाँ चाहती हैं कि लोग किसी-न-किसी प्रकार मूर्ति को ही मानने लगें। लेकिन जो जीव ठीक से समझता है वह उन मूर्तियों को देखकर भ्रम में नहीं पड़ता। वह दूसरी-दूसरी चीज़ों का वरण नहीं करता। उससे पूछो कि मन के साक्षी को जाना? कहता है 'नहीं, लेकिन वरण मैं उसी का करूँगा। अभी तो मुझे मन-विशिष्ट ही दीख रहा है लेकिन वरण तो मैंने साक्षी का कर रखा है।' कई बार आदमी को लगता है कि अनुभव नहीं हुआ तो मैं ब्रह्मरूप कैसे? किंतु शास्त्र कहता है कि अनुभव न भी हो तो 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा ही चिंतन करो। यद्यपि वहाँ पृथ्वीराज की मूर्ति थी लेकिन उसने उसी को पृथ्वीराज मानकर उसी पर माला चढ़ा दी। ऐसे ही हम चिदाभासरूप से निकले नहीं, यह जीव तो मूर्ति है, लेकिन इसमें साक्षी को हम देख रहे हैं। जहाँ इसे देखा वहाँ पृथ्वी के राजा परमात्मा ने समझ लिया कि चाहता तो यह मुझे है। मुझे चाह लिया तो फिर और क्या चाहिये! वह खुद ही भगाकर ले जायेगा। गायत्री मंत्र इसीलिये 'वरेण्यं' पर ज़ोर दे रहा है। यहाँ तक तो तुम्हारा काम है, उसके बाद परमात्मा की चिंता है, वह जाने। हम कैसे पहुँचेंगे, इन साधनों को सोचने की चिंता नहीं करो। जिसको तुमने पति बना लिया वही तुमको पहुँचायेगा, नहीं तो पति किस काम का! लेकिन माला डालने का काम तुमको करना है।

'भर्गः' का मतलब है भूंज देनेवाला। यह भारोपीय शब्द है। अंग्रेजी के 'बेकर, बेकिंग' इत्यादि शब्द इसी से बने हैं। जो भूंज देनेवाला है उसी को भड़भूंजा कहते हैं। जहाँ उसका वरण तुमने किया कि वही मेरे मन का साक्षी है, वैसे ही अनादि काल से आज तक जितने पाप, दुष्कर्म, दुर्वासनायें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमने की हैं, वह उसी समय उन्हें जला देता है, फिर पाप बच नहीं सकते। हमने उसका वरण कर लिया तो पाप बेचारे कहाँ बच जायेंगे! इसीलिये भगवान् शंकर का नाम ही भर्ग है! उनको संहारक कहा जाता है। घट, पट आदि को नष्ट करना भी कोई संहार है! यह तो तुम ही कर लेते हो। एटम बॉम्ब तो तुम ही छोड़ देते हो। वे अनादि काल से आनेवाली दुर्वासनाओं को नष्ट कर देते हैं, यही उनकी शिवरूपता है। भगवान् शंकर भगवत्पाद तो यहाँ तक कहते हैं कि हे भगवन्! मैंने दो बड़े पाप कर रखे हैं –

'वपुःप्रादुर्भावाद् अनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान्।
स्मरन् मुक्तःसम्प्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिमान्
इतीश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयममि।।'

हे भगवन्! मेरा शरीर पैदा हुआ, प्रतीति हो रही है, इससे अनुमान होता है कि आज से पहले किसी जन्म में मैंने आपको नमस्कार नहीं किया। आपके सामने अपना अहम् छोड़ा नहीं, आपका वरण नहीं किया। वर मायने अपने से श्रेष्ठ। वरण तभी हो जब तुम उसको अपने से श्रेष्ठ समझो। आज तक आपको नमस्कार नहीं किया था, यह मुझे निश्चित पता है क्योंकि आप पुरारि हैं। आपके सामने सिर झुकाकर वरण कर लेता तो फिर इस टट्टी-पेशाब के थैले में आप मुझे डालते, ऐसा कभी नहीं हो सकता था। आप फिर मुझे इस शरीर में लेकर नहीं आते। अब इस बार आपको प्रणाम कर लिया इसलिये आगे कभी जन्म नहीं होना है यह निश्चित बात है। उनका वरण करें और फिर जन्म हो तो शर्म उनको आयेगी! किसी करोड़पति के घर लड़की दे दी और उसके बाद वह लड़की बेचारी पाव भर दूध के अभाव में दवाई न ले सके तो शर्म तुमको आयेगी या उसके करोड़पति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ससुर को? हमने परमेश्वर का वरण करके उसे अपने को दे दिया और फिर उन्होंने जन्म दे दिया तो शर्म उनको आयेगी। हम तो बेशर्म होकर अनादि काल से जन्म ले ही रहे हैं। हम अब मुक्त हो ही जायेंगे 'नमन् मुक्तः सम्प्रति' इसलिये आगे शरीर रहेगा नहीं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण - तीनों शरीर नहीं रहेंगे! जब अंतःकरण ही नहीं रहेगा तो नमन करूँगा कैसे? बिना शरीर के नमस्कार होगा नहीं। इसलिये कहा - हे भगवन् ये दोनों अपराध क्षमा करना कि आज से पहले कभी नमस्कार नहीं किया और आज के बाद भी कभी नहीं कर सकूँगा! इसीलिये भगवान् शंकर का नाम भर्ग है। जब हमने उनका वरण कर लिया तो फिर पाप या दुर्वासनायें बची रहें यह क्या कभी हो सकता है!

'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य' तक तत्-पदार्थ को बता दिया। स्मरण मात्र से वह पापों का नाशक है। वरण करने तक हमारा काम और वह वरण अपने मन में साक्षीरूप से होता है। यह तत्-पदार्थ का शोधन हो गया। अब हम क्या करें? इसके लिये देव के स्वरूप को बता दिया 'धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' यह जो बुद्धि है इस बुद्धि से ही तो निश्चय करना है। वरण का मतलब निश्चय ही तो है। माला या अंगूठी घुसाने से वरण नहीं होता है। यह तो दिखावा है। वरण तो निश्चय है कि मैं तुम्हारा हूँ। इसलिये विज्ञानमय कोश में पहुँचनेवाला, निश्चय करनेवाला जीव मैं हूँ। अब तक मैंने निश्चय कर रखा है कि मैं तुम्हारे इस बगीचे का हूँ। अभी त्वं-पदार्थ से क्या समझ रहे हैं? अपने को उसके बगीचे के सम्बन्धवाला समझ रहे हैं। शोधन होने पर समझोगे कि मैं मालिक का हूँ। यही त्वं-पदार्थ का शोधन हो जाना है। जीव में से अंतःकरण की उपाधि का निकल जाना ही तो शोधन है। अंतःकरण उसका बनाया हुआ है या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारा बनाया हुआ? जहाँ तुमने अपने इस शोधन को कर लिया तो फिर तुम्हारी बुद्धि को और संसार को प्रवृत्त करनेवाला, दोनों एक हो गये। तब जीव-ईश्वर की एकता को बतानेवाला गायत्री का अंतिम खण्ड सिद्ध हो गया।

यहाँ तो बता रहे हैं कि जब वैदिक धर्म में किसी को दीक्षित करते हैं तब उसका उपनयन संस्कार करते हैं जिसमें गायत्री मंत्र का उच्चारण करवाया जाता है। उसमें प्रार्थना की जाती है कि हमारी बुद्धि को वे शुद्ध करें। यह निश्चय करो कि हम परमात्मा से सम्बन्धित हैं। बाकी सब चीज़ें परमात्मा की ही हैं। ऐसा निश्चय होने पर वे तुम्हारी बुद्धि को साक्षीरूप से प्रवृत्त करेंगे। इसको चलानेवाला वह रह जायेगा, तुम्हारा अहम् चला जायेगा। इसी का उपदेश देने के लिये गायत्री को बताया। समग्र वैदिक धर्म में बुद्धि पर ज़ोर दिया गया है क्योंकि मित्र-भाव में पहले बुद्धि को समझते हैं। यहाँ अथ के द्वारा कह रहे हैं कि जब इस प्रकार से बुद्धि का शोधन हो गया, तब उपासना करे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय प्रवचन

२७.३.७६

'अथ' अनन्तरम् के द्वारा बताया कि परमात्मा के विषय में बुद्धि के द्वारा परमात्मरूप का निश्चय कर लेने या समझ लेने के अनंतर। जब तक किसी चीज़ को समझा नहीं जायेगा तब तक उसमें मन लगेगा नहीं। बिना समझे मन की एकाग्रता नहीं होती। ध्यान करते समय प्रायः मन में यह संदेह उठता रहता है कि मेरा ध्यान जम क्यों नहीं रहा है? ध्यान जमता इसलिये नहीं है कि बुद्धि में इस बात का भली प्रकार से निश्चय हुआ नहीं है। श्रवण और मनन के द्वारा जब तत्त्व निर्णीत हो गया तभी निदिध्यासन ठीक-ठीक बनता है। उसके पहले उपासना तो हो सकती है। 'उपासना नाम मानसी क्रिया' भगवान् भाष्यकार कहते हैं कि उपासना तो मन की एक क्रिया है और क्रिया जो हुआ करती है उसमें विधिप्रयुक्तता होती है, ज़ोर-जबरदस्ती होती है। वह जबरदस्ती चाहे अपने मन के साथ हो, चाहे दूसरे के मन के साथ हो। जैसे विचार करो, क्या किसी पिता को यह उपदेश देना पड़ता है कि तुम अपने पुत्र से प्रेम करो? लेकिन यह उपदेश करना पड़ता है कि अपने भतीजे को भी अपना लड़का समझो। चाहे जितना प्रयत्न करके वह अपने भतीजे को अपना लड़का समझना चाहे पर अंततोगत्वा जब मौका आता है तब पहला विचार यही होता है कि 'यह मेरा पुत्र है। यह तो आखिर भतीजा है'। कारण क्या है? भतीजे में पुत्र-दृष्टि उपासना करके है, भतीजा पुत्र है नहीं। बुद्धि जानती है कि भतीजा पुत्र नहीं है। मन से तुम बुद्धिप्रयुक्त होकर कि 'पिताजी कह गये थे कि छोटे भाई का हाथ तुम पकड़े रहना', इस विधि से प्रयुक्त होकर भतीजे से पुत्र की तरह व्यवहार करने का प्रयत्न करते हो। इसमें विधि-प्रयुक्तता आ गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुत्र में जो प्रेम है वह विधिप्रयुक्त नहीं है। वह बुद्धि के निश्चय से प्रयुक्त है कि यह मेरा पुत्र ही है।

यदि कभी संदेह हो जाये कि क्या यह मेरा पुत्र है? विवाह होकर आयी और ठीक नौवें महीने पुत्र उत्पन्न हो गया। किसी दोस्त ने कह दिया कि 'तू कहाँ फँस गया? यह तो दुनिया भर में दोस्ती करती थी इसीलिये नौवें महीने पुत्र उत्पन्न हो गया'। अब यह निश्चय नहीं रहा कि यह मेरा पुत्र है ही। न यह निश्चय है कि नहीं है। जब कभी कोई परिस्थिति खराब आती है तो मन झट कह देता है कि 'अपना थोड़े ही है'। फिर सोचता है कि 'कहीं का हो, मेरे घर पैदा हुआ है, इस बेचारे का क्या कसूर। मैं तो इसका संरक्षण ही करूँ।' शास्त्रविधि से जानता है कि घर में पैदा हुआ अतः अपना ही है। इसलिये विधि-प्रयुक्त होकर उस बच्चे के साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसा पुत्र के साथ परंतु विधि-प्रयुक्तता है इसलिये वह बात नहीं जो वहाँ है जहाँ निश्चय है कि यह मेरा ही पुत्र है। निश्चय के द्वारा ही 'यह मेरा पुत्र है' - यह भाव है, और कुछ नहीं है।

आजकल अस्पतालों में भी लोग बच्चे पैदा करवा देते हैं। कलकत्ते में अच्छे भले हिन्दू लोग हैं जो बच्चे अस्पताल में पैदा करवा देते हैं। बड़े अस्पताल में एक साथ चार छह बच्चे पैदा होते हैं! एक साथ ले जाये जाते हैं और एक साथ उन्हें नहलाया जाता है। इतने बच्चों में एक भी इधर-उधर नहीं होता होगा इसके बारे में क्या कोई निश्चय कह सकता है? वैपरीत्येन, कई बार ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जिसका बच्चा पैदा हुआ उसके कागज़ में लिखा होता है कि इसके लड़का हुआ और उसके घर लड़की आती है! डाक्टर ने लिखते समय भूल की या देते समय भूल की - इसका कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्णय नहीं हो सकता है। ऐसी तो कई घटनाओं का उल्लेख मिल जाता है। यदि ऐसी घटनाओं में एक दो का भी उल्लेख मिला तो जिनका उल्लेख नहीं है वहाँ कितनी घटनायें होती होगीं, यह अनुमान कर लो। जैसे यदि किसी थाने में चोरी के पच्चीस केस रिपोर्ट हुये तो पच्चीस निश्चित हैं, और उससे कम तो हो ही नहीं सकते, ज़्यादा जितने भी हो जायें। फिर भी सचमुच तो सौ हुये होंगे क्योंकि हरेक आदमी रिपोर्ट लिखाने थोड़े ही जाता है। अस्पताल से आये बच्चे में अपना निश्चय है कि यह मेरा बेटा है। इसलिये वह है या नहीं है, यह विषय नहीं है। यदि बुद्धि का निश्चय है कि यह मेरा पुत्र है तो उसके प्रति प्रेम स्वाभाविक, सहज है, विधिप्रयुक्त होकर नहीं है। और यदि बुद्धि का निश्चय है कि यह मेरा पुत्र नहीं है तो फिर उसके अंदर प्रेम विधिप्रयुक्त होगा, स्वाभाविक नहीं होगा। इसी प्रकार से जब कहते हैं कि शालिग्राम में विष्णु की उपासना करो तो यह विधिप्रयुक्त है। बुद्धि का निश्चय यह नहीं है कि यह विष्णु है। बुद्धि का निश्चय है कि है तो पत्थर का टुकड़ा ही, लेकिन शास्त्र कहता है, गुरु कहता है, कुछ लोगों ने इसकी उपासना करके फल पाया है। इसलिये विधिप्रयुक्त होकर उसमें विष्णु-दृष्टि करके उपासना करता है। यह उपासना तो बनेगी, लेकिन निदिध्यासन नहीं बनेगा। ज्ञान के पहले, श्रवण-मनन के पहले उपासना हो सकती है, निदिध्यासन नहीं। श्रवण-मनन से पहले बुद्धि का निश्चय करना पड़ेगा कि यही आत्मा है, अहम् शब्द का वास्तविक अर्थ है। गलत अर्थों को हटाकर केवल जो अहम्-मात्र बच जाता है वह ब्रह्म है - ऐसा जब श्रवण-मनन से निश्चय हो गया तब बुद्धि का निश्चय पूरा हो गया। अब बिना संदेह के उसमें ध्यान स्वाभाविकरूप से लगता है, विधि नहीं करनी पड़ती कि लगाओ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह जो स्वाभाविकता है इसके होने पर ध्यान का निर्देश करते हुये 'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म' इसे ब्रह्मपुर कहा है। यह जो अपना शरीर है यह साधारण जगह नहीं है, ब्रह्मपुर है, ब्रह्म के रहने की जगह है। ब्रह्म तो सर्वव्यापक है, कण-कण और क्षण-क्षण में विद्यमान है, फिर भी उसकी उपलब्धि वहाँ होती है, मिलता वहीं है, इसलिये उसको ब्रह्मपुर कहा। राजा जहाँ रहे वह राजधानी है। राजा तो बनारस भी भ्रमण करने आ जाता है, हैदराबाद और बम्बई भी चला जाता है! कभी-कभी न्यूयार्क, मास्को इत्यादि देशों में भी चला जाता है। जहाँ भी राजा रहे उसको यदि राजधानी कहेंगे तो वह बदलती रहेगी! राजा जहाँ रहे उसे राजधानी न मानकर, राजा का मतलब राज्य कर लिया जाये और जहाँ राजा का निवास हो, जहाँ से राज्य होता हो उसको राजधानी मान लें तो भी राज्य किसी एक जगह से नहीं होता। हर गाँव में जो पुलिस का थानेदार, तहसीलदार बैठा हुआ है, वह भी तो राज्य का ही कार्य कर रहा है। हर सरकारी काम जहाँ हो उस स्थान को राजधानी कहना पड़ेगा! फिर किसी जगह को राजधानी क्यों कहते हैं? सामान्यतः यदि राजा से मिलना है तो तुमको वह वहीं मिलेगा। हवाई जहाज से उड़कर राजा लखनऊ गया, वहाँ से हैलिकाप्टर में बैठकर बनारस आया। दिन में दो बजे से चार बजे तक भाषण किया और फिर हैलिकाप्टर में बैठकर वापिस चला गया। अगर राजा के सचिव से कहते हो 'मुझे राजा से कोई बात करनी है समय निकालें,' तो वह कहेगा कि राजधानी जाओ, वहाँ मिलेगा। यद्यपि राजा सर्वत्र रहता है लेकिन राजधानी वह है जहाँ वह आसानी से मिल जाता है अर्थात् उपलब्धि-स्थान वही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी प्रकार से यहाँ भी यद्यपि कण-कण और क्षण-क्षण में ब्रह्म व्याप्त है इसमें कोई संदेह नहीं है। सर्वत्र होने पर भी उसकी उपलब्धि का स्थान यह मानव देह है। भगवान् भाष्यकार लिखते हैं 'पुरं च वेश्म यथा राज्ञः' यद्यपि राजा दूसरी जगह जाता है लेकिन कहाँ ठहरता है? राज्यपाल के निवास में या सर्किटहाउस में ठहरता है अर्थात् कहीं-न-कहीं दूसरी जगह ठहरता है। लेकिन जो उसका अपना पुर है, राजधानी है वहाँ राजा का अपना महल होता है। राजधानी में राजा दूसरे के घर नहीं ठहरता। इसी प्रकार से यद्यपि परब्रह्म परमात्म तत्त्व सब जगह मौजूद है, सर्वत्र सर्वव्यापक है, तथापि उसकी अपनी अभिव्यक्ति की जो स्थिति है वह हृदय में ही है। यह शरीर ही ब्रह्म की उपलब्धि का स्थान होने के कारण ब्रह्मपुर हुआ।

इसी ब्रह्मपुर को पुराणादिकों के अंदर कहीं वैकुण्ठ लोक, गोलोक, ब्रह्मलोक से अभिहित किया गया है। भिन्न-भिन्न नामों से उसे कहा गया है लेकिन उन सब नामों से कहा जानेवाला रहता है ब्रह्मपुर इस मानव देह में ही क्योंकि यहीं पर ब्रह्म की उपलब्धि होती है। जहाँ राजा रहता है वहाँ उसके सारे मंत्रीगण, सारे कर्मचारी भी रहते हैं। इसीलिये इस ब्रह्मपुर को दूसरे नामों से भी कई जगह कहा गया है। 'देहो देवालयः प्रोक्तः' शरीर को देवालय बताया। शरीर के अंदर समग्र देवताओं का निवास है। कोई देवता ऐसा नहीं जो मानव देह में न रहता हो। छत्तीस तत्त्व और छत्तीस तत्त्वों के अधिष्ठाता इसमें विद्यमान हैं। हाथरूप से इन्द्र, पैररूप से विष्णु, अग्निरूप से वाणी, सूर्य आँख रूप से, दिक् देवता कानरूप से, अश्विनीकुमार नाक रूप से इत्यादि शरीर के प्रत्येक अंग में देवताओं का निवास है क्योंकि इसके अंदर साक्षात् परब्रह्म परमात्मा बैठा हुआ है। यद्यपि इसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठा हुआ है लेकिन उपलब्धि का रूप ज़रा अलग हो जाता है। स्कन्दपुराण में बताया कि जिन्होंने ठीक प्रकार से परब्रह्म परमात्म तत्त्व का अनुभव कर लिया, सम्यक् ज्ञान अर्थात् असम्भावना-विपरीत भावना से रहित, प्रतिबंधकों से रहित, विक्षेप से रहित जो परमात्मतत्त्व को जान गये हैं, उन्हें अपने शरीर में सब देवता प्रत्यगात्म-रूप से प्रतीत होते हैं।

ज्ञान और सम्यक् ज्ञान में फ़र्क है। ज्ञान हो जाता है लेकिन जब तक उस ज्ञान को इतना ज़्यादा अंतःकरण या मन में जज़्ब न कर लिया जाये कि वह पूरी तरह से रिझ जाये, तब तक वह सम्यक् नहीं कहलाता। जैसे सुराही के अंदर पानी भरते हो तो धीरे-धीरे सुराही का पानी उसमें रिझता है। पहले दो दिन तक वह पानी मिट्टी की गंध देता है। बुद्धिमान् पत्नी को यदि पता लग जाता है कि पति विदेश से घर आ रहा है तो चार दिन पहले से ही नई सुराही खरीद कर उसमें दिन भर पानी रखती है, फिर खाली कर देती है। फिर शाम को भर देती है और सवेरे खाली कर देती है। चार दिन तक इस प्रकार से सुराही को बिलकुल रिझा कर तैयार करती है। पति उस सुराही का पानी पीकर प्रसन्न होता है कि कितना बढ़िया ठण्डा जल है। और यदि फूहड़ पत्नी हो तो पति के घर पहुँचने के बाद नौकर को अठन्नी देकर कहती है कि इनके लिये सुराही ले आओ। दो घण्टे बाद वह कहता है 'ज़रा पानी पिलाओ' तो वह कहती है 'सुराही मँगाई है, आ रही है!' सुराही आ गई, उसमें पानी डाला, वह पीकर कहता है 'मिट्टी की गंध आ रही है।' वह कहती है 'सुराही नई है। दो चार दिन बाद वह पानी पीने लायक होगा।' फ़र्क यह है कि एक में जल रिझ गया है, दूसरे में नहीं रिझा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फुलका बनता है। आजकल लोग फुलका कहाँ खाते हैं! चपाती खाते हैं। फुलका कोयलों के ऊपर फूलता है और जिनके भाग्य में गैस की रोटी लिखी है, वे तवे पर ही चपाती बनाकर खाकर जिंदगी काटते हैं। तुम लोगों के घर तो फुलका बन जाता होगा क्योंकि सब सत्संगी लोग हो। क्या कारण है कि किसी फुलके को खाते हैं उसमें लोच होती है, स्वाद होता है, फूला होता है। किसी फुलके को खाते हो तो चिवड़ा चिमड़ा होता है? दोनों में क्या फ़र्क है? यदि पति को ग्यारह बजे घर से जाना है तो साढ़े छह बजे आटा गूंथकर उसमें गड्ढा करके पानी डाल दिया जाता है। कहीं लोटा भर पानी उसमें नहीं डाल देना! दस-पन्द्रह मिनट बाद वह पानी उसमें जज़्ब हो जाता है। उस आटे के लोंदे को एक बार फिर रगड़ दिया जाता है। फिर उसमें थोड़ा पानी डाल दिया; आधे घण्टे बाद फिर वही क्रिया। चार घण्टे तक पानी उसमें खूब जज़्ब होकर जब उसका फुलका बनता है, तब आनन्द आ जाता है। और अगर ग्यारह बजे पति को जाना है तो सवा दस बजे आटा कनस्तर से निकालना है, तब उसमें पानी रिझेगा कहाँ से! फिर पत्नी को डर लगता है कि कहीं फुलका बेलन में चिपट न जाये, अब वह अपनी चतुराई लगाती है। थोड़ा सा घी डाल देती है जिससे आटा चिपके नहीं। चतुराई तो काम कर जायेगी लेकिन स्वाद कहाँ से आना है? उसके पति को डाक्टर ने कह रखा है कि तुम्हारा क्लोरोस्ट्रोल अधिक है, इसलिये सूखा फुलका खाना। वह खाता सूखा फुलका ही है। डाक्टर सिर खुजलाता है कि घी इसने बन्द कर रखा है फिर बात क्या है कि क्लोरोस्ट्रोल कम नहीं है? उसको क्या पता कि घी तो पेट में जा रहा है क्योंकि साढ़े छह बजे कौन आटा गूंथ कर रखे! केवल जल डालने से नहीं होगा, उसको रिझाना पड़ेगा। जितना रिझेगा उतना ही उसमें स्वाद और आनंद आयेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठीक इसी प्रकार से पहली बार पानी डाल दिया, श्रवण-मनन हो गया। आटे का लोंदा तैयार हो गया। ज्ञान तो हो गया लेकिन जब तक निदिध्यासन लम्बे समय तक करके उस ज्ञान को रिझाओगे नहीं, तब तक सम्यक् ज्ञान होगा नहीं। अब उसमें जबरदस्ती घी को डाला अर्थात् दाँत भींच कर आदमी चाहता है कि जल्दी निष्ठा पैदा करूँ। आचार्य विद्यारण्य स्वामी कहते हैं कि जिस प्रकार यदि तुमको खेती करनी है तो छह महीने में ही अनाज तैयार होगा 'कालेन परिपच्यन्ते कृषिगर्भादयो यथा, तद्वद् आत्मविचारोपि कालेन परिपच्यते।।' जिस प्रकार खेती काल लेकर ही पकेगी, उसमें स्वाद होगा। यह दृष्टान्त भी अब धीरे-धीरे ढीला पड़ रहा है क्योंकि कहते हैं हमने ऐसा बीज निकाल लिया है जो दो महीने में ही गेहूँ तैयार हो जायेगा अथवा सत्तर दिन में चावल तैयार हो जायेगा और इस प्रकार दो खेती कर लेंगे। एक बार हम वहाँ गये थे जहाँ ऐसी खेती होती है, वहाँ का फुलका खाया तो किसी स्वाद का नहीं। हमने पूछा यहाँ कैसा गेहूँ होता है? कहने लगे -'लोग भूखे मर रहे हैं और आप स्वाद देखते हैं!' हमने समझ लिया धीरे-धीरे सर्वत्र यही होना है। हमने उनसे कहा कि उसमें थोड़ा भूसा मिला लिया करो, पेट तो भर ही जायेगा! स्वाद तब तक नहीं हो सकता जब तक काल से पक्व नहीं होगा। इसी प्रकार से अब पाश्चात्य देशों के अंदर ऐसे प्रयोग हो रहे हैं जिसमें तीन महीने के गर्भ को माता के पेट से निकालकर मशीन में पकाते हैं। अभी तीन महीने का यह हिसाब नहीं बैठा है लेकिन तीन महीने के बाद माता को सगर्भता का अनुभव नहीं करना पड़ता। उसे आपरेशन से निकालर मशीन में पका देते हैं। लड़के तो वे भी पैदा हो ही रहे हैं। उनकी गुणवत्ता क्या बनेगी, यह तो जब वे बड़े हो जायेंगे तब पता लगेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतना निश्चित है कि हमारे यहाँ दो बार ऐसे प्रयोग विशाल पैमाने पर हुये। हमारे ऋषियों ने सभी प्रयोग करके देखे। राजा सगर के साठ हज़ार पुत्र गर्भ से पैदा नहीं हुये थे। पेट में गर्भ आने के पहले उन्हें बाहर निकालकर घड़ों के अंदर तेल डालकर पैदा किया गया था। घड़ा मायने पानी पीने का घड़ा ही नहीं, वरन् यंत्र-विशेष है। तेल भी केवल कड़वा तेल नहीं, वरन् औषधि-विशेष। अतः यंत्र-विशेष तथा औषधि-विशेष का प्रयोग करके पैदा किये गये। आज यदि वैद्य के पास जाओ तो उसके द्वारा बताये गये महानारायण तैल, विषगर्भ तैल भी तेल ही हैं लेकिन वे केवल तेल न होकर औषधियाँ हैं। बड़े-बड़े यंत्र को भी अंग्रेजी वाले ट्यूब कह देते हैं। जिस चीज़ में प्रयोग किया जाये वह टैस्ट-ट्यूब कही जाती है। जैसे उनका ट्यूब शब्द व्यापक अर्थवाला, वैसे ही हमारे घट और तैल शब्द व्यापक हैं। एक प्रयोग सगर के समय में किया गया और दूसरा प्रयोग धृतराष्ट्र के समय में किया गया। उसके भी जब गर्भ निकला तो वह केवल पिण्ड मात्र निकला था जिसके सौ टुकड़े करके रखे गये। इस प्रकार से पैदा की गई दोनों संततियाँ हमारे यहाँ मानवता की दृष्टि से बेकार निकली, नाशक संतति निकली, मनुष्य के योग्य संतति नहीं निकली। यह नहीं समझ लेना कि ये दो ही प्रयोग किये गये, न जाने कितनी बार प्रयोग किये होंगे। समझने के लिये प्रयोगों का अंतिम परिणाम वर्णित कर दिया जाता है। उसके पूर्व न जाने कितने प्रयोग असफल हुये होंगे। जैसे भविष्य में तो इतना ही याद रहेगा कि अमुक तारीख को चन्द्रमा में गये थे। उसके पहले के सारे प्रयोग थोड़े ही याद रहते हैं। लेकिन इन दोनों प्रयोगों के द्वारा हमने जान लिया कि यंत्र-प्रयुक्त जो संतति पैदा होती है वह मानव के लायक संतति नहीं रहती। उसमें मनुष्योचित गुण विद्यमान नहीं होते। इसलिये उनका बहिष्कार कर दिया गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि ये ठीक नहीं। इसी प्रकार से कृषि का हाल हम लोगों को प्रत्यक्ष दीख रहा है। बड़े-बड़े गोभी के फूल आते हैं। लेकिन ज़रा याद करो कि बचपन में जो छोटी गोभी आती थी उसका स्वाद कैसा होता था? पहले की कनक का स्वाद याद करो तो अपने आप पता लग जायेगा। जैसे कृषि में, ऐसे ही यदि भविष्य में मानव उस प्रकार से पैदा करोगे तो वैसी ही उनकी योग्यता बनेगी।

ठीक इसी प्रकार से ज्ञान की सम्यक्ता भी जबरदस्ती और जल्दबाजी में नहीं बनती है। इसलिये कहा कि जिस प्रकार से कृषि और गर्भ समय से ही तैयार होंगे वैसे आत्मविचार भी एक दिन में नहीं पक जाता है। वह धीरे-धीरे अंतःकरण से अंदर रिझाना पड़ता है। इसी का नाम निदिध्यासन है। जब पूरी तरह से रिझ जायेगा तब वह सम्यक् ज्ञान होगा। स्कन्दपुराण बताता है कि इस प्रकार जिसका ज्ञान रिझ गया है अर्थात् प्रत्यक्ष हो गया है उसके अपने शरीर में सारे देवता प्रत्यगात्मतया भात होते हैं। उसको दोनों प्रकार से भान होता है। उसको इन्द्र वरुण यम आदि ऐसे नहीं लगते कि जैसे कोई दूसरे हों बल्कि यह लगता है कि मैं ही इन्द्ररूप से हाथ में, सूर्यरूप से आँख में बैठा हुआ हूँ, मैं ही अश्विनीरूप से नासिका में बैठा हुआ हूँ इत्यादि। जिसका ज्ञान सम्यक् अर्थात् पूर्ण हो गया उसको अपने शरीर में सब देवताओं का भान प्रत्यगात्मरूप से होता है। यही मेरा स्वरूप है - इस रूप से भान होता है। चूँकि प्रत्यगात्मरूप से भान होता है इसलिये उसमें कभी द्वैत-बुद्धि का उदय नहीं होता। यह केवल मुँह से बोलने की बात नहीं है। शुरू में रटा देते हैं कि किस इन्द्रिय का कौन-सा देवता, अंतःकरण में मन का कौन-सा देवता इत्यादि। यहाँ वे रटे हुये देवता नहीं कह रहे हैं! यहाँ तो प्रत्यगात्मरूप से और देवतारूप से, दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपों से जो प्रत्यक्ष भान या अनुभव होता है उसे कह रहे हैं। जो इस प्रकार ज्ञानवाला है, जिसका ज्ञान दृढ हो गया है, असम्भावना और विपरीत भावना से रहित हो गया है, उसके लिये यह देह साक्षात् ब्रह्मपुर ही है। यह देह समष्टि का अंग है।

एक बार जब युधिष्ठिर शकुनि के साथ बैठकर जुआ खेल रहे थे तब युधिष्ठिर जीतते जा रहे थे। जुए में सबसे बड़ा दोष क्या है? यदि हारे तब तो अच्छा है। दो-एक दाव खेलकर हार गये तो चित्त दुःखी हो जाता है और जुआ छोड़कर व्यक्ति घर आ जाता है। जुए का असली घाटा वहाँ है जहाँ जीतते हैं। जहाँ जीतना शुरू हुआ वहाँ उसका नशा बढ़ता है। सब चीज़ों में नशा होता है। यह सूत्र राजकीय मनुष्य जानते हैं कि कैसे मनुष्य को नशा देना चाहिये। तुम्हारे पास पचास हज़ार रुपये हैं, तुमने दुकान खोली, व्यापार कर रहे हो और बैठे खा रहे हो। यदि तुमको दुःखी करने का निर्णय कर लिया तो क्या करना चाहिये? तुमसे आकर कहें कि 'पचास हज़ार का काम कर रहे हो, हम तुमको सस्ते ब्याज पर चार लाख रुपये देंगे, तुम विकास करो। बाज़ार में आठ प्रतिशत पर मिलता है और हम चार प्रतिशत पर दे रहे हैं और लौटाने की भी कोई जल्दी नहीं है, पन्द्रह साल में भुगतान करना'। अब पचास हज़ार तुम्हारे और दो लाख उनके, ढाई लाख हो गये। अन्य कई वित्तीय संस्थायें भी कहती हैं कि दो लाख हमसे भी ले लो। तुमने सोचा कि हमारा आधार आठ लाख का हो गया इसलिये अब बाजार से भी ले सकते हैं! ये चार प्रतिशत में दे रहे हैं, वहाँ से बारह प्रतिशत में भी आयेगा तो कोई बात नहीं, घर में तो आठ प्रतिशत ही पड़ेगा। ले लिया और अब तुमको पंद्रह लाख रुपये से व्यापार करने का नशा जम गया। पाँच सात साल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में अच्छा नशा हो गया। जब दूसरों ने कहना शुरू किया कि 'हमारे रुपये वापिस करो' तो अब पचास हज़ार में काम करने में तुम्हारा दिल बैठता है कि 'लाखों में खेल किया हुआ, हज़ारों में कैसे करें!' नशा वही है। इसलिये उस नशे में वे चार प्रतिशत की जगह उन्नीस प्रतिशत भी कर दें तो नाक के ज़ोर से भरोगे। बुद्धिमान् नेता पहले नशा लगा देते हैं। जब एक बार नशा लग गया तो काम चल गया, अब वे जैसा नचायेंगे नाचना पड़ेगा। किसी भी चीज़ में यही नियम काम करता है।

ऐसे ही जब वेदांत-विचार करते हो तो पहले थोड़ा-सा नशा लगता है, यह भी एक नशा है। यदि उस नशे को लेकर के तुमने यह याद रखा कि 'पूँजी तो पचास हज़ार की ही है, इसलिये पूँजी बढ़ानी है। केवल यह नहीं देखना है कि हमको धन मिल गया।' तब तो धीरे-धीरे वह जम जायेगा, नहीं तो जम नहीं पायेगा। सम्यक् अर्थात् अच्छी प्रकार से जब ज्ञान हो जाता है, असम्भावना और विपरीत भावना से रहित होता है, तब वह ऐसा जम जाता है। उससे जो शरीर में भान होता है वह प्रत्यक्ष भान है। उसके भान में कहीं कोई ढीलापन नहीं होता, कोई गड़बड़ी नहीं होती। जब तक सम्यक् ज्ञान नहीं होता तब तक क्या होता है? सम्यक् ज्ञान हुआ तो नहीं है, लेकिन जिसने अपने शरीर में रहनेवाले देवताओं को अच्छी प्रकार से समझा है, यह याद कर लिया कि हाथ का देवता इन्द्र, पैर का अधिष्ठाता देवता विष्णु इत्यादि लेकिन अभी यह अपनी पूँजी नहीं बनी है, उसे वह अपना बनाना पड़ेगा। वेद-मार्ग में निष्ठावाले के शरीर से जितनी क्रियायें होंगी, विशुद्ध होंगी। श्रुति कहती है 'सत्यमेव जयते नानृतम्'। सत्य जीतता है। बुद्धि, मन, साथी, संगी, वकील सब कहते हैं झूठ जीतता है इसलिये झूठ बोलो तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम बनेगा। जो वेदमार्ग में निष्ठा वाला होगा वह तो जानेगा कि जीत सत्य की ही है, और जिसकी वेदमार्ग में निष्ठा नहीं होगी वह कहेगा कि 'यह बात तो छोड़ो, आगे की बाँचों! यहाँ तो हम अपनी बुद्धि की ही बात मानेंगे। झूठ बोलकर ही काम होता है।' तब मनुष्य का आत्मा विशुद्ध नहीं हो पाता, शरीर में शुद्धि नहीं आ पाती। क्या वहाँ देवता नहीं रहते होंगे? ऐसा नहीं। देवता लोग तो वहाँ भी भात होते हैं किंतु 'न प्रत्यगात्मतया;' वहाँ पर देवतारूप से तो उसे भान होता है, हाथ काम कर रहा है तो इन्द्र की शक्ति है; लेकिन 'मैं इन्द्र हूँ' - ऐसा भान नहीं होता है। विवेकचूडामणि में ज्ञान होने के साथ ही शिष्य कह उठता है 'नारायणोहं नरकान्तकोहम्' 'मैं ही नारायणरूप में आया था, मैंने ही नरकासुर को मारा था। मैं नित्य रहनेवाला और त्रिपुरासुर को नष्ट करनेवाला भी हूँ।' उसका अनुभव 'मैं ही हूँ', यह है। ऐसे ही वामदेव ज्ञान होते ही कहते हैं कि 'मैं ही मनुरूप से आकर वर्णाश्रम व्यवस्था को बना गया और मैं ही सूर्यरूप से आज भी प्रकाशित हो रहा हूँ।' यह तत्त्वनिष्ठ का अनुभव है। इससे पृथक्, वेदमार्गनिष्ठ को इतना तो निश्चित है कि हाथ को चलानेवाला इन्द्र देवता, पैर को चलानेवाला विष्णु देवता है पर 'मैं ही इन्द्ररूप से हाथ को और विष्णुरूप से पैर को चला रहा हूँ' - यह भान नहीं होता। हाथ और इन्द्र का जो वास्तविक अभेद है, व्यष्टि और समष्टि की जो एकता है, वह उसे प्रतीत नहीं हो सकती जैसे दूसरे के रुपये को लेकर व्यापार करते हुये 'यह मेरा रुपया है' यह कहते तो हो, लेकिन दिल जानता है कि नहीं है। इसी प्रकार 'हाथ को चलानेवाला इन्द्र अंदर रहनेवाला आत्मा मैं हूँ' - ऐसा शास्त्र-श्रद्धालु लोग कह तो देते हैं, लेकिन प्रत्यगात्मतया भात नहीं होता। सम्यक् ज्ञानवाले के लिये वस्तुतः ब्रह्म और ब्रह्मरूपता है भी और भान भी होती है। वेदमार्गनिष्ठ को भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मरूपता है -इसमें संदेह नहीं, लेकिन उसे भान नहीं होती है।

जिसके अंदर यह वेदनिष्ठा भी नहीं है 'यथाजातजनानां तु शरीरे सर्वदेवताः तिरोभूततया' उसे देवता भी छिपे हुये ही लगते हैं। 'यथाजातजन' अर्थात् जो लोग जैसे पैदा हुये थे, वैसे ही आज भी हैं। उन्होंने शास्त्र आदि के द्वारा वेदमार्ग में ही निष्ठा नहीं प्राप्त की। वेद की आज्ञा से ही उन्होंने जीवन ढाला हो, ऐसा नहीं। इसलिये वे अशुभ कर्म करते रहते हैं। वे आत्मा के बारे में भी सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकते। वे जैसे पैदा हुये थे वैसे ही अब भी हैं। वे कौन हैं? यह हम नहीं बतायेंगे! घर जाकर विचार करते रहना और सूची बनाते रहना। जैसे पैदा होकर हम सांसारिक कर्मों को करते थे वैसे ही अब भी जो चीज़ सामने आ गई उसको मुँह में डालते रहते हैं। जब पैदा हुये थे तब खिलौना आदि जो सामने आये, सब मुँह में डाल लेते थे, इसी प्रकार जो यथाजात जन हैं उनका लक्षण है कि आज भी जो विषय सामने आया, कोई रूप दीख गया तो आँख में घुसाते जाते हैं। किसी की पत्नी का रूप है, 'मुझ से इसका क्या सम्बन्ध है' - इसका कोई भान नहीं रखते और रूप का भोग करने लगते हैं। हमारे यहाँ तो यहाँ तक मानते हैं कि यदि किसी को एक बार मुख से भी कह दिया 'बहिनजी' तो फिर वह बहन हो जाती है। एक कथा आती है : एक सेठ था। पुराने ज़माने में पैदल ही यात्रा होती थी। वह शहर से अपने गाँव को जा रहा था। रास्ते में उसे भूख लगी, उसके पास सत्तु था वह उसे खाने के लिये कुयें की जात चबूतरे पर बैठ गया। जवान था ही, सत्तू खाने की तैयारी कर रहा था। तब तक वहाँ एक युवती आई। उसने कुयें से बालटी भरकर अपना घड़ा भरा। उसने इधर-उधर देखा कोई नज़र नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया तो उसने उस सेठ से कहा 'भैया! मेरा घड़ा उठवा दोगे।' वह झट से खड़ा हुआ और घड़ा उसके सिर पर रखवा दिया। बात खत्म हो गई। वहाँ से वह अपने घर चला गया। कुछ दिनों के बाद गौना, द्विरागमन . की बात आई। आजकल तो विवाह, गौना, तीजा फेरा सब एक में ही मिल जाते हैं। न फुलका बनाने में और न ब्याह करने में ही चार घण्टे लगते हैं! वह गौने के लिये गया तो सालियाँ जीजा से मज़ाक करने आईं। जब वे सामने आईं तो उनमें से एक साली वही लड़की थी जिसको उसने घड़ा उठवाया था और उसने भैया कहा था। जैसे ही उसने देखा कि यह मेरी साली है तो उसका माथा ठनका। साली को भी ज़रा शर्म आ गई। जो साली का भाई हुआ तो पत्नी का भी भाई हुआ! दोनों नीचा सिर करके बैठ गये। लोग पूछने लगे कि बात क्या है? वह लड़की माता-पिता के पास गई और कहा कि 'बड़ी गलती हो गई। यह एक दिन इधर से निकल रहा था और मैंने कुये पर इसे भैया कहा।' उस ज़माने में भी दो-चार यह कहनेवाले मिल गये कि 'वह तो बिना जाने हो गया, इसमें क्या हो गया!' उसके माता-पिता दृढ-निश्चयी ही थे। कहने लगे, 'कह दिया तो कह दिया। मेरी यह पत्नी है - यह भी तो कहा ही जाता है। कल कोई उसमें भी नट जाये तो क्या होगा?' यह तब की बात थी जब नटनेवाली बात को लोग नहीं समझते थे। अब तो उसका नाम ही तलाक दे दिया है। अर्थात् पहले प्रतिज्ञा करो और फिर नट जाओ। जैसे किसी को लिखकर दो कि मैं रुपया दे दूँगा और फिर नट जाओ कि ' हुण्डी ही तो लिखी है, अब नहीं देते!' इसी प्रकार 'मेरी पत्नी है', अग्नि के सामने यह प्रतिज्ञा की और फिर नट गये। लेकिन लड़की ने कहा 'मैंने तो कुयें के सामने खड़े होकर जल देवता के सामने इसे भैया कह दिया।' माता-पिता ने भी कहा कि बात तो ठीक ही है। विवाह तो हो गया था लेकिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आजीवन वे लोग भाई-बहन की तरह ही रहे। यह दृष्टि बनती है। आजकल का ज़माना तो छोड़ो, न जाने किस-किस को बहनजी, भाईजी कहते रहते हैं, आगे क्या-क्या बनते हैं पता नहीं।

'यथाजात' का मतलब हुआ कि जैसे पैदा हुये थे वैसे ही अब भी हैं। किसी का रूप देख रहे हो, सोचते हो, 'शादी हो गई होती तो बड़ा अच्छा होता'। जैसे बच्चा जो भी चीज़ सामने आये उसे मुँह में डालता है, ऐसे ही वह किसी की पत्नी है, हमारा क्या सम्बन्ध है, इसका कुछ विचार नहीं करते। कोई दूसरे की निंदा कर रहा है, तुम्हारा कोई मतलब नहीं लेकिन कान में भरे जा रहे हो। जो चीज़ इन्द्रियों के सामने आई, उसे अंदर घुसाते चले गये। इसलिये जैसे पैदा हुये थे, वैसे ही अब भी हैं। कोई सभ्यता, कोई सलूक अब तक उनमें नहीं आया। ऐसे व्यक्तियों के अंदर भी देवता तो रहते हैं लेकिन 'तिरोभूततया भांति' तिरोहित हुये रहते हैं। उनको पता नहीं चलता है कि उनको चलानेवाले देवता हैं और न यह पता है कि मैं देवतारूप से चला रहा हूँ। बस, दबी हुई अवस्था में वे देवता छिपे हुये बैठे हैं, लेकिन रहते ज़रूर हैं। यह देवताओं का निवास होने के कारण ब्रह्मपुर है। देवता चूँकि परब्रह्म परमात्मा के कार्य-संचालक हैं इसलिये वे इसमें रहते हैं। साक्षात् ब्रह्म के रहने की जगह होने के कारण इसे ब्रह्मपुर कहा। इसमें हृदय-रूप देश में साक्षात् ब्रह्म रहता है और बाकी हाथ पैर आदि इन्द्रियों में तत्तद् स्थलों में तत्तद् देवता कार्य करनेवाले रहते हैं। इस ब्रह्मपुर में आकर क्या करना चाहिये, इस पर आगे विचार करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ प्रवचन

२८.३.७६

श्रुति भगवती ध्यान का विधान करने के लिये बताती है 'अथ' अर्थात् उस परमात्मतत्त्व और अपने सम्बन्ध को भली प्रकार से समझने के बाद। निरंतर अनुभव में आने वाले तीन पदार्थ हैं - जीव, जगत् और ईश्वर। इन तीन चीज़ों का निरंतर हमारे जीवन में सम्बन्ध होता रहता है। जीव अर्थात् मैं। जहाँ-जहाँ मैं का अनुभव होता है वहाँ-वहाँ जीवपना है। मैं अर्थात् कर्म करनेवाला, पदार्थों को जाननेवाला, विचार करनेवाला और अनंत इच्छाओंवाला। मैं जहाँ रहेगा वहाँ ये तीनों चीज़ें रहेंगी - कुछ-न-कुछ जाने बिना मैं नहीं रहेगा, कुछ-न-कुछ किये बिना मैं नहीं रहेगा और कुछ-न-कुछ इच्छा बिना मैं नहीं रहेगा। यही जड और चेतन में भेद है। जड न कुछ कर सकता है, न कुछ जान सकता है और न उसको किसी प्रकार की इच्छा ही है। 'जडे स्वतः प्रवृत्त्यभावात्' जड के अंदर यदि क्रिया देखने में आती है तो उसके पीछे किसी-न-किसी चेतन का अनुमान होता है। अन्धविश्वास से कई बार आदमी मान लेता है कि छोटी-छोटी प्रवृत्तियाँ तो जड नहीं कर सकता, बड़ी प्रवृत्तियाँ कर सकता है! इसका नाम अंधविश्वास है। यह विचार ठीक से समझना, क्योंकि खास करके यह प्रश्न कई बार सामने आयेगा जब बच्चों के साथ व्यवहार करोगे। उन लोगों को अंधविश्वास यह बिठाया जाता है कि छोटी-छोटी चीज़ें तो चेतन करता है और बड़ी-बड़ी चीज़ें जड करता है। यह उनके अंधविश्वास का स्वरूप है। दो बातें उनसे बात करने पर पाओगे। यदि किसी सामान्य व्यवहार के बारे में कह दो कि 'जैसा होना होगा' तो उनका तुरंत जवाब होता है कि 'मनुष्य ने अपनी सामर्थ्य से चन्द्रमा पर आरोहण कर लिया,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य ने अपनी सामर्थ्य से हवा पर घूमना सीख लिया और आप लोग अब भी हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना चाहते हो!' अर्थात् ये सब क्रियायें चेतन ने कीं। फिर कुछ समय के बाद जब उनसे कहोगे कि पृथ्वी को घुमानेवाला कौन है? तब बात बदल जायेगी। कहेंगे कि यह तो अपने-आप घूमती है! सूर्य को अग्नि देनेवाला कौन है? 'यह अपने आप गरम है।' नदियों को प्रवाहित करनेवाला कौन है? 'अपने आप बह रही हैं।' अंधविश्वास के कारण यह विरोध नहीं देख पाते कि यदि नदी अपने आप बह सकती है तो नल के पानी के लिये पम्प लगाना भी अपने-आप ही हो जाता है। वहाँ चेतन को क्यों बीच में लाते हैं?

समग्र आधुनिक विचार और पाश्चात्य सभ्यता इस अन्तर्द्वन्द्व से पीडित है। इसलिये हमेशा एक पक्ष से दूसरे पक्ष में आते रहते हैं। आज तक वे इस बात का निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि क्रिया चेतन में है या जड में। कुर्सी यदि एक कोने से दूसरे कोने में रखी गई तो किसी ने रखी। परमाणु में यदि ऋणाणु एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं तो अपने आप घूमते रहते हैं! सब जगह यह अन्तर्द्वन्द्व या विचारगत विरोध है। इसी अन्तर्द्वन्द्व से पीडित होने के कारण बच्चा खुद पढ़ जाता है, खुद प्रथम श्रेणी में आता है अपनी मेहनत करके, लेकिन फेल या कम नम्बर मास्टर लोग दिया करते हैं! क्या कोई लड़का यह कहता है कि 'मेरा परीक्षक बड़ा उदार दिल था इसलिये मेरी प्रथम श्रेणी आई, नहीं तो मैं तो रसगुल्ला मार्का था'? जहाँ सफलता मिली, वहाँ 'मेरी मेहनत है। मैं तैयार करके ले गया था।' जहाँ फेल हो गया, वहाँ, 'आजकल के मास्टर लोग कापी जाँचते थोड़े ही हैं, ऐसे ही नम्बर दे दिया करते हैं'। इसी प्रकार से यदि राष्ट्र में अनाज ज़्यादा हो गया तो, 'हम लोगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने कितने फर्टिलाइज़र, कितने नये-नये बीज मँगाये, कितना परिश्रम किया तब देश को हमने भोजन के मामले में स्वतंत्र किया'। और यदि भोजन कम हो गया, तो 'क्या बतायें, बाढ़ों ने कर दिया, सूखे ने कर दिया'। यह अन्तर्द्वन्द्व है। देश में जितनी उन्नति होती है वह सरकार करती है और जितनी उन्नति में रुकावट होती है वह विरोधी लोग या जनता किया करती है। उन्नति का कारण एक और अवनति का कारण दूसरा। यह जो अन्तर्द्वन्द्व नीचे से ऊपर तक है, यह सारा का सारा पाश्चात्य विचारधारा से आया है।

इस अन्तर्द्वन्द्व को हटाने का केवल एक ही उपाय है - या सर्वत्र चेतन को कार्य के प्रति कारण मानो, या जड को कारण मानो। एक निर्णय पर टिकना पड़ेगा। अनुभव कहता है कि जड में स्वतः प्रवृत्ति देखने में नहीं आती। इसीलिये जहाँ जड पदार्थ में क्रिया देखने में आती है और क्रिया करनेवाला कोई चेतन हमें नहीं भी दीख रहा है, वहाँ व्यापक चेतन परमेश्वर ही उसके पीछे है। 'जहाँ चेतन क्रिया करता नहीं देखने में आता है', इस पूरे वाक्य को बिलकुल ध्यान से समझना। हमारे सारे शरीर में हम चेतन मौजूद हैं लेकिन क्या हम अपने यकृत से स्रावों को करते हैं, या यकृत से स्राव अपने आप होते हैं? मानना पड़ेगा कि हमने आज तक यकृत का दर्शन ही नहीं किया। क्या स्राव निकलते हैं, यही हमको नहीं पता तो हम उन स्रावों के कर्ता कहाँ से हैं! हृदय से रक्त दिमाग से लेकर पैर के अंगूठे के कोने तक पहुँचता है। क्या हम पहुँचाते हैं या अपने आप पहुँचता है? हमको आज तक यही नहीं पता कि हृदय में कितने वाल्व हैं। डाक्टरों को पता होगा लेकिन उनको भी पूरा पता नहीं; उनसे पूछें कि 'तुम्हारे हृदय के वाल्व का व्यास कितना है, यही बता दो।' तो कहेंगे कि 'सामान्यतः अमुक माप होता है' अर्थात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने वाल्व का उन्हें भी पता नहीं है। स्वयं डाक्टर को पता नहीं पर रक्त का संचार निरंतर है। इन सब चीज़ों को, क्रियाओं को शरीर में करनेवाला व्यापक चेतन कोई-न-कोई परमेश्वर है। चेतन की उपस्थिति मात्र से वह उसका कर्ता नहीं होता है क्योंकि चेतन तो शरीर में है ही लेकिन जब तक हम उस उपाधि से कर्त्तृत्व-भाव को प्राप्त न हो जायें तब तक हम उसके कर्ता चेतन नहीं। जिस-जिस कार्य के कर्ता हम नहीं उस-उस कार्य का कर्ता भी चेतन ही है, उपाधि उसकी भिन्न है यह बात दूसरी है। शरीर में भी जितनी क्रियायें होती हैं उन सब क्रियाओं को करनेवाला परमेश्वर चेतन है। जहाँ हम करते हैं कर्त्तृत्व अभिमान से, जैसे नाक पर मक्खी बैठ गई और उड़ा दी, वहाँ कार्य हमने किया क्योंकि हमें अवबोध हो रहा है, प्रतीति हो रही है कि 'मैं उड़ा रहा हूँ'। कर्त्तृत्व जड में नहीं हो सकता, चेतन में ही होगा। इसी प्रकार ज्ञान भी कभी किसी जड पदार्थ को नहीं होता। हज़ारों साल से ईंट पड़ी रहे, उस ईंट के ऊपर से लाखों चूहे निकल जायें लेकिन क्या ईंट को पता है? इसलिये किसी भी जड पदार्थ में ज्ञान नहीं। 'मैं जाननेवाला हूँ' यह मेरे अंदर हमेशा रहता है। इसी प्रकार मेरे अंदर इच्छा रहती है। ईंट को कोई इच्छा नहीं है। रत्न को कोई इच्छा नहीं है। इच्छा तो जीव को रहती है, चेतन को रहती है।

संसार में तीन पदार्थों का अनुभव है, उनमें पहला अनुभव, पहला पदार्थ जीव। जीव मायने ज्ञान, इच्छा, क्रिया तीनों के आश्रयभूत हम। दूसरी चीज़ अनुभव में आती है जगत्, जिसका हमें ज्ञान होता है, जिस पर हम क्रिया करते हैं और जो हमारी इच्छा का विषय बनकर सुख या दुःख देता है। सुख और दुःख का अनुभव इच्छा के द्वारा होता है, पदार्थ के द्वारा नहीं। चीज़ सुख-दुःख कभी नहीं दे सकती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख-दुःख तो हमारी इच्छा देगी। हम दक्षिण भारत के रहनेवाले उत्तर भारत में आ गये। हमारी इच्छा हुई कि हम शक्कर पोंगल खायें जो उधर की एक मिठाई होती है। यहाँ हमसे लोग कहते हैं जलेबी, बालूशाही, ढोढा, पिन्नी सब खा लो और बड़े प्रेम से लाते हैं। लेकिन उनको खाने पर भी हमें सुख का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है? क्योंकि वह हमारी इच्छा का विषय नहीं है। इच्छा का विषय तो शक्कर पोंगळ है। पंजाब का रहनेवाला दक्षिण भारत में पहुँच गया। वहाँ उसको कहते हैं कि चित्रान्ना खा लो, दोशे खा लो। वह कहता है कि 'मुझे तो आलू और पनीर भरा हुआ भठूरा खिलाओ।' वहाँ चाहे जितना बढ़िया चित्रान्ना बनाकर दें लेकिन उसे सुख का अनुभव नहीं क्योंकि वह उसकी इच्छा का विषय नहीं। सुख-दुःख पदार्थ नहीं देते, सुख-दुःख देनेवाली चीज़ इच्छा है। ज्ञान तो पदार्थ देता है। पीले रंग का फूल तुम्हारे अंदर पीले ज्ञान को पैदा करता है। शक्कर हमारी जीभ से सम्बन्धित होकर हमको मिठास का ज्ञान कराती है। ज्ञान तो पदार्थ के अधीन होता है लेकिन सुख-दुःख पदार्थ के अधीन नहीं है। सुख-दुःख इच्छा के अधीन है। बढ़िया से बढ़िया सुन्दर स्त्री हो, नाक, ओठ, आँखें सब एक दम मूर्ति की तरह बढ़िया हों, लेकिन रंग तवे के पिछले हिस्से की तरह एक दम काला हो तो पंजाब के लोगों को पसंद नहीं आयेगी, उनकी इच्छा रहती है कि कैसी भी हो लेकिन गोरी चिट्टी ज़रूर हो। जितने भी सुन्दर नाक-नक्श हों, यदि वह चिट्टापना नहीं तो उनके लिये सब बेकार है क्योंकि इच्छा का विषय नहीं होता है। अफ्रीका की तरफ चले जाओ तो वहाँ चाहे जितना गोरा व्यक्ति सामने आये, उन्हें लगता है कि जैसे इसको कोई रोग हो गया हो!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम कभी-कभी लोगों को हँसी में कहते हैं, यह सच्ची बात नहीं केवल विदेशियों को कहते हैं, कि जब भगवान् ने पहले-पहल सृष्टि करना शुरू किया तो अभी नया-नया काम था, पूरा अनुभव था नहीं। उन्होंने मिट्टी का एक आदमी बनाकर उसे पकाने के लिये आवे में डाल दिया तो ज़्यादा देर आवे में पड़ा रहने से ज़्यादा पक गया और वह काला हो गया। भगवान् ने सोचा, यह चीज़ ठीक नहीं बनी। उन्होंने अफ्रीका के जंगलों में डाल दिया। उसके बाद भगवान् ने फिर दूसरा माडल बनाकर आवे में डाला। अब उन्हें डर लग रहा था कि कहीं ज़्यादा न पक जाये, इसलिये ज़रा कच्चा माल ही निकाल लिया। वे सब गोरे लोग हो गये। उन्होंने सोचा यह भी ठीक नहीं बना, उन्हें योरोप में फेंक दिया। अब तीसरी बार जब भगवान् ने चढ़ाया तो अनुभव हो गया था। इस बार मध्यम वर्ण, साँवला रंग बना, न ज़्यादा काला और न ज़्यादा गोरा। भगवान् ने माना कि यह ठीक है। उसको उन्होंने भारतवर्ष में रखा। यह बात वैसे हँसी में है पर इसके पीछे कुछ वैज्ञानिक तत्त्व भी है। अधिक धूप में रहने से शरीर का मैलिनिन पिगमैन्ट ज़्यादा होने से मनुष्य का रंग काला हो जाता है। धूप न लगने से मैलिनिन पिगमैन्ट नहीं बढ़ता इसलिये वहाँ आदमी गोरा रह जाता है और मध्यम धूप लगे तो मैलिनिन पिगमैन्ट मध्यम मात्रा में होता है।

इच्छा का विषय एक के लिये गोरा रंग मात्र हुआ और दूसरे के लिये नाक-नक्श हुये। इसलिये एक को नाक-नक्श से सुख होगा और दूसरे को गोरे रंग से सुख होगा। दोनों को पदार्थ एक जैसा ही दीखेगा। ज्ञान पदार्थाधीन है, सुख-दुःख पदार्थाधीन नहीं, इच्छाधीन है। जड पदार्थ में चूँकि इच्छा नहीं, इसलिये जड पदार्थ को न कभी दुःख होता है और न कभी सुख होता है। जहाँ-जहाँ सुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और दुःख का अनुभव, जहाँ कर्तृत्व का अनुभव, जहाँ-जहाँ ज्ञातृत्व का अनुभव, वहाँ-वहाँ जीव है। जिस-जिस की इच्छा की जाये अर्थात् इच्छा का विषय, जिस-जिस का ज्ञान किया जाये अर्थात् ज्ञान का विषय और जिस-जिस के साथ क्रिया की जाये अर्थात् क्रिया का विषय, उसका नाम जगत् है। जीव और जगत् ये दोनों तो प्रत्यक्ष अनुभव के विषय हो गये। इनमें कोई सीमा मत बाँध लेना कि यही जीव है और यही जगत् है। ऐसा कुछ नहीं है क्योंकि कभी जीव ही जगत्रूप बन जाता है और कभी जगत् भी जीवरूप बन जाता है! जैसे जब हम अपने हाथ से कोई क्रिया करते हैं उस समय तो हाथ में कर्तापने का अनुभव है और जिस समय हाथ क्रिया का विषय हो जाता है उस समय वह जडभाव को प्राप्त हो जाता है। जिस समय हम पुत्र की प्रसन्नता चाहते हैं उस समय पुत्र हमारा अंग होकर चेतन हो जाता है और जिस समय हम पुत्र को सर्वथा अपने अधीन करना चाहते हैं उस समय वही पुत्र जड हो जाता है। इस प्रकार जड चेतन का भाव बदलता रहता है। मैं स्वयं तो हमेशा कर्ता, ज्ञाता रहूँगा, एषणावाला रहूँगा लेकिन इस 'मैं' की परिधि में, इस 'मैं' के वृत्त में, घेरे में किस-किस चीज़ को लूँ, यह बदलता रहता है।

आँख से हाथ को देख रहे हो तो हाथ ज्ञान का विषय हुआ, जगत् रूप में आ गया। आँख से देख रहे हो इसलिये आँख मेरे, मैं-के अंतःपाती हो गई। वहाँ आँख में चेतनता है और हाथ में जडता है। फिर थोड़ी देर के बाद आँख में एक भुनगा या आमवाला छोटा सा मच्छर घुस गया। उसको निकालते समय अब हाथ के द्वारा मैं कार्य कर रहा हूँ, इसलिये यहाँ हाथ चेतन की परिधि में आ गया और आँख जड की परिधि में, क्योंकि आँख क्रिया का विषय और हाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

क्रिया करनेवाला हो गया। मैं ही जीव हूँ लेकिन मेरी परिधि में किस समय कौन-सी चीज़ आती है, यह बदल सकता है। रात-दिन हम लोग व्यवहारों में परिधि को लम्बा चौड़ा करते रहते हैं। विदेश जाते हैं, वहाँ कोई व्यक्ति हिन्दी बोलनेवाला नहीं मिलता। जर्मनी में सब जर्मनभाषा बोलनेवाले, फ्रांस में सब फ्रैंच बोलनेवाले और इंग्लैण्ड में सब अंग्रेजी बोलनेवाले ही मिलेंगे। इसलिये वहाँ अगर हमें पाकिस्तानी मुसलमान भी मिल जाता है तो अपना लगता है। उसको कोई कुछ बात भी कह दे तो हम उसकी तरफ से खड़े हो जाते हैं। उस समय वह भी हिन्दी उर्दू बोलनेवाला होने से हमारी परिधि में आ जाता है। किसी से बात करता है तो कहता है कि यह हमारी भाषा में बोल रहा है। भारतवर्ष में आ गये तो वह अब हमारी परिधि में नहीं रहा। अब वह हमारी परिधि से बाहर हो गया, इसलिये कहते हैं कि 'सरकार इन्हें पासपोर्ट क्यों देती है? ये यहाँ आकर गुप्तचर का काम करते हैं।' परिधि बदल गई। और आगे चलो। अपने गाँव में पहुँच गये तो दूसरे गाँववाला भी हमारी परिधि से बाहर हो गया। परिधि बदलती रहती है। वहाँ तुम भारतीय थे, यहाँ हिन्दुस्तानी हुये, फिर मारवाड़ी हो गये, उसमें भी अग्रवाल और अग्रवालों के अंदर भी फिर खण्डेलवाल हो गये। परिधि बदलती गई लेकिन जितनी चीज़ें इस परिधि में रहेंगी वह हमारा, मैं-का वृत्त हो गया और बाकी जगत् हो गया। जीव और जगत् का अनुभव द्रष्टा और दृश्यरूप से निरंतर सबको हो रहा है।

एक तीसरा तत्त्व है जो प्रत्यक्ष दीखता नहीं लेकिन हमेशा ही हमारे सामने रहता ज़रूर है। वह है ईश्वर। ईश्वर क्या है? जो इन सब चीज़ों को, भोक्ता और भोग्यों को इकट्ठा करता रहता है, जिसके शासन में ये सब चलते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा दीखता है। लेकिन यदि उसको चाहो कि हम आँख खोलकर देख लें तो नहीं देख सकते। वह दीखते हुये नहीं दीखता। किस रूप में दीखता है? या तो हमें अपनी परतंत्रता के रूप में दीखता है या अज्ञातरूप में दीखता है। ब्रह्म ही अज्ञान का विषय होकर अर्थात् अज्ञात ब्रह्म ही ईश्वर कहा जाता है। जैसे अज्ञान का आश्रय बना हुआ चेतन जीव कहा जाता है वैसे अज्ञान का विषय बना हुआ वही ईश्वर कहा जाता है। अज्ञान अर्थात् न जानना। तुम्हारे यकृत का रक्षण करनेवाली चेतनता को तुम जानते नहीं। इस रूप में तो जानते हो कि कोई है। तुम्हारे हृदय से खून के संचार करनेवाली चेतनता को तुम जानते नहीं। इस रूप में तो जानते हो कि कोई है। केवल 'कोई है' रूप में जानते हो, 'कौन है, क्या है', यह नहीं जानते। यह अज्ञात ब्रह्म ही ईश्वर है। अज्ञात ब्रह्म ही हमें परतंत्रता के रूप से अपने अंदर अनुभव होता है। न जाने किन-किन तमन्नाओं को हम अपने मन में रखे हुये हैं, न जाने किन-किन इच्छाओं की पूर्ति हम चाहते हैं, परंतु कोई एक ऐसी शक्ति है जो हमें परतंत्र बनाकर रखती है, हमारी इच्छाओं को पूरा नहीं होने देती। हम चाहते हैं कि हमारे पास पाँच अरब रुपये हो जायें, लेकिन जीवन के अंत तक पाँच लाख ही नहीं इकट्ठे हो पाते हैं! कौन-सी वह शक्ति है? हम चाहते हैं कि हम दौड़ते हुये गौरीशंकर, कांचनजंघा पर चढ़ते चले जायें, लेकिन दौड़ना छोड़कर खिसक कर भी नहीं चढ़ पाते। कौन-सी शक्ति है? यह जो निरंतर हमारे अंदर नियामक का अनुभव हो रहा है कि कोई हमें पकड़े हुये है या नियंत्रण में रखे हुये है, यह जो नियंत्रण करनेवाली नियामक शक्ति है, इसी को वेदांतों में अंतर्यामी कहा जाता है। अपने अंदर परतंत्र करनेवाले के रूप में जिसका अनुभव, उसी का बाह्य जगत् के अंदर क्रिया करते समय अज्ञात के रूप में अनुभव। कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंदर है जो हमें परतंत्र रखता है, अपने नियंत्रण में रखता है। यह तो जान रहे हो कि कोई है, वह कौन है और कैसा है - यह पता नहीं है। इसी प्रकार बाह्य जगत् में जितनी क्रियायें हो रही हैं उन क्रियाओं को करनेवाला कोई है - इस रूप में जान रहे हो, लेकिन कौन है, कैसा है? - यह पता नहीं। इसीलिये उसको अज्ञात ब्रह्म कहा। ब्रह्म इसलिये कि चेतन है। जो चेतन नहीं होगा वह न क्रिया करवा सकेगा, न नियंत्रण कर सकेगा।

सारा जड और चेतन का झगड़ा यही है। लोग समझते हैं कि हम कानून बना देंगे और कानून लोगों का नियंत्रण कर देगा। कानून कभी नियंत्रण नहीं कर सकता, कानून तो जड है। नियंत्रण करनेवाला वह होगा जो कानून को चलानेवाला है। मोटी भाषा में, जो वहाँ कार्यकर्ता बैठा हुआ है, वह नियन्ता है। चोरी करनेवालों को कानून नहीं पकड़ेगा। पकड़नेवाले तो राजपुरुष हैं। सारी की सारी शासन-व्यवस्था में इसीलिये भारतीय दृष्टि और पाश्चात्य दृष्टि का भेद है। याज्ञवल्क्य महर्षि कहते हैं कि हाकिम वह होना चाहिये अर्थात् जज उसको बनना चाहिये जिसको समाधि का अभ्यास है। सामने जब व्यक्ति आये तो समाधिस्थ होकर उसके अंतःकरण में झाँककर देख सके कि इसने क्या किया और क्या नहीं किया। पाश्चात्य संस्कृतिवाले कहते हैं कि हाकिम या न्यायाधीश उसको बनाओ जो बैठकर वकालत की पुस्तकों में किस प्रावधान में क्या लिखा है, इसे याद किये हुये हो। यह आधारभूत भेद है। वे कहते हैं कि जड कानून के द्वारा न्याय हो सकता है। हम कहते हैं कि जड कानून न्याय नहीं कर सकता। जो चेतन न्यायाधीश है उस चेतन में यह शक्ति लाओ कि वह न्याय करे। जैसे न्याय-पक्ष में, वैसे ही राज्य-पक्ष में। हम लोगों का कहना है कि पहले कानून

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनानेवालों को वह शिक्षा मिलनी चाहिये जिसके द्वारा वे ठीक प्रकार से कार्य करें। पहले वे मनुष्य बनें। एक बच्ची थोड़े दिन पहले सुना रही थी। उसने आई ए एस की परीक्षा का इंटरव्यू दिया। उसमें वे लोग पूछ रहे थे कि 'बुर्जुआ लोग अपनी मान्यताओं के ज़ोर से दूसरों को आगे किस प्रकार नहीं बढ़ने देते।' बुर्जुआ लोग अर्थात् हम सब पढ़े लिखे लोग। 'बुर' भले को कहते हैं। जिसे अंग्रेजी में जैन्टलमैन कहते हैं उसी को फ्रैंच में बुर कहते हैं। अपने यहाँ उसे भद्र कहते हैं। आधुनिक दृष्टि है कि भले आदमी सब गये बीते होते हैं। आज बुर्जुआ एक गाली बन चुका है। कहते हैं कि चोर वह होता है जो कमाकर सरकार को टैक्स दे और भले आदमी वे होते हैं जो रुपया लेकर वापिस न कर सकें, उनको माफ़ी मिलनी चाहिये। लक्षण युग के अनुसार बदलते हैं। कौन अच्छा, कौन बुरा यह वेदान्त की दृष्टि में एक है, आधुनिकों की दृष्टि में कुछ और है। वह बच्ची हम से कह रही थी 'मेरे मन में आया कि मैं उनसे कहूँ कि आप तीन हज़ार रुपया महीना लेनेवाले बुर्जुआ लोग ही तो हो, तभी इन कुर्सियों पर बैठकर इंटरव्यू ले रहे हो। डेढ़ सौ रुपये में मजदूरी करने को तैयार सर्वहरा तो आप हो नहीं।'

यह आधारभूत अन्तर्द्वन्द्व है: 'ऐसा हो' यह चाहते हैं पर 'ऐसा मैं करूँ' यह नहीं चाहते हैं। यह जो अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है यह सर्वत्र मनुष्य के हृदय में दीवार खींचता रहता है। परतंत्रता को हम अपने अंदर इस अन्तर्द्वन्द्व के आधार से अनुभव करते रहते हैं। हम लोग कहते हैं कि जो राज्य करनेवाले हैं उन्हें पहले मानव बनाओ। पहले वे उन आदर्शों को आत्मसात् कर लें। अन्तर्द्वन्द्व निवृत्त करके यह समझ सकें कि यही ठीक है। यदि वह चेतन ठीक हो गया तो कानून के लिखने में यदि कोई कमी रह जायेगी तो वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय में अपने आप ही कानून का ठीक प्रकार से व्याख्यान कर लेगा। यदि तुम उसको न सुधार पाये तो जड कानून कुछ नहीं कर सकता। जब सन् १६ या १७ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ, उस समय के वाइस राय गवर्नर जनरल की अध्यक्षता में वहाँ एक सभा हुई थी। वहाँ महात्मा गाँधी मुख्य अतिथि के रूप में मौजूद थे। यह मालवीयजी की प्रधानता थी कि सब विरोधी तत्त्वों का समन्वय कर लेते थे। हम लोगों की आदत है कि जो भी राजा होता है उसे एक परमात्म-शक्ति मानते हैं। भगवान् मनु मनुस्मृति में लिखते हैं 'एष प्रत्यक्षदेवता नररूपेण तिष्ठति'। भगवान् भी कहते हैं 'नराणां च नराधिपः'। बात भी ठीक है। विचार करके देखो कि घर में चार आदमियों का नियंत्रण हम नहीं कर पाते, अपनी बात उन्हें नहीं मनवा सकते, अतः एक व्यक्ति करोड़ों व्यक्तियों को अपनी बात मनवा सके, यह किसी विशिष्ट ऐश्वर्य शक्ति के बिना सम्भव नहीं हो सकता। इसीलिये हम लोग हमेशा राजा को महत्ता देते हैं। चूँकि वह वाइसराय राजा का प्रतिनिधि था इसलिये लोग आदत के अनुसार उनके दर्शन करने और उनके पैर छूने को भी दौड़ रहे थे क्योंकि वह नराधिप अर्थात् शासन करनेवाला था।

यह दृष्टि अच्छी है या बुरी, इसका विचार यहाँ नहीं कर रहे हैं। जो हम लोगों की दृष्टि है वह बता रहे हैं। पिता पूज्य होता है यह हमारी दृष्टि है। अब आगे यदि यह प्रश्न करो कि पिता शराबी हो जाये तो? यह विषय दूसरा है। पिता शराबी हो जाये तो उसकी शराब की बोतल भी फोड़ दो, शराब खरीदने जाये तो उसे ताले में भी बन्द कर दो, लेकिन पिता पूज्य है, उसे नमस्कार करना पड़ेगा, उसकी सेवा भी करनी पड़ेगी। यह हमारी दृष्टि है। चूँकि वाइसराय आ रहा था इसलिये वहाँ सुरक्षा का प्रबन्ध था क्योंकि उसको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डर रहता था कि कोई मार न दे। पुलिस वाले लोगों को रोक रहे थे और कुछ थोड़ी बहुत लाठी इत्यादि भी चला दी। कुछ को चोट भी आ गई। सभा हुई।

जब महात्मा गाँधी बोलने लगे तो उन्होंने सबसे पहले एक बहुत ही मार्के की बात कही। उन्होंने कहा कि 'अभी हमारे वाइसराय साहब आ रहे थे। हमारी जनता उन्हें पूज्य समझती है इसलिये उनकी तरफ दर्शन या स्पर्श के निमित्त जा रही थी। पुलिसवालों ने उनकी रक्षा करने के लिये इंतजाम किया। सम्भवतः वाइसराय साहब भय खाते हैं कि कहीं इनके ऊपर कोई हमला न करे। इस प्रकार जन्म-भर भय खाने की अपेक्षा यदि वाइसराय गोली खाकर मर जायें तो कोई हर्जा नहीं।' यह महात्मा गाँधी की निर्भयता थी। 'संसार इनके आने के पहले चलता रहा है और इनके जाने के बाद भी चलता रहेगा लेकिन यह जो प्रतिक्षण भय से मरे चले जा रहे हैं, चारों तरफ से पुलिस के घेरे में खड़े हैं, यह इनकी मानवता को समाप्त करके इनको दानव बना रहा है।' जो बात सन् सोलह में थी वह आज साठ साल बाद भी बदली हुई नहीं लगती है क्योंकि राजा का जो ऐवर्श्य नराधिप का होना चाहिये वह नहीं है। आज भी राजा भय खाते रहते हैं। सम्भवतः पहले से ज़्यादा ही पुलिस की रक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते रहते हैं। वे सोचते हैं कि जड हथियार उन्हें बचा लेंगे। यह नहीं सोच पाते कि असली बचानेवाला चेतन परमेश्वर है। जब तक परमेश्वर मुझ से काम लेना चाहता है तब तक कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता और जिस क्षण परमेश्वर को मुझसे काम नहीं लेना होगा, उस समय वे सारे हथियार रखे रह जायेंगे, कुछ नहीं होना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह जडवाद और चेतनवाद की आधारभूत दृष्टि में भेद है। चेतनवादी निर्भय और जडवादी भयभीत रहता है। चेतनवादी का शरीर एक बार छूटता है और जडवादी सवेरे से शाम तक मरता रहता है। जो बाह्य पदार्थों का नियंत्रण करनेवाला है वही हमारे अंतर् में बैठकर नियमन करता है। नियामक चेतन है, जड नहीं। नियामक कार्य करनेवाले अधिकारी हैं। इसलिये हम लोगों की प्रधानता यह नहीं रही कि हम लोग कानून बनायें। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से हम लोग निर्माण उन राजाओं का करते थे जो नराधिप हों। ठीक उसी परम्परा को ग्रीस देश में प्लेटो कहता है कि दार्शनिक राजा का निर्माण करना चाहिये। वह मानता था कि राजा और राज्य करनेवाले लोग अन्तर्द्वन्द्व से छूटे हुये हों। स्वयं अन्तर्द्वन्द्व में पड़ा हुआ क्या शासन करेगा! धर्मशास्त्र ने नियम किया कि किसी बात पर उचित-अनुचित की व्यवस्था लेनी हो तो कम से कम पाँच व्यक्ति बैठकर उसका निर्णय दें। आगे कहा कि यदि संन्यासी हो तो अकेला ही निर्णय दे सकता है। सामान्यतः पाँच व्यक्ति बैठेंगे तो वे एक-दूसरे के अन्तर्द्वन्द्व, राग-द्वेष को काट देंगे। एक में कोई गलत बात होगी तो दूसरा उसे काट देगा। अकेले तो वे अपने अन्तर्द्वन्द्व से, राग-द्वेष से युक्त होकर व्यवस्था देंगे। लेकिन यदि संन्यासी है, तो उसने अपने राग-द्वेषों को पहले निवृत्त कर रखा है, अन्तर्द्वन्द्व नाम की चीज़ उसमें नहीं रह गई है। जो अंतर्यामी और बहिर्यामी है उसके साथ उसने अपने आप को एक कर लिया है। उसके निर्णय में अन्तर्द्वन्द्व या राग-द्वेष का अभाव होने से उसको किसी दूसरे की सलाह से कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। 'जड को प्रधान मानना या चेतन को' इसी को लेकर ये सारे भेद प्रवृत्त होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ श्रुति कहती है कि यह शरीर और यह सारा ब्रह्माण्ड कैसा है? यह ब्रह्मपुर, चेतन का पुर है। श्रुति का स्पष्ट उद्घोष है कि इस शरीर में भी चेतन शक्ति कार्य कर रही है, जड नहीं और इस समग्र ब्रह्माण्ड के अंदर भी चेतन शक्ति कार्य कर रही है। वह ब्रह्म ही, वह चेतन ही भिन्न-भिन्न उपाधियोंवाला देवता बना हुआ भिन्न-भिन्न शरीर के अंगों में भी काम कर रहा है और समग्र ब्रह्माण्ड को चला रहा है तो वह भी उन्हीं देवताओं के द्वारा क्रिया करानेवाली कोई जड प्रकृति नहीं, चेतन है। इसीलिये इसको ब्रह्मपुर कहा। परब्रह्म परमात्मा ही इसका अधिपति है, राजा है। जब तक अज्ञात है तब तक वह नियामक है और ज्ञात होने पर वह आनंदघन हो जाता है। लोक में भी यही बात है। जब तक तुम राजा से अलग हो, राजा तुम्हारे लिये अज्ञात है। जब तक राजा के साथ तुम्हारी दाँतकाटी रोटी नहीं हो गयी है तब तक तो वह राजा अज्ञात रहकर तुम्हारा नियामक है, तुम्हारा नियंत्रण करता है। लेकिन जिस दिन उस राजा के साथ तुम्हारी दाँतकाटी रोटी हो जायेगी, उस दिन फिर वह राजा तुम्हारे लिये ज्ञात होने के बाद क्या तुम्हारे ऊपर नियंत्रण करनेवाला रहेगा या तुम्हारे आनंद का कारण बन जायेगा? ऐसा राजा जितना शक्तिमान्, तुम्हारा आनंद भी उतना ही ज़्यादा। ज्ञात हो जाने पर अर्थात् अच्छी तरह से परिचित हो जाने पर जो जितना सज़ोर राजा होगा, वह उतना ही तुम्हारे साथ मित्रता करके तुम्हारी समग्र इच्छाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्यवाला भी होगा और जो जितना कमज़ोर राजा होगा वह चाहने पर भी कहेगा 'क्या बताऊँ, चाहता तो मैं हूँ, लेकिन ये सैक्रेटरी लोग नहीं मानते, ये मैजिस्ट्रेट लोग नहीं मानते' इत्यादि। इसलिये जिस व्यक्ति की राजा से मित्रता है वह तो चाहता है कि राजा की ताकत और बढ़ी हुई हो जिससे काम झट हो जाये और जिसकी राजा से दोस्ती नहीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह चाहता है कि राजा की शक्ति कमज़ोर रहे क्योंकि जब राजा की शक्ति कमज़ोर होगी तो वह शक्ति छोटे अफसरों में ज़्यादा होगी और उनको घूस-घास देकर काम बना लेंगे! इसी प्रकार से जब तक हम परमात्मा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध वाले नहीं हो जाते, तब तक हम सोचते रहते हैं कि सम्भवतः इन देवताओं की शक्ति परमेश्वर की अपेक्षा अधिक है। इसलिये परमेश्वर से ज़्यादा ध्यान हम इन पर देते हैं। लेकिन जब वह ब्रह्म ज्ञात हो गया, तब पता लगता है कि वह सर्वशक्तिमान् है। यहाँ तक कह दिया जाता है कि पत्ता भी उसकी इच्छा के बिना नहीं हिल सकता। उसका यमन कभी अन्यथा नहीं होता। न अन्तर्यामी होकर उसका शासन किसी के अधीन है और न बहिर्यामी होकर उसका शासन किसी के अधीन है। इंसलिये ज्ञात ब्रह्म हमारे लिये सर्वथा आनंदघन, एकमात्र आनंद का संचय हो जाता है। वही अज्ञात ब्रह्म जितना अज्ञात रहता है उतना हमारे लिये नियमन का कारण बनता है। इसको ब्रह्मपुर कहा क्योंकि यह ब्रह्म की शासन व्यवस्था का अंग है। एकमात्र ब्रह्म ही इसका शासन करनेवाला है।

कल बताया था कि सर्वथा ज्ञात हो जाता है तो देवता प्रत्यगात्मरूप से भान होते हैं। जब तक वह ज्ञात ब्रह्म पूरी तरह से अपरोक्ष नहीं होता तब तक देवतारूप से भान होता है लेकिन प्रत्यगात्मरूप से नहीं। और जो जैसे पैदा हुये वैसे ही बिना समझनेवाले लोग हैं, जिनके लिये ब्रह्म न परोक्षतः ज्ञात और न अपरोक्षतः ज्ञात है, उनके लिये ये देवता तिरोहित रहते हैं। उन्हें पता ही नहीं कि देवता क्या है? जब व्यक्ति कहता है कि 'यह सब हम खुद कर लेते हैं देवता क्या करते है!' उस समय असली बात है कि ब्रह्म का ज्ञान न होने से वे देवता उसके लिये तिरोहित हैं। देवताओं का नियम है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'परोक्षप्रिया इव हि देवाः' देवता परोक्षप्रिय होते हैं। अपने यहाँ भी देखने में आता है कि जो बड़ा आदमी होता है वह परोक्ष-प्रिय होता है, जब तक उनसे खूब दोस्ती न हो जाये। यदि तुम श्रीराम को टेलीफोन करो तो संभावना है कि वह या उसकी पत्नी उठायेगी। यदि राष्ट्रपति को फोन करो तो उनका पी ए उठायेगा। अगर किसी बड़े आदमी से मिलने की इच्छा है तो कहेगा 'सचिव से समय-निर्धारण करो।' जो जितना बड़ा आदमी होता है, वह परोक्ष-प्रिय होता है। परब्रह्म परमात्मा और देवता, मनुष्य की अपेक्षा अधिक परोक्ष रहते हैं, स्वाभाविक है। जैसे कोई व्यक्ति कहे कि 'राष्ट्रपति कुछ नहीं होता है! या पी ए या सैक्रेटरी हुआ करते हैं। हम राष्ट्रपति भवन के अंदर घूम आये, वहाँ कहीं राष्ट्रपति दिखाई नहीं दिया।' राष्ट्रपति ऐसे थोड़े ही दिखाई दे जायेगा, वह तो परोक्ष-प्रिय है। इसी प्रकार व्यक्ति कहता है कि 'हम रात-दिन व्यवहार करते हैं, हमको देवता कहीं नज़र नहीं आते;' कहाँ से नज़र आयेंगे! केवल उनकी बाह्य शक्ति नज़र आती रहती है, और कुछ नहीं।

एक आदमी कहीं पहाड़ पर झरने को पार करके चला गया। पहाड़ पर जब पानी बरसता है तो बड़ी जल्दी ही वहाँ के नाले भयंकर रूप ले लेते हैं, पानी ऊँचा चढ़ जाता है फिर घण्टे-दो घण्टे में उतर भी जाता है। वह व्यक्ति जब वापिस लौटा तब तक वह झरना बिलकुल भर गया था। वह कहीं भुगतान लेने गया हुआ था। वहाँ से जो दो-चार हज़ार रुपये का भुगतान लाया था वह भी उसकी कमर में बँधा था। उसने सोचा कि 'शाम का समय हो गया। कहीं घर नहीं पहुँच सका और इधर ही रह गया तो रात को चोर-डाकू आकर कुछ गड़बड़ न करें।' जिस समय मनुष्य के ऊपर दुःख आता है उस समय खट आस्तिकता आ जाती है क्योंकि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय अज्ञातब्रह्म का अनुभव होने लगता है। सोचता है कि मैं चाहता हूँ लेकिन कोई मेरी इच्छा को पूर्ण नहीं होने देता है। अज्ञात ब्रह्म की तरफ उस समय झट दृष्टि चली जाती है। जब इच्छा के अनुकूल काम होता है, उस समय लगता ही यह है कि मैंने कर लिया। यह तो सत्संग से समझ में आता है कि जो किसी समय रोकता है, वही किसी समय कर देता है। सच्ची बात यह है कि तुम्हारी इच्छा पूरी होती है तो वही पूरी करने दे रहा है जो दूसरे समय तुम्हारी इच्छा को रोकता है। पूरा होते समय आदमी यह भूल जाता है। हिन्दी के किसी कवि ने कहा भी है -'दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय। जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय।' सुख अर्थात् इच्छा-पूर्ति काल के अंदर यह ख्याल बना रहे कि उस अज्ञात ब्रह्म, परमेश्वर की कृपा से ही हो रहा है तो फिर दुःख का काल आये ही क्यों? परमेश्वर को स्मरण करनेवाले पर कभी दुःख नहीं आ सकता। 'पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम्।' अनंत जन्म के पापों को उसका स्मरण तुरंत नष्ट कर देता है। पाप का फल सामने आने ही नहीं पाता है। जैसे कोई आदमी धूप में अगर छाता लगाकर जा रहा है तो उसके सिर में गर्मी थोड़े ही चढ़ेगी। धूप कहीं नहीं जायेगी, लेकिन छाते के कारण उसका सिर गरम नहीं होगा। इसी प्रकार से जो परमेश्वर की छत्रछाया में हमेशा रहेगा, परमेश्वर के छाते को छोड़ेगा नहीं तो प्रारब्ध कर्म के दुःख आदि आने पर भी उसको व्यथित नहीं करेंगे। उसके शरीर, इन्द्रिय इत्यादि में विकार हो भी सकता है लेकिन वह दुःखी नहीं हो सकता। दूसरे क्या करते हैं? जब उनका सिर कुछ दुखने लगता है तब सोचते हैं कि छाता ले ही आये होते तो अच्छा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस व्यक्ति को भी ख्याल आया कि मेरा रुपया चोर-डाकू ले जायेंगे तो गड़बड़ हो जायेगा। तब उसको परमेश्वर की याद आ गई। उसने सोचा कि नदी पार करनी है तो हनुमान्जी जल्दी मदद करेंगे। उसने कह दिया कि यदि मैं बिना किसी दिक्कत के नदी पार कर गया तो पाँच रुपये के लड्डू चढ़ाऊँगा। कुछ हिम्मत आई। इस निष्ठा से कि कोई सहायक है, आत्मविश्वास आता है। वह पानी में 'हल' पड़ा, पानी में हला जाता है और ज़मीन पर चला जाता है। आधे नाले तक पहुँच गया तब तक तो चित्त में 'जय बजरंगबली की' बोलता रहा, पानी बढ़ रहा था। फिर देखा कि पानी जाँघ से ऊपर नहीं है, आधा पार कर गया था, कुछ खतरा टल गया था। अब 'जय बजरंगबली' ज़रा कमजोर पड़ा। व्यापारी तो था ही। अब ग्राहकी का भाव-मोल चलने लगा। 'हे हनुमान्जी! आप तो जानते हैं, आजकल का ज़माना बहुत खराब है, महँगाई चल रही है। लाभ भी कम है, कर भी बहुत है। इसलिये पाँच रुपये तो क्या, सवा रुपये के लड्डू चढ़ा दूँगा। दिल ही तो है, और वह तो आपका है ही।' यह भाव-मोल होते-होते तीन-चौथाई पार हो गया। पानी और घटने लगा, घुटने से नीचे आ गया। दूसरा किनारा आने लगा। कहने लगा सवा रुपये के लड्डू तो वेजीटेबल घी के मिलेंगे, उसे चढ़ाकर फायदा ही क्या है? चलो मैंने कहा है तो चार आने का असली तेल लेकर चढ़ा दूँगा।' अब तक पानी बिलकुल पिण्डली तक आ गया। अब ब्रह्म अज्ञात नहीं रहा, क्योंकि सफल हो गया था। सोचा,' कहाँ कोई देवता मदद करने आता है! मैं खुद ही हिम्मत कर आ गया। देवता वगैरह सब बेकार हैं। इसमें क्या रखा है! लोगों ने न जाने कैसे-कैसे अंधविश्वास के संस्कार डाल रखे हैं। मैं नदी पार कर गया, कहाँ कोई देवता मदद करने आया?' भगवान् तो हँसी-मज़ाक करते ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहते हैं। पहाड़ों में कई जगह बड़े गहरे गड्ढे होते ही हैं। यह विचार करते हुये आगे चला, किसी ज़बरदस्त गड्ढे में पैर पड़ा तो सारा मामला ख़तम। उसकी सारी ताकत पूरी हो गई। ज्ञात ब्रह्म और अज्ञात ब्रह्म के प्रभाव का महान् अन्तर है। जिसका ज्ञान पूर्ण हुआ असम्भावना-विपरीत भावना से रहित हो गया उसको तो प्रत्यगात्मतया भान होता है। जिसे उतना नहीं हुआ, उसे देवतारूप से परमात्मा प्रकाशित होता है और जिसके लिये वह भी नहीं है, उसके लिये तिरोहित है, यानी है नहीं। लोग देवतारूप को साधारण प्रत्यक्ष का विषय चाहते हैं जैसे दृष्टान्त में आये भक्त ने सोचा था कि हनुमान्‌जी अपनी पूँछ पकड़ा कर पार लगाते! देवता ऐसे सामने आकर कार्य नहीं करते, परोक्षरूप से करते हैं। परोक्षरूपता को न समझने का फल है कि सामान्य जन मान बैठते हैं कि परमेश्वर है ही नहीं। इसलिये यहाँ कह रहे हैं कि यह मानव देह और सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्मपुर है, चेतन का पुर है, जड का पुर नहीं है। चेतन ही इसका अन्तर्यामीरूप से, बहिर्यामीरूप से शासन करता है और चेतन ही जीव के अंतःकरण में बैठकर ज्ञान, इच्छा और क्रिया भी कर रहा है। इसके अनुभव पर आगे विचार करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचम प्रवचन

२९.३.७६

'अथ' – अर्थात् उस परमात्मा की अपने आत्मस्वरूप के साथ एकता को समझने के बाद, अर्थात् एकता के ज्ञान के अनन्तर। जब एकता को समझ लिया तब पता लगा कि यह शरीर क्या है? शरीर ब्रह्मपुर है इतना ही नहीं, यह सारा ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्मपुर ही है। जब तक इस ज्ञान को जीव प्राप्त नहीं करता तब तक यह संसार मायापुरी है। आत्मा के स्वरूप को समझने के पहले संसार मायारूप है। माया अर्थात् धोखा। बंगला भाषा में कहते हैं 'जे छीलो धोखार टाटी शे होलो माजार कुटी' जो संसार आत्मज्ञान के पूर्व धोखे की टट्टी था वही आत्मज्ञान के बाद आनंद की कुटिया हो जाता है! कोई आदमी धोखा करे तो कहते हैं कि यह छलछिद्रवाला मायावी है। इसलिये आत्मज्ञान के पहले यह संसार धोखा ही धोखा देता है। यह स्वरूप से अनित्य है, अशुचि है, लेकिन हमें लगता है मानो यह नित्य है, पवित्र है, सत्य है। यही धोखा हुआ। जो चीज़ जैसी है उसको वैसा समझने से धोखा नहीं होता। जो चीज़ जैसी नहीं है उसको वैसा समझना ही धोखा खाना है। जब तक परमात्मा के स्वरूप को नहीं समझते तब तक यह संसार मायापुरी है। जहाँ परमात्म तत्त्व को जाना, फिर यह ब्रह्मपुर हो जाता है। ब्रह्म आनंदस्वरूप है। सामान्य व्यवहार में भी मानते हैं कि 'विज्ञातसेवितश्चौरः मित्रताम् एति' जिस चोर को हमने जान लिया कि यह चोर है, वह हमारा मित्र हो जाता है और हमें नुकसान पहुँचाने की जगह हमारी सुरक्षा ज़्यादा करता है। जो डकैत, गुण्डा या लुच्चा होता है वह भी जिस मुहल्ले में रहता है वहाँ गुण्डागर्दी, लुच्चापना नहीं करता। उलटा, कोई बाहर से गुण्डा, लुच्चा आ जाये तो उसके साथ लड़ने को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैयार रहता है कि 'मेरे मुहल्ले में तू कहाँ से आ गया!' क्योंकि वह जानता है कि मुहल्ले में कुछ हो गया तो सबसे पहले लोग उसी को पकड़ायेंगे। जैसे यह बात चोर-बदमाशों के लिये लागू होती है वैसे माया के लिये लागू होती है। अतः संसार के स्वरूप को जब समझ लिया तो यह आनंद देनेवाला हो जाता है, फिर दुःख देनेवाला नहीं रह जाता।

शरीर को हम अभी देह समझते हैं, देह अर्थात् जो हमें निरंतर जलाता रहे। कभी आध्यात्मिक ताप, कभी आधिदैविक ताप और कभी आधिभौतिक ताप, तीनों जलाते रहते हैं। जिस देह को हम पुण्य-पाप भोगने के लिये, धर्म-अधर्म भोगने के लिये, सुख-दुःख भोगने के लिये साधन समझते हैं, शास्त्र भी जिसे भोगायतन कहता है अर्थात् पुण्य-पाप भोगने के लिये, धर्म-अधर्म भोगने के लिये, सुख-दुःख भोगने की जगह बताता है, अब उस देह में हम पुण्य-पाप के फलों को भोगने के लिये नहीं रह जाते वरन् यह देह ही हमारे लिये वह अधिष्ठान हो जाता है जिसके द्वारा हम ब्रह्म के रस का आस्वादन करते हैं। इसलिये महर्षि वशिष्ठ ने बताया है 'य एव ब्रह्म शब्दार्थो देहशब्दार्थ एव सः' आत्मज्ञानी के लिये जो ब्रह्म-शब्द का अर्थ है वही देह-शब्द का अर्थ है क्योंकि जो जलनेवाली चीज़ है उसको वह जला चुका।

लकड़ी कब तक जलती है? इससे पहले यह विचार करो कि लकड़ी है क्या चीज़? अथवा पेड़ का मूल आधार क्या है? सूर्य की रोशनी को पेड़ अपने अंदर एकत्रित करता है। पेड़ के पत्तों में एक पदार्थ-विशेष होता है जिसको 'क्लोरोफिल' कहते हैं, जो पत्तों को हरा रखता है। वह सूर्य-रश्मियों में से गर्मी लेकर अपने अंदर एकत्रित करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह अग्नि इकट्ठी होकर पृथ्वी के नीचे से मिट्टी को रस के द्वारा खींचती है, उस मिट्टी में उस गर्मी का आधान हो जाता है। यही पेड़ का स्वरूप है। चूँकि केवल मिट्टी को नहीं खींच सकता इसलिये जल की आवश्यकता है। पेड़ को क्यों मूल में सींचना पड़ता है? ऊपर से डालियों पर तुम चाहे जितना पानी डालो, पेड़ फलेगा-फूलेगा नहीं। इसलिये जड़ों में पानी देना पड़ता है क्योंकि जड़ के पास जो मिट्टी और पानी का एक द्रव-विशेष बन जाता है उसको वृक्षस्थ अग्नि ऊपर खींचती है जैसे हमारे शरीर में खून का संचार होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में भगवान्-भाष्यकार ने इसका बड़े विस्तार से वर्णन किया है। विदग्धशाकल्य के प्रश्नोत्तर के बाद यही याज्ञवल्क्य का प्रश्न था। जैसे हमारे शरीर को काटने पर खून बहता है वैसे ही पेड़ को काटने से उसका रस बहता है। जैसे हमारे शरीर में रक्त का संचार है वैसे ही पेड़ के अंदर रस का संचार है। रस क्या है? वहाँ की मिट्टी के साथ जल मिलकर वहाँ से द्रव को खींचकर ऊपर ले जाता है, पत्तों के स्थल में पहुँचता है। पत्ते 'क्लोरोफिल' नाम के पदार्थ से सूर्य की रश्मियों को अर्थात् गर्मी को एकत्रित करते हैं। वही रस डाल, तने, फूल, फल और बीज में जमा होता है। पुराने ज़माने में इसलिये लोग कहा करते थे कि बड़े पेड़ के साथ छोटा पेड़ लगा दो तो वह छोटा पेड़ फलता-फूलता नहीं है। कारण यह है कि बड़े पेड़ की छाया उस पेड़ को सूर्य से रश्मियों को नहीं लेने देती। चाहे जितनी खाद दे दो, लेकिन जब तक छाया रहेगी, पेड़ पूर्ण विकसित नहीं होगा। मनुष्य शरीर भी ऐसा ही है। हम लोग जो भोजन करते हैं वह पेट में जाता है। वहीं पानी भी पहुँचता है। पानी और भोजन का आपस में मिलकर घोल बनता है। जब बिलकुल घोल बन जाता है तब वह आंतड़ियों में जाता है। वहाँ बड़ी बारीक नाड़ियाँ हैं जो उस घोल को खींचती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। वह घोल वहाँ से खिँचकर खून में पहुँचता है। खून फिर उसको माँस, मज्जा, अस्थि इत्यादि रूपों में परिणत करके जमा कर देता है। सर्वत्र यही क्रम है। पेट भर लो, लेकिन यदि उस भोजन में गिजा नहीं होगी तो ताकत नहीं बढ़ेगी। पेट भरने से ताकत नहीं बढ़ती है। उसके अंदर पौष्टिक द्रव्य होने चाहिये। पौष्टिक पदार्थ थोड़ा भी खा लोगे तो शरीर पुष्ट रहेगा और जो पदार्थ पौष्टिक नहीं है, उसको जितना भी खा लो, शरीर में पुष्टि नहीं आयेगी। हर हालत में, आंतड़ियों में ही द्रव के द्वारा खींचा जायेगा। इसी प्रकार पेड़ की जड़ के अंदर यदि तुमने पौष्टिक खाद डाल दी तो पेड़ अधिकाधिक पुष्ट होगा और यदि पेड़ के मूल में तुमने पौष्टिक खाद नहीं डाली तो कमज़ोर रह जायेगा। चाहे जितना पौष्टिक पदार्थ डाला, जल नहीं होगा तो खींच नही सकता। इसलिये ही जल की अपेक्षा है। सूर्य से उष्णता की अपेक्षा है। वह नहीं हो तो उसके अंदर शक्ति कैसे एकत्रित होगी? खाद भी किसी-न-किसी प्रकार की मिट्टी ही है। उस मिट्टी और सूर्य-रश्मियों से सम्बन्धित होकर पेड़ ने अपना स्वरूप बनाया है। जब तुम उस पेड़ को जलाते हो तब जो गर्मी सूर्य से उसमें एकत्रित हुई है, वही बाहर निकलकर तुमको मिलती है। लकड़ी कब तक जलती रहेगी? जब तक लकड़ी पुनः मिट्टी अर्थात् राख नहीं बनती। जब तक उसमें कोयले का हिस्सा या गर्मी का कुछ भी हिस्सा है, तब तक जलती रहेगी। जब वह सर्वतोभावेन राख या मिट्टी बन गई तो आगे नहीं जलेगी। राख को जलाना भी चाहोगे तो नहीं जलेगी क्योंकि जो जलना था सो जल चुका।

इसी प्रकार इस देह में किसको जलना है? अज्ञान और अज्ञान के कार्य को जलना है। यह शरीर क्या करता है? अज्ञान की खाद को अंदर लेता है और उसके लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इसको आसक्तिरूपी जल की आवश्यकता है। जैसे पेड़ की खाद मिट्टी, वैसे मनुष्य की खाद अर्थात् पुष्ट करनेवाली चीज़ भोजन, ऐसे ही जीवभाव को पुष्ट करनेवाली चीज़ अज्ञान है। 'मैं कौन हूँ, और जगत् क्या है' - इस बात का अज्ञान ही मनुष्य के शरीरिभाव, जीवभाव को पुष्ट करता है। शरीर को तो अन्न पुष्ट करेगा और शरीरिभाव को अर्थात् 'मैं यह शरीर ही हूँ' यह जो देहात्मभाव है, शरीर के साथ जो अपनी एकता है, इस देहिभाव को अज्ञान से पुष्ट किया जाता है। वही खाद है जिससे यह पैदा होता है। इसीलिये जो द्वैतवादी शरीरिभाव को पुष्ट करनेवाले हैं, वे कहते हैं कि सारी दुनिया की बात सोचो, अपना विचार मत करो! आचार्य कुमारिल भट्ट बहुत बड़े कर्मकाण्डी मीमांसक हुये हैं। एक जगह विचार करते हुये वे कहते हैं कि इसके आगे प्रश्न हो सकता है कि आखिर यज्ञ करनेवाला सचमुच कौन है? हमने सारे यज्ञ बताये। स्वर्ग जाना हो तब यह यज्ञ करो, ब्रह्मलोक जाना हो तो यह करो। न जाने कितने कर्मों का हमने प्रतिपादन किया, शत्रु को मारना हो तो यह करो और धन कमाना हो तो यह करो। किसी का मोहन, उच्चाटन, वशीकरण करना हो तो यह करो। दुनिया भर के कर्म बताये और सबका बड़ा विस्तृत विवेचन किया। आगे कोई प्रश्न करेगा कि यह यजमान कौन है जो जाता-आता है? कहते हैं कि इसका विचार नहीं करो! क्योंकि फिर तो न स्वर्ग मिलेगा, न कुछ और! स्वयं लिखते हैं 'प्रयाति वेदान्तनिषेवणेन' यदि तुम्हारे मन में यह जिज्ञासा आ गई तो मुझ कर्मकाण्डी के चंगुल से छूट जाओगे। वह बात मैं बताऊँगा तो बाकी सब भी हाथ से निकल जायेंगे। इसलिये कर्मकाण्डी जितने होंगे वे कहेंगे कि बाकी सब विचार करो, यह न पूछो कि भोक्ता-कर्ता क्या है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदान्त प्रारंभ ही यहाँ से करता है -
'कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्ताऽस्य विद्यते।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयम् ईदृशः।।'

सबसे पहला प्रश्न वेदांती करता है कि मैं कौन हूँ? तुम कहते हो कि यह करने से स्वर्ग मिलेगा, यह करने से धन आदि मिलेगा, लेकिन किसको मिलेगा? पानेवाला मैं कौन हूँ? बाकी सब चीज़ों के बिना मैं रह सकता हूँ। क्या मैं मेरे अपने बिना रह सकता हूँ? जैसे कोई हमें बड़े भारी महल में तो ठहरा दे, खाने-पीने का सब इंतजाम कर दे, सारी सुविधायें दे दे। उससे पूछें कि 'इस महल से मेरा सम्बन्ध क्या है?' वह कहे 'यह मत पूछो!' गाँधीजी को आगा खाँ महल में जेल हुई। वह भी महल ही था, महल के ही उनको बिछौना, भोजन इत्यादि मिलते थे। यहाँ तक कि जब उनकी पत्नी मरी तो महल में ही उसका दाह भी किया गया। लेकिन क्या वह जेल नहीं थी? जेल तो थी ही। इसी प्रकार तुम हमको स्वर्ग में ले जाओ, इस ब्रह्माण्ड का राजा बना दो, लेकिन यदि हमें पता ही नहीं है कि हम कौन हैं और हमारा इन सबसे सम्बन्ध क्या है - तो जेल में ही तुमने हमें रखा, और क्या किया! इस बात का अज्ञान ही देहिभाव को पुष्ट करता है।

इस भाव के लिये अज्ञान खाद की जगह है। अज्ञान को पुष्ट करने के लिये रस चाहिये जैसे तुम्हारे भोजन को पचाने के लिये और वृक्ष को पुष्ट करने के लिये जल चाहिये वैसे ही यहाँ आसक्ति की चिकनाई चाहिये। सुषुप्ति के अंदर अज्ञान तो है लेकिन वह अज्ञान 'मैं शरीर हूँ' इस भाव को पुष्ट नहीं करता है क्योंकि वहाँ आसक्ति या राग-द्वेष नहीं है। जाग्रत्काल और स्वप्न काल के अंदर; {वैसे, जाग्रत् और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वप्न मिलाकर एक समझ लो, इनके अंदर} चूँकि पदार्थों में आसक्ति है इसलिये अज्ञान पुष्ट-पुष्टतर होता है। उससे हमारे देह और देह-सम्बन्धी अध्यास आसक्ति के कारण बढ़ते चले जाते हैं।

जर्मनी में जिस समय द्वितीय विश्व-महायुद्ध प्रारंभ हुआ उस समय में हिटलर ने सोलह से लेकर तेईस वर्ष तक के बच्चों की एक फौज तैयार की। उसका नाम 'ब्लिट्ज़ कोर शॉकिंग फोर्सेज़' रखा गया था जिससे फ्रांस आदि में उन को बड़ी जल्दी सफलता मिली। जो पुराने लोग होंगे उनको याद होगा। जिस सीमा को माना जाता था कि कभी नहीं टूट सकती, वह तीन दिन में टूट गई! सन् उन्तालिस या चालिस की बात है, लोगों ने दाँतों तले अंगुली दबा दी कि क्या हो गया। वहाँ से बढ़कर जिस समय स्वेज़ को आक्रांत किया गया तो लगता था कि पार नहीं कर सकेंगे और जनरल रोमल ने उसे सात दिन में फतह कर लिया था! बड़ा आश्चर्य होता था कि यह क्या हो रहा है। उसके बाद जब जर्मनी की हार शुरु हुई तो जैसे जीत शुरु हुई थी, वैसे ही हार होती चली गई। रहस्य, वही ब्लिट्ज़ कोर शॉकिंग फोर्सेज़ थीं। वह उसे छोड़ देता था। उस समय आसक्ति कम थी, जीने की परवाह ऐसी उम्र में नहीं रहती। अपने यहाँ भी बीस-पच्चीस साल में कोई किसी काम में जुट गया तो सफल हो जाता है। पच्चीस साल के पहले के बच्चे को कोई साधना बतायें तो जुट जाता है, करने लग जाता है, चिन्ता नहीं करता। बड़ी उम्रवाले पूछते हैं कि प्राणायाम करेंगे तो सिर तो गरम नहीं हो जायेगा! अमुक आसन से पेट तो खराब नहीं हो जायेगा? साधन में लगने के पहले ही सोचते रहते हैं। क्या कारण है? छोटी उम्र में देह-सम्बन्धी पदार्थों के प्रति आसक्ति कम होती है। जब तक हिटलर के पास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शॉकिंग फोर्सेज़ रहीं, वह उन्हें झट युद्ध में भेज देता था और जीत जाता था। दूसरी बार बड़े-बड़े जनरलों की रणनीति बड़ी अच्छी होती थी लेकिन सब अपनी समझदारी लगाते रहते थे कि ऐसा करेंगे तो यह नुकसान हो जायेगा और तब तक दुश्मन जीत जाता था। यह बात दूसरी है कि हिटलर ने अपना काम बहुत बढ़ा लिया था। 'लाभात् लोभः प्रवर्तते'। पहले बताया था कि पचास हज़ारवाले को दो लाख दे दो तो काम बढ़ा लेगा भले ही फिर सम्भाल नहीं सकता। लाभ से लोभ बढ़ता है। उसने भी अपना काम बहुत ज़्यादा बढ़ा लिया और शॉकिंग फोर्सेज़ खत्म हो गई थीं। नये आक्रमण असफल होने लगे। फिर वही पुरानी फौजें उसके पास भी रह गईं।

इसी प्रकार वैदिक धर्म ने सबसे पहले 'शॉकिंग फोर्सेज़' बनाई कि आठ से चौबीस वर्ष तक ब्रह्म का ही विचार करो। ब्रह्मचर्य आश्रम हुआ। उस समय में वह ब्रह्मचिंतन में पूरी तरह से लग जाता था। वेदाध्ययन, तपस्या, ध्यान, धारणा उसके लिये स्वाभाविक थे। जब तक ब्रह्मचर्य आश्रम रहा अर्थात् हमारी शॉकिंग फोर्सेज़ रहीं, तब तक संसार में कोई भी हमारे ऊपर आक्रमण करके हमको नहीं हरा सका। हम ही विश्व-विजयी, सार्वभौम रहे। हम ही अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करके सारे संसार को विजय करने जाते थे। दिग्विजय हमारे यहाँ एक साधारण बात समझी जाती थी। जो भी बड़ा राजा आता था, वह सारी दिशाओं को विजय करता था। देशों का नाम हम नहीं लेते थे। छोटे-छोटे देशों का क्या नाम लें! पूर्व दिशा में बढ़े तो जब तक जीत नहीं लिया,चलते चले गये। दक्षिण दिशा में चले तो सारे दक्षिण के राज्यों को विजय करने में लग गये क्योंकि जो ब्रह्मचर्य से आते थे उनमें ओज होता था। धीरे-धीरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थाश्रम के द्वारा दब गया और अंत में गृहस्थाश्रम का अंग बन गया। जो लोग थोड़ा-सा संस्कारों का विषय जानते होंगे उन्हें पता होगा। आजकल जिस समय यज्ञोपवीत करते हैं उसी दिन उसका स्नातक संस्कार कर देते हैं कि वह स्नातक हो गया! अर्थात् उसी दिन गृहस्थ बनने के योग्य हो गया। पहले मृगछाला और फिर सोने का कंठी पहना देते हैं। स्नातक होने के बाद वह ब्रह्मचारी कहाँ रहा! वह तो गृहस्थ का अंग रह गया। 'शॉकिंग फोर्सेज़' सनातन धर्म में नहीं रह गई इसलिये केवल एक हिसाब-किताब ही रह गया कि कैसे समन्वय करें या कैसे समझौता करें, कैसे काम चलायें। आज का दिन तो निकल गया, कल की फिर सोचेंगे। आसक्ति जितनी बढ़ती जायेगी उतना ही अध्यास दृढ होगा। अज्ञान तो वही है। ब्रह्मचर्य या गृहस्थाश्रम के अज्ञान में फ़र्क नहीं है लेकिन आसक्ति की कमी होने से देहाध्यास और देह-सम्बन्धियों का अध्यास कम होने से किसी भी काम में जुट जाने से सफलता निश्चित होती है।

भगवान् भाष्यकार ने इसीलिये वेद के दूसरे आधार को पकड़ा। यह श्रुति में है - 'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्' ब्रह्मचर्य से ही संन्यास ले ले। तब संन्यास का अंगभूत नैष्ठिक ब्रह्मचर्य बनाया गया। जिन लोगों में थोड़ी भी परमात्मा की तमन्ना है वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन कर सीधे संन्यास में जायें। तब वे उस धर्म को आगे ले जाकर अनुभव में ला सकेंगे। जिस श्रुति ने कहा ब्रह्मचर्य से गृहस्थ, गृहस्थ से वानप्रस्थ में प्रवेश करके संन्यास ले, उसी श्रुति ने विकल्प दिया कि ब्रह्मचर्य से सीधे संन्यास ले सकता है। आसक्ति के द्वारा ही अज्ञान पुष्ट होता है। जितनी आसक्ति बढ़ाओगे उतना ही अज्ञान से देहिभाव पुष्ट से पुष्टतर होता जायेगा। जलाना इसी अज्ञान को है। आसक्ति के द्वारा जो पुष्ट होता है उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को जलाना है। इसी में राग-द्वेष, काम,क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इत्यादि सभी फल-फूल लग रहे हैं। जैसे पेड़ के अंदर तना, डाली, पत्ते, फूल, फल सब हैं, उसी प्रकार से ये राग-द्वेष आदि सब के सब आसक्तियों के रूप हैं। श्रुतियों ने पहले इन सबको इकट्ठा करके त्रिविध एषणा बताई और अंत में इन तीनों को भी एक एषणामात्र कह दिया। कामना ने ही दान दिया और प्रतिग्रह लिया, उसी ने कर्म किया - इत्यादि कहनेवाले मंत्र आते हैं। अर्थात् अंत में कामना के अंतर्गत ये सब आ गये। यह एक एषणामात्र आसक्ति रही। यदि आसक्ति जल गई तो देहिभाव की पुष्टि खत्म हो जायेगी। जैसे पेड़ तब तक जलेगा जब तक मिट्टी अर्थात् राख न हो जाये, उसी प्रकार से दुःख तब तक होता रहेगा जब तक सारी आसक्तियाँ, राग-द्वेष आदि न जल जायें।

जल कर भी ये अज्ञानरूप तो फिर भी तब तक रह जायेंगे जब तक शरीर है, लेकिन वह वस्तुतः अज्ञान नहीं है वरन् अविद्यागंध, अविद्या की छाया या अविद्यालेश है। जैसे तुम्हारे कपड़ों में फिनाईल की गोलियाँ पड़ी हुई हैं। उन गोलियों को निकालने तक का काम तुमको करना है। उसके बाद जो उसकी गंध बच गई, उसको हटाने के लिये तुमको कुछ करना नहीं पड़ता है, अपने आप ही वह गंध थोड़े दिनों में समाप्त हो जाती है। धूप में रख दो तो ज़रा जल्दी खत्म हो जाती है। लेकिन एक बार जब फिनाईल कपड़ों से निकल गई तो फिर वह गंध टिकने वाली नहीं है। दूसरा दृष्टान्त छाया का दिया। जिस चीज़ से छाया है यदि तुमने उस की तीव्रता को कम कर दिया तो छाया को हटाने के लिये अलग प्रयत्न नहीं करना पड़ता। किसी दीये के सामने तुम खड़े हुये हो या तुमने कोई चीज़ दीये के सामने रखी है तो दीये से छाया पड़ रही है। छाया कितनी तेज़ होगी? जितना तेज़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीपक होगा। हल्के दीपक मे छाया भी हल्की पड़ती है। सूर्य के अंदर छाया बड़ी तेज़ पड़ जाती है। जैसे-जैसे दीपक हल्का होता जायेगा वैसे-वैसे छाया भी हल्की होती जायेगी। नहीं देखा हो तो कर के देख लेना। अंततोगत्वा जब दीपक बुझ जायेगा तो छाया को कहीं उठाकर थोड़े ही ले जाना पड़ेगा! दीपक के खत्म होने के बाद छाया स्वतः खत्म हो जायेगी। इसी प्रकार यहाँ जो देह के साथ व्यवहार है यह उस आसक्ति से प्रसूत छाया है। जितना आसक्ति को तेज़ करोगे उतना ही इस अज्ञान की छाया मज़बूत होती जायेगी। जितनी आसक्ति हल्की होती जायेगी, उतनी ही यह छाया हल्की होती जायेगी। जब आसक्ति नहीं रहेगी तो फिर यह छाया कुछ नहीं है। उसके लिये अलग प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। तीसरा दृष्टान्त लेश का दे दिया। बर्तन को मांजकर धो दिया, पोंछ दिया। पोंछने के बाद भी बर्तन के ऊपर थोड़ी सी नमी रहती है। धोकर पोंछने तक तो तुमको करना है लेकिन उस पर नमी तुम्हारे कुछ करने से थोड़े ही हटेगी। तुमने जब पोंछकर रख दिया तो थोड़ी देर में नमी स्वतः चली जायेगी। उसके लिये अलग प्रयत्न अपेक्षित नहीं है। भगवान् भाष्यकार कहते हैं कि इसी प्रकार से आसक्तियों को समाप्त करने तक, अज्ञान के अंदर राग-द्वेष आदि को जलाकर राख रहने तक तुमको प्रयत्न करना है। वह प्रयत्न क्या है? वेदांत का प्रयत्न तो हँसी-खेल का प्रयत्न है 'अहर्निशं किं परिभावनीयं संसारमिथ्यात्व-शिवात्मतत्त्वम्।' संसार के मिथ्यात्व की और अपने आत्मस्वरूप की रात-दिन परिभावना करनी है। यह कोई जप नहीं कि सिद्धासन से करें या पद्मासन से, सवेरे करें या शाम को, नहाकर करें या नहाने के पहले, जूता पहने हुये करें या नहीं करें; रात-दिन इसे करना है। जहाँ कोई पदार्थ सामने आया उसके मिथ्यात्व का तुरंत विचार करो। अपनी शिवरूपता का विचार करो। यह कब तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना है? जब तक राग-द्वेष आदि सर्वथा जल नहीं जायें; आसक्ति का लवलेश न रह जाये। उसके बाद जो जलकर अज्ञान बचा हुआ है, वह बेचारा थोड़े दिन में खत्म हो जायेगा -'विमुक्तश्च विमुच्यते' श्रुति कहती है। कपड़े में फिनाईल की गोली छह महीने तक रखने पर उसकी गंध दो दिन में उड़ती है, तो अनादि काल से जिन आसक्तियों को तुमने इकट्ठा करके रखा था उनकी अंतिम प्रतीति उड़ने में दस-बीस साल लग जाते हैं तो कौन-सी घबराहट है, कौन सा लम्बा समय है! लेकिन यह होगा आसक्ति खत्म हो गई तब।

देहिभाव की पुष्टि जल जाने पर अब क्या बचा? 'य एव ब्रह्मशब्दार्थो देहशब्दार्थ एव सः' इस देहासक्ति में जो जलाना था वह जला दिया तो जहाँ बैठकर अब तक संसार का दुःख भोगा था वह देह अब देह नहीं रह गया, वह मेरा अधिष्ठान ब्रह्म हो गया। उस अधिष्ठान में बैठकर आनंद भी उसी देह में लूट रहे हो। भगवद्-भक्ति का आनंद वहीं तो आना है। भोग का अधिष्ठान शरीर, मोक्ष का अधिष्ठान ब्रह्म। जहाँ बैठकर भोग किया, उसका नाम शरीर, अधिष्ठान। उसी प्रकार जहाँ बैठकर आनंद ले रहे हो वह ब्रह्म भी मेरा ही स्वरूप है। जहाँ बैठकर ऐसा किया जाता है, यही देह-शब्दार्थ और यही ब्रह्म-शब्दार्थ है। भगवान् भाष्यकार आचार्य शंकर भगवत्पाद के परमगुरु आचार्य गौडपाद ने कहा है 'चलाचलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत्' ज्ञानी के चल और अचल दोनों निकेत हैं, ज्ञानी दोनों जगह रहता है। चलनेवाला मकान कोई साधारण मकान नहीं! तुम लोग तो कल्पना ही नहीं कर सकते। तुम समझते हो कि मकान में जितनी नींव दें उतना अच्छा है। हम समझते हैं कि मकान तो चलता-फिरता अच्छा है। साढ़े तीन हाथ का बढ़िया ब्रह्मपुर भगवान् ने बनाया है। यही उसके रहने की जगह है। यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चल निकेत है। जिस समय जीवन्मुक्ति का आनंद लेता है उस समय यह देह भी उसके लिये ब्रह्मरूप है और जिस समय इस देह को नहीं चला रहा है, समाधि में बैठा हुआ है, वह अचल निकेत है। वह कभी नहीं हिलता-डुलता, उस समय विदेह मुक्ति का आनंद लेता है। विदेह मुक्ति मरकर ही नहीं होती बल्कि जिस समय देहभान उस समय जीवन्मुक्ति और जिस समय देहभान नहीं उस समय विदेह मुक्ति। इसलिये सब समय यह शरीर ब्रह्मपुर हो गया। जैसे संस्कृत में अम्बु और अंभः इन दो शब्दों का अर्थ जल ही होता है इसी प्रकार देह और ब्रह्म दोनों का अर्थ है - जहाँ बैठकर कुछ किया जाय, अर्थात् अधिष्ठान।

इस ब्रह्मपुर के अंदर जब तक आसक्ति के द्वारा अज्ञान को लाते रहे, तब तक देह दृढ होता रहा। अब खुराक बदल गई। जैसे आजकल खाद को बदल दिया। आजकल एक कृत्रिम खाद आती है और एक गाय के गोबर आदि की खाद होती है। यदि किसी पेड़ को जलाना हो, लेकिन यह काम करना नहीं, गाँव में किसी से दुश्मनी हो जाये, तो वही सरकारी खाद ज़रा ज़्यादा डाल दो तो वह पेड़ बढ़ता नहीं है, जल जाता है। इसी प्रकार यहाँ संसार के अंदर आसक्ति करके ही तुमने देहिभाव को बढ़ाया है। अब आसक्ति ज़रा और ज़्यादा कर लो। लेकिन वह आसक्ति संसार में ज़्यादा नहीं कर सकते क्योंकि आसक्ति एक तरह का प्रेम है। प्रेम में एक अच्छाई और एक बुराई है। यदि हम तुमसे प्रेम करें और तुम हमसे प्रेम करो तब तो प्रेम बढ़ जाता है और यदि हम तुमसे प्रेम करें और तुम झटका देते रहो तो प्रेम घट जाता है। संसार में जिससे प्रेम करोगे, वह झटका ही देगा क्योंकि उसके पास तुम्हारा प्रेम लेने का पात्र, बर्तन नहीं है। उसका मन अपनी आसक्ति से पहले ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरा हुआ है। उसने जिन चीज़ों से प्रेम कर रखा है वही वहाँ भरे हुये हैं इसलिये तुम्हारा माल तो ऊपर के ऊपर निकल जाता है। वह ले तो कहाँ ले! वह तो तुमसे चीज़ें चाहता है। प्रेम तो सबके अंदर आसक्ति के रूप में पहले ही भरा हुआ है। नतीजा यह होता है कि जब तक तुम उसके मनोनुकूल रहोगे, उसकी चीज़ों की इच्छा को पूरा करते रहोगे, तब तक वह ऊपरी, बहता प्रेम दिखाता रहेगा, और जहाँ तुमने रुख बदला तो वह गया। जितनी-सांसारिक आसक्तियाँ हैं ये कभी दृढ नहीं होतीं। लोग समझते हैं कि संसार में आसक्ति मन बहुत करता है। विचार करके देखो तो पता लगेगा कि संसार में मन आसक्ति करता है लेकिन कर पाता नहीं है। उसमें जमता कहाँ है? बचपन से सोचो तो पहले धाय होती थी और लगता था कि इसके जैसा प्रेम मेरा किसी के साथ नहीं। फिर थोड़ा बड़ा हो गया तो स्कूल के साथी प्रिय लगते थे। फिर शादी हुई तो सोचता था कि बीवी जैसा प्रेम किसी के साथ नहीं। फिर छोटे-छोटे बच्चे आ गये तो उनके साथ लगने लगा। बच्चे भी बड़े होकर चल दिये तो अब पोतों से ही मन रमाता है। कहीं आसक्ति टिक नहीं पाती। कारण यही है कि तुम्हारे प्रेम को ग्रहण करने का पात्र उन बेचारों के पास नहीं है।

वह पात्र परमात्मा के पास है। विचार करो, तुम्हारे घर में ज़्यादा से ज़्यादा दस आदमी होते हैं और उनसे भी तुम्हारे मन में बना रहता है कि इसका मुझ से प्रेम नहीं, उसका प्रेम नहीं। परमात्म-चिंतन करनेवाले महापुरुषों के पास सैंकड़ों आदमियों का समुदाय हो तो भी उनका सबसे प्रेम रहता है। कारण क्या है? वे तुम्हारे प्रेम को ग्रहण इसलिये कर पाते हैं कि उनमें कोई आसक्ति नहीं है। वे तो तुम्हारे प्रेम से अपने को भर लेते हैं। प्रेम का यह स्वभाव है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब तक वह ग्रहण न किया जाये तब तक पूर्ण नहीं होता है। आसक्ति से कैसे छूटें? महत् आसक्ति बने तो छूटें। इतनी तीव्र आसक्ति हो जाये कि यह सब छूट जाये। जैसे लोक में होता है : लड़के का किसी लड़की से दिल मिल जाता है तो उस समय वह लड़का अपने उत्पन्न करनेवाले पिता को छोड़ने को तैयार हो जाता है, अपनी टट्टी-पेशाब उठानेवाली माता को छोड़ने को तैयार हो जाता है। जन्मभर जो भाई हर तरह रक्षा करने को तैयार था, घर के उन सम्बन्धियों को ठोकर मारने को तैयार हो जाता है। लड़का ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ है लेकिन मुसलमान के साथ जाने को तैयार हो जाता है। जन्म-भर जिसने मुँह में प्याज नहीं डाला वह मुसलमान के घर जाकर अण्डा खाने को तैयार हो जाता है। इतना अंधापन कहाँ से आया? आसक्ति की तीव्रता ही कारण है। तीव्र आसक्ति उत्पन्न होती है तो दूसरी आसक्तियाँ छूट जाती हैं। यह सब ने सुना होगा। कहो कि अभी इसका अनुभव नहीं किया है, तो तुम्हारा अनुभव बता दें: जैसे किसी का दिल लड़की से लगता है वैसे ही बड़ों का दिल पैसे से लगता है! जब दुकान में पैसे की आमदनी होने लगती है तो साझीदार बाप भी अच्छा नहीं लगता है। सोचता है कि अपनी एक अलग छोटी सी दुकान कर लूँ। कहता है - 'पिताजी! आपकी दुकान भी सम्भालता रहूँगा, ज़रा एक्सटैंशन हो जाये तो अच्छा है।' कारण क्या है? सोचता है कि 'काम मैं कर रहा हूँ, पिताजी पचास प्रतिशत ले जाते हैं, छोटे भाइयों का भी हिस्सा रखा हुआ है।' जिस पिता ने बड़ा किया उसका हिस्सा उसे खटकने लग गया। अगर बड़ा भाई ज़रा काम करने में कमज़ोर है तो वह खटकने लग गया। सब खटकने लग जाते हैं, क्योंकि पैसे में आसक्ति जो हो गई है। उस तीव्र आसक्ति के सामने दूसरी आसक्तियाँ धीमी पड़ गईं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वत्र नियम है कि एक तीव्र आसक्ति अन्य आसक्तियों को दबा देती है।

इसी प्रकार यदि तुमने उस परमात्मा में तीव्र आसक्ति कर ली तो बाकी जितनी आसक्तियाँ हैं सब ढीली पड़ जायेंगी। आचार्य अनुभूतिस्वरूप लिखते हैं 'परमात्मनि यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मनि' जिसने परमात्मा से प्रेम कर लिया उसे अपरमात्मा या अनात्मा से अपने आप वैराग्य हो जाता है। अब तक तो अपनी आसक्तियों से, अज्ञान से पुष्टि प्राप्त करते रहे हो और अब जब परमात्मा में तीव्र आसक्ति करोगे तब उसी स्नेह के द्वारा परमात्मा को अपने अंदर लोगे। परमात्मा वह खाद है जो तुम्हारी आसक्तियों को जलाकर, सुखाकर खत्म कर देती है। परमेश्वर से प्रेम किया तो तुम्हारी आसक्तियाँ जलने लग गईं। तुम उससे जितना प्रेम करोगे उतना वह तुम्हें तुम्हारी आसक्तियों से छुड़ायेगा। संसार में जिससे प्रेम करोगे उतना वह तुम्हें गुलाम बनायेगा, वह तुम्हारे प्रेम का आधार लेकर तुम पर शासन करेगा। परमात्मा से प्रेम करोगे तो वे तुम पर शासन नहीं, तुमको स्वतंत्र करेंगे, तुम्हारी गुलामी को दूर करेंगे। दोनों में यह बहुत बड़ा फ़र्क है। जैसे वहाँ यदि तुमने खाद ज़्यादा डाल दी तो पेड़ जल जायेगा, वैसे ही तुमने यहाँ परमात्मा में आसक्ति की तो देह का बंधन, राग, द्वेष सब जल जायेंगे। यह उसका उपाय हो गया। इसीलिये कहा कि यह ब्रह्मपुर है। मायापुर से हटकर ब्रह्मपुर में आओगे तब काम बनेगा। इसका तरीका हुआ कि जितना-जितना इस आत्मतत्त्व से प्रेम बढ़ाओग, उतना-उतना अनात्मतत्त्व से हटते जाओगे। यह प्रेम कैसे बढ़ता है - इस पर आगे विचार करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठ प्रवचन

३०.३.७६

परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को समझने के बाद मनुष्य उसका ध्यान कहाँ करे? 'यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे' यह शरीर और यह ब्रह्माण्ड दोनो ही ब्रह्मपुर नाम से कहे गये हैं। जब तक इसके स्वरूप को समझा न जाये तब तक यह मायापुर है और समझ लेने पर यही ब्रह्मपुर है। एक बार इस ब्रह्मपुर के रूप को समझ लेते हैं तो धीरे-धीरे बाहर से अंदर की तरफ प्रवृत्ति होती है। ब्रह्म नाम आनंद का है। 'विज्ञानम् आनंदं ब्रह्म रातिर्दातुः परायणम्,' 'आनंदं ब्रह्मेति व्यजानात्' इत्यादि अनेक श्रुतियों का स्पष्ट उद्घोष है कि आनंद ब्रह्म का स्वरूप है। मनुष्य जितने कार्य करता है, जितना भी चक्कर संसार में लगाता है, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता लगता है कि उसका उद्देश्य आनंद की प्राप्ति है, आनंद के लिये सारी प्रवृत्तियाँ हैं। लेकिन वह सोचता है कि आनंद बाहर है और यहाँ अतिधन्य वेद बताता है कि आनंद बाहर नहीं, आनंद अंदर है। इसीलिये अनंत काल से यह जीव आनंद को ढूँढ रहा है और अनंत जीव ढूँढ रहे हैं लेकिन मिल किसी को नहीं रहा है। विचारशील इसी से समझता है कि जहाँ ढूँढ रहा है वह गलत जगह है। मनुष्य सोचता है कि इस में आनंद नहीं तो उसमें होगा, उसमें नहीं तो किसी तीसरी चीज़ में आनंद समझता है। चीज़ों को तब तक बदलता रहता है जब तक भगवती श्रुति अपनी करुणामयी आवाज़ से यह न कह दे कि 'जितने इदम् हैं वे सब दुःखरूप हैं। रास्ता ही गलत पकड़ रखा है!' यह बात अपनी बुद्धि से पता नहीं लगती। आनंद इस चीज़ में नहीं तो उसमें होगा, उसमें नहीं तो किसी और में होगा - यहाँ तक तो बुद्धि काम करती है, लेकिन दृश्यमात्र में ही आनंद नहीं है - इस बात का पता तब तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं लग सकता जब तक वेद इस बात को न बता दे। जहाँ यह बताया वहाँ मनुष्य का ध्यान इस तथ्य पर अवश्य जाता है। लोक में ऐसा होता है : कोई चीज़ चोरी चली गई तो आदमी उसे सब जगह ढूँढता है, ताकि चोर मिल जाये। लेकिन 'चीज़ चोरी चली गई' इस भावना के आ जाने के बाद मनुष्य स्वयं अपने पास उस चीज़ को नहीं ढूँढेगा! बाहर ही ढूँढता रहेगा कि कौन ले गया। एक सज्जन हैं, जब पढ़ते-लिखते हैं तब उन्हें चश्मा पहनना पड़ता है। उनकी आदत है कि कोई मिलनेवाला या बातचीत करनेवाला आ गया तो चश्मा खोलकर नहीं रखते, चश्मे को अपने सिर पर चढ़ा देते हैं। एक बार कोई मिलनेवाला आया तो काफी देर तक बातचीत करते रहे। जब वह काफी देर बाद चला गया तब तक वे सज्जन भूल गये कि चश्मा उन्होंने अपने सिर पर चढ़ा रखा है! उनके सिर पर बाल भी हैं। मेज़ पर देखा, नहीं था तो नौकर को आवाज़ दी कि कमरे में रखा होगा। नौकर ने आकर कहा कि वहाँ नहीं है। पत्नी से कहा कि देखो अलमारी में तो नहीं रख दिया है? सब लोग सब जगह ढूँढ रहे थे और वे सब पर नाराज़ हो रहे थे कि 'तुम लोग मेरी चीज़ इधर-उधर रख देते हो।' थोड़ी देर बाद उनकी लड़की स्कूल से पढ़कर आई तो पहले उसने पिता को देखा; स्वाभाविक ही है, चूँकि बाहर से आई थी। देखा कि पिता जी की त्यौरी चढ़ी हुई है और सब इधर से उधर दौड़ रहे हैं। उसने आते ही पूछा कि क्या बात है? उसके पिता ने कहा - 'देखो तुम्हारी माँ किसी चीज़ का ख्याल नहीं रखती। पता नहीं मेरा चश्मा कहाँ रख दिया।' उसने कहा, 'पिताजी आप पहने हुये ही हो, यही तो नहीं है?' कहा, 'अरे! यही तो है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार अगर मन में यह भाव आ गया कि चीज़ कहीं अन्यत्र है तो मनुष्य का विचार ही नहीं जाता कि अपनी तरफ देखे, अपने में ढूँढे। हमारे रात-दिन के व्यवहारों में हम यह करते रहते हैं। हर अपराध हम अपने साथवालों में ढूँढते हैं। हर सामाजिक व्यवहार की भूल हम समाज में, राज्य में मानते हैं। यहाँ तक कि आजकल के विलक्षण बुद्धिवाले तो कह देते हैं कि ये अंतर्राष्ट्रीय समस्यायें हैं। किसी दुकानदार से कहो कि भाव क्यों बढ़ा दिये? तो वह झट कहाँ पहुँचता है? अमरीका में भी भाव महंगे हैं! हम पान का दाम पूछ रहे हैं, अमरीकावाले क्या पान खाते हैं? मनुष्य सभी कारणों को तब तक बाहर देखता है जब तक कोई मनोवैज्ञानिक तुमको यह न समझा दे कि यह सारा संसार जो तुमको दीख रहा है, यह तुम्हारे मन के प्रतिबिम्बों से लांछित होकर, प्रतिबिम्ब का दाग पड़कर दीख रहा है। जो-जो दोष तुम बाहर देख रहे हो वह-वह दोष तुम्हारे मन में है। मन के संस्कार में से निकलनेवाला ज्ञान जब विषय पर पड़ता है तब लगता तो है विषय में, लेकिन है मन में। चश्मे पर पड़ा हुआ दाग, जितने पदार्थों को देखोगे उन सब में दीखेगा। चश्मे में काला दाग हो तो जिसका मुँह देखोगे उसमें काला दाग दीखेगा। विचारशील होगा तो समझेगा कि 'सबके दाग थोड़े ही लगा होगा, अपना ही चश्मा खोलकर देखो कि क्या मामला है।' लेकिन अधिकतर लोग यह देखते नहीं जब तक कोई कह न दे कि चश्मे में क्या दीख रहा है। इसी प्रकार मनुष्य देखता है कि संसार में जो हमारे पास आता है वह स्वार्थी है। देवदत्त भी स्वार्थी, यज्ञदत्त भी स्वार्थी, विष्णुदत्त भी स्वार्थी है। यह नहीं सोचता कि ये सब स्वार्थी हैं, कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरी दृष्टि स्वार्थी है? सबको लगता है कि सारी दुनिया बिगड़ रही है, सारा संसार बिगड़ रहा है, लड़के बिगड़ रहे हैं, लड़कियाँ बिगड़ रही हैं, सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिगड़ रहे हैं। जब तक कोई बुद्धिमान् यह न कहे 'तुमको सब बिगड़े दीख रहे हैं तो कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारी ही बुद्धि बिगड़ी बैठी है? अपनी तरफ दृष्टि करो, अपनी बुद्धि में देखो, जिसके कारण सब जगह बिगाड़ दीख रहा है।' जब तक कोई यह न समझा दे, तब तक यह बात समझ में नहीं आती। समझाने के बाद भी मनुष्य यह मानने को जल्दी तैयार नहीं होता कि मेरी दृष्टि खराब है। किसी बहरे आदमी के पास बैठ जाओ तो शायद ही कभी कहे कि मेरा कान खराब है। कहता है 'ज़रा ज़ोर से बोलो, धीरे-धीरे क्या फुस-फुस कर रहे हो।' जिसको दीखता कम है वह कहता है 'चीज़ इतनी दूर क्यों रख दी? ज़रा पास लाओ।' किसी को कोई विषय समझाओ तो कहता है 'आपकी भाषा बड़ी कठिन होती है।' यह नहीं कहता कि मैंने नहीं पढ़ रखा है! लोग कहते हैं 'आम ज़बान में बोला करें।' हम कई बार हँसी में कहते हैं कि आम हम तो खाया करते हैं, यह आम ज़बान क्या होती है! लोग समझते हैं कि 'आम' शब्द का अर्थ सब जानते हैं। यही नहीं पता कि 'आम' शब्द का अर्थ ही लोगों को पता नहीं है। हर-एक मानता है कि जो मैं समझता हूँ वह आम ज़बान है, बाकी सब लोग कड़ी भाषा बोल रहे हैं। कोई विचार यदि समझ में नहीं आता तो कहता है कि 'यह तो बाल की खाल उतारनेवाली बात है, असली तत्त्व बताओ।' 'मेरी बुद्धि को मैं उस तत्त्व में नहीं लगा पा रहा हूँ, मैंने अपनी बुद्धि विकसित नहीं की है,' - यह कहाँ कोई मानता है! मनुष्य का स्वभाव है कि जिन चीज़ों को देखता है उन्हें बाहर मानता है, कभी सोचता ही नहीं कि शायद मेरे अंदर हो।

इसी प्रकार सर्वत्र आनंद को ढूँढ रहे हैं; अनंतकाल तक ढूँढते ही रहेंगे क्योंकि बाहर ही ढूँढते हैं, नई-नई चीज़ों को बनाकर ढूँढते हैं। पहले आदमी घड़े में पानी पीता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर घड़े को बालू के अंदर दबाकर ठण्डा करके पानी पीता था। फिर बर्फ जमाकर पानी में बर्फ डालकर पानी पीता था। फिर बर्फ का बक्सा बनाकर उसमें पानी रखकर पीता था। फिर रेफ्रिजरेटर में पानी रखकर पीता है। परेशान है कि किसी तरह उसे ठण्डा पानी पीने का सुख मिले। नई-नई चीज़ें निकालने में सोच रहा है कि आनंद मिल जायेगा। जितनी चीज़ें उपलब्ध हैं, वहाँ आनंद नहीं मिलता तो नई चीज़ निकालने की सोचता है कि शायद उससे मिलेगा। इस मायामयी सृष्टि में अनंत पदार्थ अनंतकाल तक निकलते रहेंगे। कोई चाहे कि सब पदार्थों को देखने के बाद शायद मनुष्य को पता लग जाये कि बाहर आनंद नहीं है, तो यह नहीं होना है। कई बार लोग कहते हैं 'संसार को भोगकर देख लेंगे, तभी न वैराग्य होगा।' हम कहते हैं कि भोगकर तो अनादिकाल से आज तक देख ही रहे हो, वैराग्य होना होता तो हो गया होता! सब भोग भोग चुके। इसलिये शास्त्रों में भोग को वैराग्य के प्रति कारण नहीं माना है, विवेक को वैराग्य के प्रति कारण माना है। इसलिये यह समझना कि बाह्य विषयों की उन्नति करते-करते कभी इसकी दुःखरूपता का पता लग जायेगा और मनुष्य अंदर की तरफ आयेगा - यह कभी नहीं होना है क्योंकि अनंत सृष्टि आगे बढ़ती जानी है और रोज़ नई चीज़ें पैदा हो जानी हैं। पिता पचपन साल की उम्र तक कमर तोड़कर काम करता है और धन इकट्ठा करता है। दूसरों को देखकर बच्चा कहता है 'पिता जी ने हमें दिया ही क्या है!' पिता ने बड़ा परिश्रम करके ढाई हज़ार का रेडियो लगाया है, पुत्र कहता है 'क्या रेडियो लगाया है! टेलिविज़न लगाते तो अच्छा था।' अरे, पाँच साल पहले जब ढाई हज़ार का रेडियो लगाया था तब क्या पता था कि टेलिविज़न आ जायेगा? आज का पिता टेलिविज़न लगायेगा तो कुछ सालों में उसका लड़का कहेगा कि क्या काले-सफ़ेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रोंवाला टेलिविज़न लगा रखा है, रंगीन चित्रोंवाला तो लगाया नहीं है। जब तक सोचोगे कि अब सुख देनेवाली चीज़ें इकट्ठी हो गयीं, तब तक चीज़ें और बढ़ जायेंगी। इसका कभी भी अंत नहीं आना है जब तक कि वेद के आधार पर गुरु तुमको न कहे कि 'अरे ज़रा देखो तो सही कि आनंद कहाँ है? 'यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे' इसके अंदर ढूँढो, तब आनंद मिलेगा।' यह जब तक न बतायें तब तक उधर प्रवृत्ति होगी ही नहीं।

तुंगभद्रा नदी के किनारे एक नगर था। उस नगर में आत्मदेव नाम का ब्राह्मण रहता था। बड़ा सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मण था, धन-सम्पन्न भी था। उसको सभी सुख उपलब्ध थे लेकिन उसकी पत्नी महा कलहप्रिया थी अर्थात् झगड़ा-पसन्द थी। कई लोग झगड़ा-पसन्द होते हैं। अगर घर में एक बार हल्ला-गुल्ला न मचे, एकाध रुआंसा न हो जाये, तो सोचते हैं कि आज का दिन बेकार हो गया! ऐसे लोग पत्नी को, नौकरों को, बच्चों को, किसी-न-किसी को ज़रूर छेड़ेंगे। आत्मदेव की धुंधुली नाम की पत्नी का यही स्वभाव था। लेकिन ब्राह्मण को यह निश्चय था कि यह मुझे पूर्व जन्म के परिपाक से मिली है इसलिये जैसी भी मिली है मेरी पत्नी है, मुझे इसको निभाना है। यही सदाचारी और विद्वान् बनने का फल है। यदि सदाचार और विद्या तुम्हारे अंदर संतोष को उत्पन्न न करे तो तुम्हारा सदाचार और विद्या सब बेकार है, कोई फ़ायदा नहीं। यह कटु सत्य बता रहे हैं इसलिये निश्चय समझ लो। थोड़ा कड़वा करेला है लेकिन यकृत मजबूत करेगा। यदि कोई सदाचारी है पर संतोषी नहीं, तो वह सदाचार को ढकोसला मानकर करता है, मिथ्याचारी है। इसलिय वह सदाचार नहीं कर रहा है बल्कि इसलिये कर रहा है कि उसके सदाचार का यश हो और दूसरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे सदाचारी समझें। जो दूसरों के लिये सदाचार करता है उसे हम लोग सदाचारी नहीं कहते। सदाचारी वह है जो सदाचार इसलिये करता है कि उसको वह ठीक समझता है और उसको किये बिना उससे रहा नहीं जा सकता। किसी कारण से कोई असत् आचार उससे हो जाये तो जब तक वह उससे क्षमा न माँग ले जिसके प्रति असत् आचार हुआ है, तब तक उसका हृदय हल्का नहीं होता। वह व्यथित हो जाता है कि 'मैंने यह क्या कर दिया' उसका नाम सदाचारी है। जो असदाचार करने के बाद दायें-बायें देखे कि किसी ने देखा न हो तो ठीक है अर्थात् जो मानता है कि गलती का पता नहीं लगना चाहिये; अथवा असद् आचरण करने के साथ ही वकील बन जाता है; वकील का काम तो जानते ही हो कि जो मिसिल सामने आई उसी को पुष्ट करना है, यह नहीं देखना कि सत्यता क्या है; वह सदाचारी नहीं है। बहुत से लोगों से जो कार्य सत् या असत् हो गया, बस उसको पुष्ट करने की युक्ति सोचते रहेंगे। ऐसे व्यक्ति से किसी भी गलती के बारे में पूछो तो उसके पास जवाब इतना सुन्दर तैयार होता है कि चित्त प्रसन्न हो जाता है। उसकी बुद्धि की वाह-वाह करते हुये दिल कह उठता है कि यदि यह बुद्धि इसने अच्छे काम में लगाई होती तो सम्भवतः इसे भगवान् मिल गये होते!

दूसरे सबको तुम मिथ्या आचार से धोखा दे सकते हो लेकिन एक को नहीं दे सकते और वह खुद आप हो। कभी विचार करके देखो कि संसार में सबसे दूर रह सकते हो, केवल एक चीज़ है जिससे कभी दूर नहीं रह सकते और वह अपना आपा है। यदि सारा संसार मेरी वाह-वाह करे, मेरी प्रशंसा करे, मेरे लिये बड़े-बड़े जुलूस निकाले, जय-जयकार करे, लेकिन जिसके साथ चौबीस घण्टे रह रहे हो वह हृदय अंदर ही अंदर कुण्ठित होता रहे, तो वह जयकार और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाह-वाही किस काम की? लोग चाहते हैं कि उस वाह-वाही से हम अपने हृदय को दबा लेंगे। थोड़ी देर के लिये दब भी जाता है क्योंकि एक नशा आता है। लेकिन जय-जयकार कब तक सुनोगे? जैसे ही वह दबाव हटा, हृदय फिर हूक मारता है कि 'क्या कर रहा हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, यह क्या मेरी प्रवृत्ति है, यह सब करने से क्या होगा?' जैसे नॉवल्जिन खाने से सिर का दर्द दब जाता है लेकिन जैसे ही उसका असर कम हुआ, सिर का दर्द फिर तैयार है, उसी प्रकार जो यह आत्मग्लानि है, आत्मा का धिक्कारना है, इसे चाहे जितनी प्रतिष्ठा इत्यादि से तुम थोड़ी देर के लिये दबा दो, लेकिन यह दुःख मिटता नहीं। दूसरी तरफ, जिसके साथ मुझे रहना है वह आपा मेरा आत्मदेव प्रसन्न है, वह मुझे धिक्कारता नहीं, मुझे दृढ विश्वास है कि मैंने कभी कोई गलती नहीं की, तो सारी दुनिया भी धिक्कारती रहे, उससे हानि नहीं, वह धिक्कार देकर थोड़ी देर में चली जायेगी। हो सकता है उस धिक्कार को सुनकर दो-चार मिनट हमें दुःख भी हो जाये, लेकिन जैसे ही वे चले जायेंगे, फिर मन कहेगा 'मैंने ठीक किया'। दूसरों की वाह-वाही और दूसरों का धिक्कार क्षणिक होता है। अपना धिक्कार और अपनी पूर्णता हमेशा रहती है।

आत्मदेव भी इस बात को जानता था कि 'वह मेरी पत्नी है, मुझे अपने प्रारब्ध कर्म से मिली है। इसका ऐसा स्वभाव है। यह अपना स्वभाव नहीं बदल सकती तो मैं अपना स्वभाव क्यों बदलूँ?' सत्त्वगुणी लोगों में यही तो एक कमज़ोर आदत है। सत्त्वगुण पारदर्शी होता है, साफ़ होता है इसलिये उस पर झट छींटा पड़ जाता है। शराबी को सौ जने 'अबे शराबी, अबे शराबी' कहते रहें तो वह शराब नहीं छोड़ेगा। भस्मी लगानेवाले को चार जने कह दें 'अरे भगतजी,' तो वह बड़ी शरम खाने लगता है! सोचता है' क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाहर दिखाना है! भस्मी नहीं लगायेंगे तो क्या हर्जा है?' क्या कारण है? लोग अत्यंत घृणित नाचों को देखने जाते हैं। तुम लोग दिल्लीवाले हो, तुम लोगों से क्या छिपा हुआ है! होटलों में जाकर नंगी औरतों के नाच देखते हैं और बड़ी प्रसन्नता से कहते हैं कि हम वहाँ गये थे। यह कहने में उनको शरम नहीं आती कि क्या करने गये थे। यदि उनसे कहो भी तो कहेंगे 'जी, इसमें क्या है! दुनिया में ये देखने के लिये ही बनी हैं।' कोई तो और आगे बढ़ जायेंगे कि पुराने ज़माने में घृताची इत्यादि अप्सरायें होती थीं या नहीं? और कहाँ-कहाँ तक पहुँचेंगे, भगवान् जाने। लेकिन यदि कोई व्यक्ति मन्दिर जानेवाला है, उसको कोई पूछता है 'कहाँ गये थे?' तो वह दबी ज़बान से कहता है - 'मंगलवार है, घरवालों ने कह रखा है कि मंगलवार को मन्दिर चले जाया करो। ज़रा चला गया था।' यह कहने में उसे शरम आ रही है। सत्त्वगुणी चूँकि पारदर्शी होता है इसलिये उस पर खट छींटे लग जाते हैं। तमोगुणी व्यक्ति बिलकुल काला होता है, कृष्ण वर्ण का होता है। उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। आत्मदेव इस बात को समझते थे कि 'पत्नी का स्वभाव खराब है तो उसका स्वभाव देखकर मैं अपना स्वभाव क्यों बदलूँ? मेरा स्वभाव सात्त्विक है, मैं सात्त्विक ही रहूँगा।' कई बार लोग पूछ लेते हैं कि सामनेवाला ठगी करे तो क्या करें? जवाब है कि कुछ मत करो, उदारता करो और क्या करो! वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो तुम अपना स्वभाव काहे को छोड़ो? अच्छी तरह खेल खेलो, वह अपना दाव मारे, तुम अपना दाव मारो। यदि तुम्हारा सिद्धान्त ठीक है तो एक दिन वह उदार हो जायेगा और यदि उसका सिद्धान्त ठीक है तो एक दिन तुम ठग बन जाओगे। लेकिन होना चाहिये पूर्ण आत्मविश्वास, तब यह होगा। पूर्ण आत्मविश्वास का मतलब क्या है? बहुत से लोग स्वभाव से पराधीन होकर उदार बने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो रहते हैं लेकिन अंदर ही अंदर सोचते रहते हैं कि 'हे परमेश्वर! यदि मैं भी ठगी कर सकता तो ठीक था!' ठगी भी तो सबसे नहीं होती। कई लोग अंदर से चाहते तो हैं कि ठगी करें, लेंकिन करने की हिम्मत नहीं पड़ती। तब ऐसों के प्रभाव से तो सामनेवाला नहीं बदलेगा, लेकिन यदि पूर्ण आत्मविश्वास से जानते हो कि 'ठगी गलत है, मैं ठीक हूँ,' तो वह ज़रूर बदल जायेगा। आत्मदेव इस बात को जानते हुये अपनी पत्नी धुंधुली से चाहे जितनी कलह हो जाये, लेकिन उससे प्रेम ही करता था।

उनके कोई संतति नहीं थी। एक बार वह कहीं जा रहा था, मार्ग में एक परमहंस महात्मा मिले। उनसे उसने कहा 'मेरे संतति हो जाये तो बड़ा अच्छा हो क्योंकि इसके बिना पितृ-ऋण कैसे चुकाऊँ।' 'पुत्रेण अयं लोको जय्यः' इस लोक का विजय मनुष्य पुत्र से ही करता है। पुत्र नहीं होगा तो जब यहाँ से जायेगा तब यहाँ जो कुछ उसने जीत रखा है वह न जाने कौन ले जायेगा! इस लोक के अंदर तो पुत्र से ही सफलता है। महात्मा ने विचार करके कहा ' तुम्हारे पुत्र तो हो जायेगा लेकिन तुम्हारी पत्नी बड़ी कलहकारिणी है, उसका भी प्रभाव पुत्र में आ जायेगा। इसलिये मैं तुमको एक फल देता हूँ। तुम अपनी पत्नी से यह प्रतिज्ञा करवा लेना कि जब तक गर्भ रहेगा तब तक सत्य बोलेगी, प्रतिदिन दान करेगी और केवल एक समय भोजन करेगी। इस प्रतिज्ञा से यह फल उसको खिला देना तो योग्य पुत्र उत्पन्न होगा।' ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ, फल लेकर घर आया और अपनी पत्नी को दे दिया और कहा 'सत्य बोलना, दान देना और एक बार खाने का व्रत रखना, इसका पालन करने में गड़बड़ी नहीं करना।' उसने कहा -'ठीक है।' कह तो दिया लेकिन सोचने लगी 'यह तो बड़ा टण्टा हो गया कि रोज़ सत्य बोलो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने तो एक घण्टा झूठ न बोलें तो काम न चले! अपना खुद का ही पेट नहीं भर रहा है और दूसरे को दान दो। अपने को तो सवेरे उठते ही चिल्ले खाने को चाहिये और ये कहते हैं कि दिन में एक बार खाओ। ऊपर से नौ महीने तक पेट में गर्भ रखो और उसका भार सहो। पुत्रोत्पत्ति काल में और कष्ट होता है, असह्य वेदना होती है। यह सब झंझट किससे होना है!' यह सोचकर उसने चुपचाप वह फल अपनी गाय को खिला दिया। महीना दो महीना हो गया तो सोचने लगी कि यह किसी अच्छे महात्मा से आशीर्वाद के रूप में फल लेकर आया है, पुत्र नहीं होगा तो कहीं बिगड़ न जाये। यह भी जानती थी कि यह सदाचारी है, सच झूठ का कहीं इसे पता न लग जाये। उसकी एक बहन थी, उसके पेट में बच्चा था उसने उससे कह दिया कि 'तेरे बच्चा हो तो मुझे दे देना।' उसकी बहन के पहले ही लम्बी-चौड़ी फ़ौज़ थी, उसने सोचा 'अच्छी बात है इसे दे देंगे तो छुट्टी हो जायेगी।' धुंधुली ने फल गाय को खिलाया था, गाय के जो बच्चा हुआ वह मनुष्य के आकार का बच्चा था लेकिन उसके कान गाय के जैसे थे। ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ लेकिन फिर परमात्मा की महिमा को समझकर ब्राह्मण ने उसे अपने घर में ही रख लिया। गौ के जैसे कान होने की वज़ह से उसका नाम गोकर्ण रख दिया। थोड़े दिन बाद धुंधुली की बहन के भी बच्चा हुआ, उसको उसने अपना बच्चा करके प्रसिद्ध कर दिया। धुंधुली का पुत्र होने से उसका नाम धुंधुकारी हो गया।

दोनों बड़े होने लगे। गोकर्ण तो सब प्रकार से उत्तम आचरण करे, वेद आदि सच्छास्त्रों का अध्ययन करे, माता-पिता की आज्ञा का पालन करे। दूसरी तरफ धुंधुकारी ठीक विपरीत, सब आचारों से हीन, चोरी करे, निर्दयता का व्यवहार करे। कई प्रकार से आत्मदेव ने उसे समझाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकिन वह नहीं माना। एक-आध बार गोकर्ण ने पिता को समझाया भी कि जाने दो, आप इसके लिये क्यों दुःखी होते हो? लेकिन पिता से सहन नहीं हुआ। एक दिन घर छोड़कर आत्मदेव जंगल में चला गया। 'ऐसा पुत्र उत्पन्न करके मैंने कौन-सा आचरण कर लिया, मेरा क्या पितृऋण चुका? मुझे धिक्कार है' - आत्मदेव को यह आत्मग्लानि हुई। जंगल में कठोर तपस्या करके ईश्वरार्पण बुद्धि से उसने अपने शरीर का त्याग कर दिया। यह विवेकी का चरित्र है। अविवेकी कहता रहता है कि लड़के बिगड़ रहे हैं। विवेकी सोचता है कि मेरे में कोई कमज़ोरी है तब न ऐसा लड़का पैदा हुआ है। हमारे यहाँ गर्भाधान एक संस्कार है। उसके अंदर बताया कि कैसा भोजन पत्नी करे, कैसा पति करे, मुहूर्त को देखकर किस प्रकार का आचरण करे, तब जैसा पुत्र चाहिये वैसा पैदा होगा। चारों वेदों को जाननेवाला पुत्र कैसे पैदा करें, एक वेद को जाननेवाला पुत्र कैसे पैदा करें, अथवा विशिष्ट गुणों से युक्त लड़की कैसे पैदा करें जो सब प्रकार से विदुषी हो। बृहदारण्यक उपनिषद् में पूरा प्रकरण ही इसका है। आत्मदेव के मन में यह बात नहीं आई कि लड़का बिगड़ गया। लड़के इसलिये बिगड़ गये कि हम कामना-प्रधान हो गये। जैसे पशुओं के मन में काम उत्पन्न हुआ, बच्चा पैदा कर लिया, ऐसे ही मनुष्य भी करने लगा तो पितृऋण कहाँ से चुकेगा! गर्भाधान को हमारे यहाँ विशिष्ट कर्म इसलिये माना कि जो जैसी वहाँ तैयारी करेगा वैसा ही जीव आकृष्ट होकर आयेगा। तकदीर और किस्मत का खेल तो मुसलमानों के यहाँ है। हमारे यहाँ नियम बताया गया कि जिस प्रकार से देवता की मूर्ति बनाकर जिन मंत्रों से प्रतिष्ठा करोगे वही देवता वहाँ प्रतिष्ठित होंगे, यह नहीं हो सकता कि हमने हनुमान् जी की प्रतिष्ठा की थी लेकिन उसमें भैरव आकर बैठ गये! जिन मंत्रों का प्रयोग करोगे, उन मंत्रोंवाला देवता वहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकर बैठेगा; इसी प्रकार अपने में सब प्रकार का शोधन करोगे तो जिस प्रकार के जीव को खींचना चाहोगे वैसा ही जीव आकर यहाँ बैठेगा।

अपनी यह गलती मानकर आत्मदेव ने तो अपना शरीर छोड़ दिया। अब क्या था, धुंधुकारी की और मौज हो गई। बाप था तो थोड़ी-बहुत रुकावट थी, अब तो माँ भी उसी की जाति की थी। दोनों का काम बढ़िया बन गया। दोनों ने मिलकर सारा धन ख़त्म कर दिया। धुंधुकारी माँ से कहे 'तू कहीं से लेकर आ, कहीं चौका बर्तन करके ला।' माँ उससे कहे 'तू नौकरी करके ला।' इनसे तंग आकर एक दिन गोकर्ण ने कहा 'मैं तो तीर्थयात्रा करने जा रहा हूँ', वह भी घर से निकल गया। माँ बुड्ढी थी, इतने लड़ाई-झगड़े में एक दिन वह मर गई। धुंधुकारी को जो बर्तन भाण्डे मिले वे सारे उसने बेच दिये। मकान भी किसी के पास गिरवी रख दिया और रुपया लेकर वेश्याओं को घर में लाकर रख लिया। पहले तो वेश्यायें आ गई, फिर थोड़े दिन में देखा कि धन तो कम होता जा रहा है। धीरे-धीरे उससे बात खुलवा ली कि पीछे माल कुछ नहीं है। यह सोचकर कि यह मर जायेगा तो फिर कर्जा वापिस नहीं करना पड़ेगा और सारी सम्पत्ति अपने हाथ में आ जायेगी, उन सबने मिलकर एक दिन उसी को मार डाला! धुंधुकारी मारा गया। पापकर्मों के कारण वह प्रेत योनि में चला गया। गोकर्ण जब घूमफिर कर वापिस घर आया तो वहाँ की सारी स्थिति देखी। वहीं थोड़ी दूर एक मन्दिर था, उसी में जाकर टिक गया। अगले दिन जैसे ही वह रात्रि में शौच करने निकला तो धुंधुकारी प्रेत योनि में था ही, उसने गोकर्ण को पकड़ लिया, कहा 'भाई! मैं बड़े कष्ट में हूँ, एक तुम्हारी ही आशा मुझे बची है।' वह बड़ा दुःखी हुआ और रोने लगा। जब मनुष्य पाप करता है उस समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में नहीं देखता कि यह पाप मुझे कहाँ ले जायेगा। पाप का फल देखते हुये उसके मन में विचार होता है कि कहाँ चला आया। पाप की यही तो विशेषता है कि करते समय मीठा और फल कड़वा। गोकर्ण सत्पुरुष था, उसके हृदय में दया आ गई। उसने कहा - 'भाई, मैं तुम्हारा कोई उपाय करूँगा।'

गोकर्ण ने शास्त्रों का विचार करना शुरु किया कि 'मैं कैसे इसका कल्याण करूँ!' उसको तो पता था कि इसने क्या-क्या पाप किये हैं। शास्त्रों को बहुत ऊपर नीचे देखा लेकिन कहीं उसको कोई उपाय नहीं मिला। तब उसने भगवान् सूर्य की उपासना की। भगवान् सूर्य ने दर्शन देकर पूछा - 'तुमको क्या चाहिये?' उसने कहा 'मेरा भाई प्रेत योनि में गया हुआ है, इसका उद्धार हो जाये।' भगवान् सूर्य ने बताया 'यदि तुम इसे श्रीमद्भागवत सुनाओ तो इसका कल्याण हो जायेगा।' धुंधुकारी जब भागवत सुनने आया तो बैठे कहाँ? क्योंकि प्रेत योनि में था। प्रेत अशरीरी होता है इसलिये किसी आश्रय से ही बैठ सकता है। वहाँ एक बाँस था, वह उस पर बैठ गया। उस बाँस में सात गाँठें थीं। पहले दिन श्रवण किया तो उस बाँस की एक गाँठ टूट गई! इस प्रकार सात दिनों में सातों गाँठें टूट गईं और वह मुक्त हो गया।

विचार करो कि इस कथा में क्या बताया गया है? यह तो दृष्टान्त है। पहले ही कह दिया कि पिता का नाम आत्मदेव था। पारदर्शी दृष्टान्त दे दिया जिससे झट पता लग जाये। आत्मा ही वस्तुतः वह ब्राह्मण है। आत्मा के प्रकाश को धुंधला कर देनेवाली धुंधुली आत्मा की माया शक्ति है। माया में दो शक्तियाँ हैं - आवरण और विक्षेप। रस्सी को धुंधला करके साँप दीखता है। सर्वथा रस्सी न दीखे तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साँप थोड़े ही दीखेगा। इसलिये उसका नाम अंधकारमयी न रखकर धुंधुली रखा है। रस्सी का कुछ हिस्सा दीखता भी रहता है और रस्सी स्पष्ट नहीं भी दीखती। अगर रस्सी सर्वथा न दीखे तो साँप नहीं दीखेगा। आवरण चीज़ को धुंधला कर देता है, स्पष्ट नहीं देखने देता। आवरण दबाता है या ढाँकता है तो प्रकाश चाहता है 'निकलूँ,' जबकि वह चाहता है कि 'प्रकाश को रोकूँ'। कलह तो होनी ही हुई। आजकल बादलों का मौसम है, कभी देख लेना, बादल सूर्य के साथ आँख मिचौनी का खेल करता है। बादल आ जाता है, सूर्य ढक जाता है। फिर बादल हटा तो सूर्य स्पष्ट हो जाता है। आत्मा और आवरण शक्ति का खेल भी ऐसा ही समझ लो। लेकिन केवल आवरण शक्ति से कुछ उत्पन्न नहीं होता, केवल धुंधला ही रहता है। आवरण शक्ति की पसन्द विक्षेप शक्ति है। उससे धुंधुकारी उत्पन्न हुआ। वह तो केवल धुंधुली थी, और यह धुंध करनेवाला है। राग-द्वेष-काम-क्रोध आदि इन सबके द्वारा यह निरंतर धुंध को पैदा करता रहता है, चीज़ों का स्पष्ट ज्ञान नहीं करने देता। जिस चीज़ को देखता है उसके ऊपर विक्षेप शक्ति के द्वारा राग-द्वेष का आवरण कर देता है। इसलिये मोटी भाषा में इसे मन समझ लो। विक्षेप शक्ति से पंचमहाभूत उत्पन्न होकर ही मन उत्पन्न होता है। इसलिये विक्षेपशक्ति से उत्पन्न हुआ मन निरंतर राग, द्वेष आदि धुंध को पैदा करनेवाला धुंधुकारी है।

उसी आत्मदेव के घर में गो भी है। पुराणों में देखा होगा कि जहाँ कहीं वेद जाता है तो गौ का रूप लेकर जाता है क्योंकि संस्कृत में गौ का अर्थ ज्ञान भी होता है। जैसे अक्षिगोचर, चक्षुगोचर आदि शब्दों में गो शब्द का अर्थ ज्ञान ही है। श्रुतिरूप गाय भी आत्मदेव के घर में है। इसको संन्यासी का दिया हुआ फल दिया जाता है अर्थात् त्यागपूर्वक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब वेद का अध्ययन किया जाता है तब उसमें से गोकर्ण उत्पन्न होता है। कर्ण कान को कहते हैं। जो ज्ञान कान में घुसते ही मनुष्य को मुक्त कर दे वह गोकर्ण हुआ। बाकी जितने वेद में कहे हुये ज्ञान हैं उनसे तो जब तुम कुछ करो तब फल पैदा करेंगे। ज्योतिष्टोम सुनने से पुण्य नहीं होगा, करना पड़ेगा। दान सुनने से पुण्य नहीं, करना पड़ेगा। सुनकर करोगे, तब फल पैदा होगा। परब्रह्म परमात्म तत्त्व की यह विशेषता है कि उनके विषय में सुनने से ही फल उत्पन्न हो जाता है। वहाँ कुछ करना नहीं है, वे तो स्वयं ही फलरूप हैं। इसलिये गोकर्ण उत्पन्न हुआ। सुनते ही जो ज्ञान उत्पन्न हो गया, वह साक्षिरूप ज्ञान है। साक्षी में क्रिया नहीं है। पारिभाषिक शब्दावली में समझना चाहो तो अंतःकरणावच्छिन्न चेतन धुंधुकारी और अंतःकरण-उपहित चेतन गोकर्ण हो गया। वह गोकर्ण समझाता रहता है लेकिन आत्मा दुःखी बना रहता है। आत्मा को अपने अंदर धुंधुकारी के साथ जो एकता का बोध है, यही उसके दुःख का कारण है। संन्यासी ने जो फल दिया था उससे धुंधुकारी उत्पन्न नहीं हुआ है, इसलिये वहाँ तो उसका अपना आत्मा ही बचा है, लेकिन उसे पुत्र मान रखा है। इसी प्रकार अंतःकरणावच्छिन्न चेतन प्रमाता या जीव साक्षी का पुत्र है या आत्मदेव का पुत्र है। लेकिन भ्रम से समझता रहता है कि यह मेरा ही रूप है। पुत्र को आदमी अपना स्वरूप मानता है, 'आत्मा वै पुत्रनामास।' इसीलिये दुःख होता रहता है। जीव के सुख-दुःख से साक्षी अपने को सुखी दुःखी समझता रहता है। यही तो बंधन है और यही आत्मदेव का अपने आपको ख़त्म करना है। अब वह समझ लेता है कि यह विक्षेपरूप जो जगत् है, इससे दूर चलें। तब पहले-पहल मनुष्य क्या करता है? विवेकजन्य वैराग्य के द्वारा जहाँ विक्षेपरूपी धुंधुकारी का खेल होता है, उससे अपने को दूर करता है। शम, दम,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपरति, तितिक्षा आदि सब जीव को विक्षेप के झगड़ों से दूर करने के लिये हैं। चाहे योगाभ्यास, ध्यान, जप आदि किसी उपाय से करो, है यह जीव और विक्षेप का व्यवहार ही। इनसे दूर जाना तीर्थयात्रा करना है। जहाँ वह इनसे दूर हुआ वहाँ विक्षेप शक्ति काम नहीं कर सकती, विक्षेप कम होता चला जाता है। विक्षेप कम होते-होते जब बिलकुल कम हो जाता है तब धुंधुकारीरूप जीव भी मर जाता है पर मरकर प्रेत बनता है। योगाभ्यास आदि करके तुम जीव को मार तो सकते हो; निर्विकल्प समाधि में जीव कहाँ है? 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्;' लेकिन है प्रेत। इसलिये जहाँ असम्प्रज्ञात समाधि से उठे कि यह फिर खड़ा हो जाता है। अब जीव में वह ताकत तो नहीं है क्योंकि जिसने निर्विकल्प समाधि का अनुभव कर लिया उसको अब वह जीव पहले की तरह पीडित नहीं कर सकता, इसलिये मरा हुआ ही है। जब चाहे दबा दो, लेकिन है तो बेचारा प्रेतयोनि में। तब सूर्य से प्रार्थना करते हैं।

सूर्य ब्रह्म की जगह है। सूर्यरूपी ब्रह्म उसको वास्तविकता बताता है कि इसकी प्रेत योनि से मुक्ति तब होगी जब यह परमेश्वर के विषय में स्मरण करे। जब तक यह ज्ञान नहीं होगा कि 'मैं परब्रह्म परमात्मरूप हूँ' तब तक काम नहीं होगा। अपने स्वरूप के विषय में सुनना पड़ेगा। यही भगवत्-सम्बन्धी भागवत का श्रवण है। केवल ग्रन्थ को ही भागवत नहीं समझना। जैसे उपनिषद् कह देते हैं। लेकिन यदि उपनिषद् पढ़ ली, उस विद्या को नहीं समझा, तो उपनिषद् थोड़े ही समझी है। इसी प्रकार यदि परब्रह्म परमात्मा को नहीं समझा तो भागवत थोड़े ही सुनी है। बिना भगवत्-सम्बन्ध या परमात्मा के सम्बन्ध के थोड़े ही भागवत है। परमात्मा का और मेरा असली स्वरूप क्या है - इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात को समझना ही भागवत सुनना है। उसे सात भूमिकाओं में से समझना पड़ता है। वह प्रेत जब शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा आदि ज्ञान की सातों भूमिकाओं को पार करता है तब मुक्त होता है। भागवत का श्रवण सात दिन करने का मतलब लोग समझते हैं कि एक हफ्ता हो गया तो काम हो गया। सात दिन का मतलब है : दिन सात ही होते हैं। अतः यावज्जीवन परमेश्वर को ही स्मरण करना है। जब इस प्रकार भूमिकाओं के अंत में तुर्यगा में पहुँचता है तब यह मुक्त हो जाता है। मुक्त करनेवाला गोकर्ण अर्थात् वेद का ही ज्ञान है। जब तक विषयाभिमुख रहेगा तब तक धिक्कार ही बना रहेगा। लेकिन अंत में जब विषयों को छोड़कर गोकर्ण की तरफ जायेगा तब इसका ज्ञान दृढ हो जायेगा, अन्यथा नहीं। श्रुति जब कहती है कि ब्रह्मपुर में जाओ, तब जीव अंदर ढूँढता है। श्रुति में कहे अनुसार ढूँढता है तो पाकर मुक्त हो जाता है।

३१.३.७६ को संवत्सर सुनाया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम प्रवचन

१.४.७६

भगवती श्रुति परमात्म-तत्त्व को समझाने के बाद इस देहरूपी ब्रह्मपुर के अंदर उसकी उपलब्धि, उसकी प्राप्ति के उपाय का निर्देश करती है। यह ब्रह्म का पुर कैसा है, इस पर विचार किया। इस ब्रह्मपुर के मध्य में 'दहरं पुण्डरीकं वेश्म' ब्रह्म के रहने के स्थल को दो नामों से श्रुति कहती है। यह शरीर ब्रह्मपुर है। इस ब्रह्मपुर के अंदर परमात्मा की उपलब्धि का जो साक्षात् स्थल है उसे वेश्म कहा। जैसे दिल्ली हुई राजधानी और राष्ट्रपति भवन हुआ राजा के रहने का वेश्म या मकान, ऐसे ही यह साधारण जो अपना शरीर, यह हुआ ब्रह्मपुर और यहाँ जो कह रहे हैं 'दहरं पुण्डरीकं वेश्म', यह उसकी उपलब्धि या रहने का मकान है। इस मकान के दो विशेषण दिये - दहर और पुण्डरीक। दहर अत्यल्प छोटी-सी जगह को कहते हैं। परमेश्वर का जितना खेल होता है वह संसारी लोगों से विपरीत होता है! संसार के अंदर जो जितना बड़ा व्यक्ति होता है वह उतनी बड़ी और विशाल कोठी, अट्टशूल, ऊँचे भवन अपने लिये बनाता है। जिसका जितना बड़ा मकान हो उतना ही वह बड़ा व्यक्ति माना जाता है। हमारे राष्ट्रपति भवन में एक बार इंग्लैण्ड का नेता आकर ठहरा था। उसका कहना था 'यह इतना बड़ा मकान है कि मैं रास्ता ही भूल जाता हूँ!' संसार में जो जितने बड़े मकान में रहे उसे उतना बड़ा आदमी समझा जाता है। लेकिन अनंतकोटि ब्रह्माण्ड के नायक परब्रह्म परमात्मा ने अपने लिये जो मकान बनाया उसको स्वयं ही कह रहे हैं 'दहर' अर्थात् अत्यल्प, वह मकान अत्यल्प है। जैसे साधारणतः व्यक्ति जितना बड़ा होता है उतना लोगों से दूर रहता है, जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे लोगों से दूर-दूर रहने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगता है। संसद सदस्य से मिलने की अपेक्षा जो राज्यमंत्री होता है उससे मिलना कठिन, राज्य मंत्री की अपेक्षा स्वतंत्र प्रभारवाले मंत्री से मिलना कठिन, उस की अपेक्षा मंत्रिमण्डल में कैबिनेट रैंक के मंत्री से मिलना कठिन और उसके आगे प्रधानमंत्री के तो दर्शन ही दुर्लभ हैं। जो जितना बड़ा वह उतनी ही दूर रहता है। सब अपने को बचा कर रखते हैं, भय खाते हैं, भयभीत रहते हैं कि न जाने कोई क्या कर लेगा! परब्रह्म परमात्मा अभय पदवाला होकर, निर्भीक होकर प्रत्येक प्राणी के बिलकुल नज़दीक बैठा हुआ है। यह उसकी निर्भयता है। जो व्यक्ति खड़ा होकर कह रहा है कि परमात्मा है ही नहीं, उसके भी वह वैसा ही अति निकट है जैसा भक्त के। मान लो कोई व्यक्ति सरकार का अत्यंत विरोध कर रहा हो पर उसके पास पैसा न हो। क्या सरकार कहेगी कि 'यह धन हमारी तरफ से लो और हमारे खिलाफ प्रचार करो, हमारे खिलाफ लिखो; और पैसे की ज़रूरत हो तो हमसे लो, हमें गाली देने की तुम्हें पूरी स्वतंत्रता है!' यह वही कर सकेगा जो निर्भय होगा। भयवाला यह काम नहीं कर सकता। ऐसे ही, जो व्यक्ति कह रहा है कि परमेश्वर है ही नहीं, उसको भी बोलने की शक्ति कौन दे रहा है? परमेश्वर ही दे रहा है। जो मर्ज़ी आये उसे गाली दे सकते हो क्योंकि वह निर्भय है, अभय है। वह परमेश्वर अपने रहने का स्थान भी तुम्हारे बिलकुल समीप ही ढूँढता है।

वह निर्भय क्यों है? क्यों उसमें भय नहीं है? भय का मूल हिंसा होता है और निर्भयता का मूल प्रेम होता है। जहाँ प्रेम होता है वहाँ निर्भयता आती है और जहाँ हिंसा होती है, द्वैत होता है, भेद होता है, वहाँ भय आता है। परब्रह्म परमात्मा अखिल कोटि ब्रह्माण्ड का नायक होकर हमारे सामने क्यों ऐसा आचरण करता है? इसके द्वारा वह आदर्श

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बताता है कि जिस समुदाय के राजा बनो वहाँ कैसे आचरण से श्रेष्ठ राजा माने जाओगे और कैसे आचरण से निकृष्ट राजा माने जाओगे। यही बात परमेश्वर अपने आचरण से बताता है कि जैसे मैंने प्रत्येक प्राणी के अत्यंत समीप रहने का निश्चय किया, वैसे ही अपने रहने का स्थान भी दहर अर्थात् अत्यन्त छोटा बनाया। अन्यत्र भी वेद कहता है 'दह्रं विपापं वरवेश्मभूतम्'। अत्यल्प स्थान रहने के लिये बनाने का कारण क्या है? कभी विचार करके देखो कि आदमी जब घर बनाता है तो अपने लड़के, अपनी बहुओं और अपनी लड़कियों के सुख के लिये बनाता है या खुद ही सारा घर घेरकर बैठता है? सोचता है कि ये सब सुखी हों। समय पर जगह की कमी पड़ती है तो सोचता है 'मैं बैठक में सो जाऊँगा, बच्चों को कैसे इधर-उधर करूँ।' जिसमें यह भावना है कि मुझे ही सुखी रहना है, लड़के चाहे बाहर जाकर रहें, तो मानना पड़ेगा कि इसे पिता के धर्म का पता नहीं। कोई पूछ भी लेता है कि 'ये सौत के बच्चे तो नहीं हैं, इतना भेदभाव कैसे है?' इसी प्रकार जीव के रहने के लिये, जीव के अधिष्ठाता देवताओं के रहने के लिये तो बड़े-बड़े हाथ पैर इत्यादि स्थल उन्हें दिये और स्वयं अपने रहने के लिये अत्यल्प दहर रखा, सोचा कि अपने लिये तो छोटी-सी जगह ही पर्याप्त है क्योंकि जीवरूपी अपने पुत्र के अंदर ही तो वह सारे आनंद को ले रहा है। यही उसकी दहरता का कारण है। दूसरा कारण तो स्पष्ट है कि अत्यंत सूक्ष्म, अणुतर होने के कारण उसकी उपलब्धि का स्थान अत्यल्प प्रतीत होता है।

वह कण-कण में व्याप्त है लेकिन उस छोटे-से स्थल में जीव को उसकी उपलब्धि होती है। जैसे मान लो, उस तरफ खाली जगह हो और इस तरफ भी खाली जगह हो, बीच में एक बहुत बड़ी दीवाल बनाई जाये जिसमें एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोटा-सा छेद कर दिया जाये; तो दीवाल के इधर अनंत आकाश और उधर भी अनंत आकाश है, लेकिन उधर के अनंत आकाश का पता तब लगे जब अपनी नज़र को उस छोटे से छेद पर लगा लो। तभी दीवाल के उस पार का पता लगेगा। यदि कहो कि हमने बड़ी दीवाल देखी ही नहीं है तो आजकल एक 'चोर आँख' निकल गई है। जो लोग बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं, वे अपने दरवाज़ों में एक छेद करके वह 'आँख' लगा देते हैं। उसमें से देखो तो बाहर कौन आया, क्या आया, सारा दीखता है। दरवाज़े के इधर भी खाली जगह और उधर भी खाली जगह है लेकिन दीखा तब जब उसमें आँख लगाई। विचार से वह छेद भी तो आकाश ही है! इधर के आकाश, उधर के आकाश और छेदवाले आकाश में भी कोई फ़र्क नहीं है। छेदवाला आकाश अल्प उपाधिवाला आकाश है, दहर है। लेकिन उस छोटे से आकाश में दृष्टि करने से अंदरवाला अनंत आकाश नज़र आ जाता है।

ठीक इसी प्रकार से हम अंतःकरण के द्वारा बाहर की सारी चीज़ों को देखने के तो आदि हैं। इसलिये हमें लगता है कि यह बाह्य जगत् न जाने कितना बड़ा है। इसका अंत ही नहीं आ रहा है। प्रकाश एक सैकेण्ड में एक लाख छियासी हज़ार मील की गति से चलता है। ऐसे-ऐसे स्थल हैं जहाँ से इस गति से आनेवाले प्रकाश को यहाँ पहुँचने में नौ करोड़ साल लग जाते हैं। लेकिन इतने पर भी यह नहीं कह सकते कि उसके आगे कुछ नहीं है। वहाँ तक का तो पता लगा कि वहाँ तक है, लेकिन उसके और आगे कितना है, इसका पता नहीं है। हम लोगों की कल्पना के परे की बात है। हम लोग ज़्यादा से ज़्यादा कितना सोचते हैं? दिल्ली से कलकत्ते तक, जो नौ सौ मील है, दो घण्टे में पहुँच जाते हैं तो इठलाते हैं कि देखो हमने कितनी उन्नति कर ली, उसी में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खुश हो जाते हैं और भगवान् सूर्य इतनी गति से न जाने कितना प्रकाश भेजते हैं। इसलिये हमारी दृष्टि से कल्पना करो तो कल्पना भी नहीं कर सकते। यह जो इतना निरंतर परिवर्द्धमान जगत् है जिसका अंत नहीं पता लगता, उसको देखकर लगता है कि अंदर क्या होगा?

इसीलिये तो मनुष्य परमात्मतत्त्व की तरफ जाता नहीं है। बार-बार कहता है कि 'यह इतनी बड़ी दुनिया है, इसको तो सम्भालना ही हुआ। इसको भी तो देखो, केवल अपना कल्याण करके क्या होगा?' वह समझता है कि यह खाली अपना छोटा-सा ही छेद है। जब इसमें आँख लगाओगे तब पता लगेगा। इसी में आगे चलकर मंत्र आयेगा 'यावान् वा अयम् आकाशः तावान् एषोऽन्तर्हृदय आकाशः' जितना बाहर अनंत दीख रहा है, जब अंदर नज़र टिकाओगे तब वहाँ भी उतना ही अनंत दीखेगा। अंदरवाला यह आकाश, अंदरवाला यह भूमा, यह आनंद कम नहीं है। जब वहाँ नज़र टिकाने को कहते हैं तब तो लगता है कि इतने से छेद पर क्या ध्यान देना है! लेकिन उसके अंदर क्या है? यह पता नहीं लगता, इसलिये शास्त्रकारों ने बताया है -

'स्वाभिव्यंजकसंकोचात् संकोचप्रतिभात्मनः।
न स्वरूपेण,चिद्रूपं सर्वव्यापि सदा खलु।।'

वस्तुतः यह दहर छोटा नहीं है लेकिन उसका अभिव्यंजक अर्थात् प्रकट करनेवाला, देखनेवाला स्थल छोटा है, संकुचित है। आत्मा के अंदर जो संकोच का प्रतिभान, थोड़ापना या अल्पपने का भान होता है वह इसलिये नहीं होता कि आत्मा अल्प है बल्कि इसलिये होता है कि उसकी उपलब्धि का स्थान अल्प है। अपने स्वरूप से उसको देखोगे तो छोटा नहीं दीखेगा। छेदवाली बात पर ध्यान देना। छेद पर नज़र रखने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से छोटा नहीं दीखेगा। जब तक छेद पर नज़र को नहीं रखा तब तक छोटा दीखता है। हमेशा ही निश्चित रूप से यह चिद्रूप है, सर्वव्यापी है। दहर के द्वारा उसकी उपलब्धि का स्थान बताया। वहाँ इसको देखने से उसकी अनंतता का भान होता है। अन्यथा अनंतता को जानते तो हो, लेकिन भान नहीं होता।

जानने और भान होने में थोड़ा-सा फ़र्क है, वह याद रखना। मोटी दृष्टि में बता देते हैं। जिस समय गणतंत्र दिवस होता है तो उसमें आठ घोड़ोंवाली बग्घी पर बैठकर राष्ट्रपति बैठकर निकलते हैं। सामने बैण्ड बज रहा है और पीछे तरह-तरह के चित्र विचित्र ट्रक सजे हुये, एक-एक राज्य की एक-एक झाँकी आ रही है। विदेशी राजदूत भी बैठे हुये देख रहे हैं। ऊपर से हवाई जहाज सलामी दे रहे हैं और सामने की तरफ से फौज़वाले सलामी दे रहे हैं। बड़े ठाठ-बाट से काम चल रहा है। उन सबको देखकर तुम जान तो जाते हो कि राष्ट्रपति का क्या वैभव और क्या ऐश्वर्य है। जानते हो लेकिन भान नहीं है। दीख तो रहा है, जान रहे हो, लेकिन भान नहीं है कि उस बग्घी में बैठकर सलामी लेनेवाले के अंदर क्या हो रहा है, उसका भान क्या है। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक उस पर आरूढ होकर, उसमें बैठकर स्वयं चलो नहीं! ठीक इसी प्रकार से, चेतन परमात्मा की, महेश्वर की महिमा को बताते हैं तो ज्ञान हो जाता है, जान तो लेते हो कि यह कैसा है, लेकिन इससे भान थोड़े ही हो जाता है! भान तो वही होता रहता है कि मैं साढ़े तीन हाथ के खाक के पुतले मैं बैठा हुआ हूँ। चेतनरूप को जान तो लेते हो, समझ तो लेते हो कि मनरूप उपाधि के द्वारा, युक्ति के द्वारा, विचार के द्वारा, गुरु के उपदेश के द्वारा जान तो लेते हो कि एक अखण्ड चिन्मात्र ही सर्वत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलास कर रहा है। लेकिन यह सब जान लेने पर भी क्या भान हो रहा है कि प्रत्येक प्राणी के हृदय में मैं खेल रहा हूँ? भान कहाँ होता है! प्रायः मनुष्य यह भूल कर लेता है कि ज्ञान और भान को एक समझ लेता है। गीता में भगवान् ने इसीलिये दोनों को अलग-अलग बताया 'ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।' वहाँ भान को ही विज्ञानशब्द से कहा है अर्थात् विशेषेण ज्ञान ही विज्ञान है। इसी प्रकार गीता के अंत में भी कहा -

'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम्।।'

तत्त्वतः ज्ञान एक बताया और केवल ज्ञान, बिना तात्त्विकता के ज्ञान या बिना अनुभव के ज्ञान को अलग बताया। परमात्मा की महिमा का भान तब हो जब आँख वहाँ टिक जाये, तब तो उस आगे आनेवाले आकाश का भान हो। यह जो भान होना है, यह जब होता है तब क्या हो जाता है? तब अपने अंदर जो दहरता की, अल्पता की प्रतीति है, यह निकल जाती है। होगा यह उस दहर के ऊपर वृत्ति एकाग्र करके ही। वृत्ति को हृदय पुण्डरीक के ऊपर, उस छोटे से स्थल में एकाग्र करना पड़ेगा। लेकिन जब यह हो जायेगा तब अल्पता का भान नहीं रहेगा। तब तो सर्वव्यापकता का भान हो जायेगा। लेकिन हम हैं कि उसको अल्प समझकर अपनी बुद्धि को उधर नहीं लगाते। जो बुद्धि इस प्रकार का भान करके हमको अनंत आनंद दे सकती है उसको हमने अल्प आनंद में लगा रखा है।

दक्षिण भारत में कांचीपुर नाम का एक स्थल है। वहाँ भगवान् शंकर की पार्थिव मूर्ति है। भगवान् शंकर के पंचमहाभूतों को बतानेवाले पाँच लिंग हैं। जम्बुकेश्वर में जल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिंग, अरुणाचलेश्वर में अग्नि लिंग तेजोलिंग, श्रीकालहस्तीश्वर में वायुलिंग, चिदम्बरम् में आकाश लिंग और कांचीपुरम् में भगवान् शंकर का भू लिंग है। वहाँ प्राचीन काल में राजा बाहुबल राज्य करता था। उसका एक द्वारपाल था। उसके पास राजा का दिया हुआ धन तो बहुत था लेकिन उसको धन का लोभ बहुत था। धन होने से धन का लोभ नहीं मिटता क्योंकि लोभ और चीज़ है, धन और चीज़ है। कहीं-कहीं तो उल्टा देखने में आता है 'लाभात् लोभः प्रवर्द्धते' लाभ से लोभ और अधिक बढ़ जाता है! राजा का द्वारपाल होने से उसके पास सारी चीज़ें थी लेकिन फिर भी उसके धन के लोभ का अंत नहीं। इसलिये उसका नाम जो भी रहा हो, लोगों ने उसका नाम ही 'अर्थलोभ' रख दिया था क्योंकि वह हमेशा ही धन का लोभी था। द्वारपाल का काम करते हुये धन और अधिक प्राप्त हो जाये, इसके लिये उसने एक दुकान खोल ली। कांचीपुर के अंदर कौशेय अर्थात् रेशम के वस्त्रों का बहुत बड़ा व्यापार था, अभी भी है। कांजीवरम् की साड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। कांचीपुरम् का ही अपभ्रंश कांजीवरम् हो गया। उसने वहाँ बढ़िया रेशम के कपड़ों का काम शुरू कर दिया। चूँकि उसको तो द्वारपाल का काम करना पड़ता था, दुकान पर सब समय नज़र नहीं रख सकता था इसलिये मलाई मुनीम उड़ा जायें! जहाँ मालिक नहीं रहता वहाँ मुनीम मलाई उड़ाते हैं और छाछ मालिक को दे देते हैं। यह हमेशा से होता रहा है। इसी प्रकार बेचारा मालिक जीव छाछ खाकर ही गुज़ारा निकालता है और मन, इन्द्रियाँ इत्यादि मलाई उड़ाते हैं। जीव का आनंद परमेश्वर का ध्यान है। वे इसको करने नहीं देते। इसलिये वह आनंद इसको नहीं मिलता। जीव को आनंद तब मिले जब इसको शान्ति हो। 'अशान्तस्य कुतः सुखं'; इसलिये जीव का सुख तो शान्ति है। लेकिन ये इन्द्रियाँ, मन और शरीर इसको एक मिनट शान्ति से बैठने देना नहीं चाहते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केवल जब जबरदस्ती इसके पाप-पुण्य कर्म समाप्त हो जाते हैं और यह गहरी नींद अर्थात् सुषुप्ति में चला जाता है, बस उतनी ही छाछ इसको पिलाते हैं, क्योंकि मालिक के नाम से कमाना-खाना पड़ता है, जिसको तुम लोग 'गुडविल' कहते हो। यदि ये बिलकुल छाछ भी न दें तो इनका भी काम नहीं चलेगा। इसलिये जीव को अपना काम चलाने के लिये उतनी सुषुप्तिरूप छाछ दे देते हैं। छाछ उसको इसलिये कहते हैं कि वहाँ परम आनंद का अनुभव होते हुये भी जो परम आनंद की चिकनाहट का मज़ा ले सकता था वह वहाँ कहाँ ले पाता है? 'सुखमहमस्वाप्सम्' पर साथ ही 'नाहं किंचिदवेदिषम्' का अनुभव है। सुख से सोया लेकिन सुख को जाना नहीं। जाग्रत्काल में यदि सुषुप्ति का आनंद लेता तब तो कम से कम उसे लस्सी पीने को मिलती। उसे पता लगता कि निर्विषय आनंद कैसा होता है। सुषुप्ति में आनंद तो है, लेकिन चिकनाहट सब हटी हुई है। जाग्रत् स्वप्न में उपाधियाँ मौज मारती हैं। कभी शरीर को, कभी इन्द्रियों को, कभी मन को सुख होता है।

द्वारपाल बेचारा दुःखी होकर सोचने लगा कि क्या उपाय करें? उसकी पत्नी मानपरा बड़ी सुन्दर और बड़ी विदुषी थी, बहुत समझदार थी। इसको किसी मित्र ने सलाह दी कि तुम अपनी पत्नी को दुकान पर बिठा दो तो यह दुकान की देखरेख कर लेगी और मुनीम लोग चोरी नहीं कर सकेंगे। यह बात इसको जँच गई। इसने पत्नी से कहा कि तुमको ही मैं दुकान का मुख्य प्रबन्धक बना देता हूँ। मानपरा को यह बात अच्छी तो नहीं लगी, उलटा उसे दुःख हुआ कि इसके धन के लोभ का कोई अंत नहीं कि अब घर की औरत को काम पर लगाये और उसका कमाया हुआ खाये! फिर वह अपने मुँह से अपने को पति कैसे कहेगा? पति का अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है 'पालयति इति पतिः' जो पत्नी का पालन करे। जो अपना पालन उसके कमाये हुये धन से करे, उसकी पति संज्ञा थोड़े ही रह गई! अतः उसे बुरा तो लगा और एक-दो बार उसने कहा भी कि ऐसा न करो। वह कहने लगा 'इसमें क्या फर्क पड़ता है। काम तो वही लोग कर लेंगे।' इत्यादि प्रकार से उसे समझाने लगा। उसने सोचा कि पति की आज्ञा मान लेनी चाहिये। वह दुकान में बैठकर काम करने लगी। उसका बोलने का तरीका भी मधुर, रूप भी सुन्दर, व्यवहार भी कोमल। जब कोई माल बेचने आये तो मीठी-मीठी बातों से उसे फुसलाकर उससे सस्ते में खरीद ले और जब बेचने का समय आये तो भी अपनी मीठी बातों से महँगा बेच दे। आजकल इस सूत्र को लोगों ने समझ रखा है। हम एक बार कनाट प्लेस से होकर जा रहे थे तो देखा कि वहाँ औरतों को माल बेचने के लिये खड़ा कर रखा है। जब उसे फ़ायदा ज़्यादा होने लगा तो अर्थलोभ बढ़ा, खुश हुआ कि बड़ी अच्छी राय मिली। बहुत फ़ायदा होता रहा।

एक बार वहाँ चीन देश का एक व्यापारी आया। उसका नाम सुखधन था। वह भी रेशम का बहुत माल लेकर आया था। जैसे अपने यहाँ रेशम का बहुत बड़ा व्यापार है, ऐसे ही चीन्न देश में भी रेशम का व्यापार बहुत बड़ा है। वह वहाँ से बहुत बढ़िया और बहुत सस्ता माल लेकर आया था। उसने आकर जब वहाँ माल बेचना प्रारंभ किया तो अर्थलोभ की दुकान ज़रा ढ़ीली पड़ने लगी। इसने बहुत कुछ प्रयत्न किया लेकिन उसके साथ इसका ढंग नहीं बैठा। अंत में इसने विचार किया कि 'यह तो विदेशी व्यापारी है, इसको कुछ ज़्यादा फ़ायदा देकर इसका सारा माल खरीद लें फिर धीरे-धीरे बेच देंगे। प्रतियोगिता में तो मैं इससे नहीं जीत सकूँगा लेकिन इसका सारा माल खरीद लें तो चल जायेगा। कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साल-दो साल में यह फिर आयेगा भी तो तब तक हमने इसमें से कमा लिया होगा।' यह विचार करके उसने प्रयत्न किया लेकिन सुखधन कहे 'मैं थोक माल बेचनेवाला नहीं।' अंत में इसने अपनी पत्नी को भेजा कि किसी तरह से सौदा पटाकर लाये। वह गई और काफी भाव बढ़ाकर माल खरीदने को कहा लेकिन वह नहीं माना। उसने कहा 'मैं यहाँ दुकान जमाने आया हूँ, खाली फ़ायदा लेकर जाने को नहीं आया हूँ।' अंततोगत्वा मानपुरा के व्यवहार से बड़ा प्रसन्न होकर वह कहने लगा 'मैं बेचूँगा तो नहीं, लेकिन तू इतना कहती है तो आधा माल तुझे ऐसे ही दे दूँगा लेकिन एक रात्रि तू मेरे साथ रह जा।' वह मना करके आ गई कि 'ऐसी बात मुँह से मत निकाल।'

वह घर आ गई और अर्थलोभ से कहा कि 'मैंने तो पूरी कोशिश की, लेकिन वह नहीं माना।' यह चिंता में पड़ गया कि अपना बढ़िया काम चल रहा था, अब क्या होगा। रात्रि में जब एकांत में वह भोजन कर रहा था तो मानपरा उससे कहने लगी 'वह व्यापारी बड़ा भ्रष्ट है क्योंकि उसने अंत में मुझ से ऐसी बात कही।' अर्थलोभ का कौर वहाँ का वहाँ रह गया, कहने लगा - 'फिर तूने क्या कहा'? उसने कहा 'मैंने उसे डाँट दिया।' वह कहने लगा - 'अरे मूर्खा, आधा माल मुफ़्त छोड़ आई! इसमें क्या है?' उस बेचारी को बड़ा दुःख हुआ कि यह कैसा आदमी है। पहले तो उसने सोचा कि ऐसे ही मेरे से छेड़खानी करता होगा। अर्थलोभ हाथ-पैर धोकर उठा और कहा 'तू अभी बढ़िया कपड़े पहन, मैं तेरे को वहाँ पहुँचा आऊँ।' उसके मन में और दुःख हुआ। उसने सोचा 'मैंने जन्मभर इसकी सब तरह से सेवा की, सब कुछ इसके लिये किया और यह ऐसा नीच व्यक्ति है कि धन के लिये मुझे ही बेचने को तैयार हो रहा है।' फिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी चलने को तैयार हो गई। वह उसे वहाँ ले गया और सौदा पक्का हो गया। रात्रिभर उसने उसके साथ व्यतीत की। वह भी बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि एक रात्रि तू और आ जाये तो बाकी माल भी दे दूँगा। वह हँसकर कहने लगी 'अगर मैं तुम्हारे साथ ही चल दूँ तो?' उसने कहा - 'फिर तो बहुत अच्छा है।' मानपरा ने निश्चय किया कि उस नीच व्यक्ति की अपेक्षा तो इस प्रकार के गुणग्राही के साथ रहना ही अच्छा है।

प्रातःकाल जब वह घर नहीं आई तो अर्थलोभ वहाँ पहुँचा और कहने लगा 'मेरा माल दे दो।' उसने कहा 'यह आधा माल रखा है, ले जाओ।' वह आदमियों को साथ लेकर आया था, उनसे माल उठाने को कह दिया। पत्नी से कहा ' तू भी चल, रात खत्म हो गई।' उसकी पत्नी ने कहा 'अब तो हमेशा के लिये रात हो गई। तू माल ले जा, मुझे इसमें कोई पाप नहीं क्योंकि तूने मुझे बेच दिया तो अब तेरा-मेरा रिश्ता ही क्या रहा!' अब वह बेचारा घबड़ाया और बड़ा हल्ला-गुल्ला मचाया। दो चार लोग इकट्ठे हुये लेकिन जो सुने वह उसी को कहे 'यह तुम्हारा कहना बिलकुल नाजायज़ है। यह बिलकुल ठीक कह रही है।' अंततोगत्वा उसने राजा के पास जाकर शिकायत की। राजा ने सबको बुलाया। जब राजा के सामने सारी बात हुई तो पहले तो राजा ने उन आदमियों से पूछा जिनको साथ लेकर वह माल उठाने गया था - 'क्या यह औरत वहाँ थी?' उन्होंने कहा - 'हाँ, वहाँ थी।' फिर पूछा कि तुमने माल के बदले कुछ चुकाया? उन्होंने कहा - 'नहीं कुछ नहीं।' अब राजा को निश्चय हो गया कि यह द्वारपाल झूठ बोलता है। राजा ने उसे धिक्कार कर कहा 'अब तेरा इस पर कोई अधिकार नहीं है।' चीन देश का व्यापारी मानपरा को लेकर चला गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इधर ऐसी नीचता करने के कारण राजा ने भी अर्थलोभ की सारी सम्पत्ति ले ली और ऐसा नीच व्यक्ति देश में रहने लायक नहीं, यह मानकर उसे देश से निकाल दिया।

विचार करो, जैसे वहाँ राजा बाहुबल था वैसे ही यहाँ परमेश्वर ही इस संसार का राजा है। इस संसार राज्य के अंदर जीव नाम के द्वारपाल को परमात्मा ने बैठा दिया कि शरीर और शरीर-सम्बन्धियों की तुम रक्षा करना। इतना ही इसका काम था। यह इस शरीर का मालिक नहीं था, केवल द्वारपाल था, इसकी रक्षा करना ही इसका काम था। लेकिन इस द्वारपालता के अंदर इसने अपनी एक पुण्य-पाप की दुकान खोल ली और अपना अहम् लेकर बैठ गया। जो शरीर धन कमाता है, उस शरीर को कौन शक्ति देता है? परमात्मा। कमाये हुये धन को हाथ से उठाकर दान देता है तो परमात्मा की शक्ति से, दान देने की बात बुद्धि में परमात्मा से आई। लेकिन इसने उसमें खट अपना हिस्सा मार दिया कि 'मैंने पुण्य किया।' अरे! तू तो द्वारपाल था, तू कहाँ से पुण्य करनेवाला हो गया? जितने कर्म होते हैं उनके पीछे परमात्म-शक्ति काम करती है और यह द्वारपाल उसमें अपना अलग पुण्य-पाप का सौदा करता रहता है। जो अलग दुकान खोल ली उस में इसकी अपनी सत्ता हो गई। इसीलिये दो प्रकार की सृष्टि पंचदशी में बताई -

'ईक्षणादि-प्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता।
जाग्रदादि विमोक्षान्तः संसारो जीवकल्पितः।।'

ईक्षण से लेकर प्रवेश पर्यन्त ईश्वर की सृष्टि और यहाँ आकर जाग्रत् से लेकर बंध-मोक्ष पर्यन्त जीव की अपनी सृष्टि है। यही अलग दुकान खोलना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीव की पत्नी, बुद्धि, मानपरा है। वह अपने मान-सम्मान को समझती है। इसलिये बुद्धि मनुष्य को बार-बार परमात्मा की तरफ प्रवृत्त करती है, उधर ले जाती है, लेकिन यह सोचता है कि यदि बुद्धि मन इन्द्रियों के ऊपर शासन करेगी तो मेरा और ज़्यादा फ़ायदा होगा, बढ़िया फल होगा। बुद्धि को लगाना तो चाहिये था परमात्मा के निश्चय में, आत्मा-अनात्मा के विवेक में, लेकिन इसने लगाना शुरू किया संसार के पदार्थों का भोग प्राप्त करने में। इसी के लिये बुद्धि को लगाते रहते हैं। उसके लिये आजकल बहुत से स्कूल भी खुल गये हैं। एक स्कूल खुला कि इस बुद्धि को यह अकल आ जाये कि किस प्रकार धन की चोरी की जाये। 'चार्टर्ड अकाउण्टेण्ट' बुद्धि का ऐसा प्रयोग करता है कि कर की चोरी कैसे की जाये। दूसरा स्कूल खोल दिया 'लॉ कॉलेज'। वहाँ बुद्धि इस प्रकार सिखाई जाती है कि कैसे कानून के खिलाफ काम करो, पाप करो और बच जाओ। तरह-तरह की शिक्षायें मिलती हैं। ऐसे ही और कितनी हैं, कोई ठिकाना नहीं। लोग कहते हैं कि वहाँ बुद्धि को विकसित किया जाता है! अपने यहाँ संस्कृत महाविद्यालय में वेदादि शास्त्र पढ़ाये जाते हैं। दूसरी तरफ, ईसाइयों के स्कूल हैं जहाँ बुद्धि को इस प्रकार के व्यापारों की बातें बताई जाती हैं। कितने लोग हृदय से इच्छा करते हैं कि पुत्र संस्कृत-विद्या, वेद-विद्या पढ़ें? किसी से पूछेंगे नहीं, सब अपने-अपने हृदय में जानते हो! सबके अंदर यही अभिलाषा है कि बुद्धि वही काम करे जिसमें सांसारिक उन्नति हो। यही जीवरूपी अर्थलोभ का बुद्धि को दुकान पर बैठाना है। उस बुद्धि के निश्चय किये हुये फलों को प्राप्त करके खुश होता है कि बढ़िया व्यापार चल रहा है। यह नहीं सोचता कि बुद्धि क्या इस काम के लिये थी?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोभ का अंत नहीं होता। इसलिये इसको वहाँ से भी उतारकर काम की तरफ ले जाता है कि 'विषयों का भोग मैं कैसे करूँ, उधर मैं अपनी बुद्धि को कैसे लगाऊँ।' इन्द्रियों से भी नीचे उतरा। कामना इसलिये तरह-तरह के विषयों का अभिवर्द्धन करती है। चारों तरफ लोग कहते हैं कि विज्ञान ने कितनी सुख-सुविधायें प्रदान की हैं, भोग की चीज़ें बना दी हैं। एयरकंडिश्नर, रैफ्रिज़्रेटर, तरह-तरह के कपड़े इत्यादि बना दिये। वे समझते हैं कि बुद्धि का बढ़िया प्रयोग किया, विषयोंमें बुद्धि को लगा दिया। लगाना तो विषयत्याग के द्वारा, आत्मा और अनात्मा के विवेक के द्वारा परमात्मा में था, लेकिन अर्थकामपरायण कर दिया।

किसी काल में वहाँ एक दूसरा व्यापारी आता है। उसके पास परम-आनंदरूप परमात्मा का माल है। वह कहता है 'मेरा माल बड़ा सस्ता है। तुम जो इतनी कठिनाई करके अर्थ कमाते हो और फिर उससे कामना के पदार्थ को प्राप्त करते हो, तब उससे मन का भोग होता है और उससे जो सुख होता है वह क्षणमात्र होता है। अगर उस विषय के त्याग की बात समझ लो तो इतना सब झंझट किये बिना वह सुख तुम्हें पहले ही मिल जाये।' उसका माल इतना सस्ता है क्योंकि यह परम आनंद अत्यंत समीप तुम्हारे अंदर छिपा हुआ है। केवल मन को शान्त करो और तुरंत मिल जाये। जीवरूप व्यापारी कभी सोचता है 'बुद्धि को इसमें लगाकर देखें तो सही। यह जो परमानंदरूप परमेश्वर है, इसमें लगाकर देखें तो सही'। एक बार जहाँ बुद्धि उसके पास गई, जहाँ बुद्धि ने परमेश्वर का परम आनंदरूप से अंदर अनुभव किया, फिर तुम्हारा मन तड़पता रहेगा! वह चाहता रहेगा कि यह बुद्धि संसार की तरफ जाये, लेकिन फिर वह तुम्हारी पकड़ में आनेवाली नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसः निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तद् अन्तः करणेन गृह्यते।।'

जिस समय शुद्धान्तःकरण के अंदर परमात्माकार वृत्ति बनती है, उस समय जो आनंद आता है, तब जितना कुछ अनंतकाल में तुमने अनुभव किया है, वह सारा दुःख मिट जाता है। जैसे चार दिन की गर्मी के बाद आज सवेरे दो बजे जब ठण्डी-ठण्डी हवा चली तो सारी गर्मी तुरंत मिट गई। चित्त प्रसन्न हो गया। इसी प्रकार अनादि काल से शरीर तप रहा है, जहाँ उस बुद्धि ने परमात्मानंद की प्राप्ति की, सारा दुःख मिट जाता है। पुराने संस्कारों के कारण यह मन और जीव चाहते भी हैं कि यह बुद्धि थोड़ा-सा दुनिया की ओर भी देख ले, लेकिन बुद्धि कहती है 'मैं भगवान् में ही लगी हूँ। संसार को क्या देखूँ? जो कुछ देखना था, अनादि काल से देख चुकी।' फिर बुद्धि उधर नहीं जाती है, वह तो वहीं स्थिर रह जायेगी। जब बुद्धि वहाँ स्थिर हो गई तो फिर इस जीवरूप अहम् को परमेश्वर देश-निकाला दे देता हैं कि 'तू माया देश में उत्पन्न हुआ था, अब तुझे इस माया देश में रहने की कोई ज़रूरत नहीं है।' उसकी जितनी पुण्य-पाप की सम्पत्ति होती है, वह सारी की सारी परमेश्वर उससे वापिस ले लेते हैं 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि' और जीव देश-निकाला पाकर मुक्त हो जाता है, क्योंकि मायारूपी देश से निकल गया। बुद्धि को यदि परमेश्वर की तरफ लगाकर एक बार भी उस परम आनंद को ले लिया, तो काम बन जाता है। इस प्रकार, अपनी बुद्धि को दहराकाश में लगाना है, एकाग्र करना है। यह होते ही काम बनेगा। बहुत नहीं करना है, वरन् एक बार भी कर लिया और उस परम आनंद को समझ लिया, उसका भान हो गया, तो काम हो गया। इस भान को किस प्रकार किया जाये, इस पर आगे विचार करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टम प्रवचन

२.४.७६

उस परब्रह्म परमात्म-तत्त्व के स्वरूप को समझने के अनंतर, उसकी प्राप्ति का, उपलब्धि का या मिलने का स्थान बता रहे थे। वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक होता हुआ भी ब्रह्मपुर में मिलता है। यह जो मानव शरीर है, यही ब्रह्मपुर है, यह बताया। इस मानव शरीर के अंदर ही दहर, अत्यल्प जो हार्दाकाश है, उसमें इसकी उपलब्धि होती है। यह सारे संसार में व्याप्त होने पर भी इसकी अभिव्यक्ति मनुष्य शरीर में है। है यह कण-कण और क्षण-क्षण में सर्वत्र व्याप्त, लेकिन इसकी उपलब्धि का स्थान मनुष्य शरीर है। बाकी सब शरीरों में इसके अस्ति और भातिरूप का प्रकाश होता है। जितने जड पदार्थ हैं उनमें परमात्मा के अस्ति अर्थात् हैपने का भान है। घड़ा है, कपड़ा है, पहाड़ है, पति पत्नी आदि है। अचेतन पदार्थों में उस परमात्मा के हैपने का भान होता है लेकिन चेतनता का भान नहीं। पशु-पक्षी इत्यादि जो चेतन शरीर हैं उनमें हैपने का भी भान और भान अर्थात् ज्ञान का भी भान है। इसलिये वहाँ सत्ता भी है और चित्ता अर्थात् चेतनता, ज्ञानरूपता भी है। पशु-पक्षी भी इसी प्रकार से चीज़ों को जानते हैं जैसे हम जानते हैं। उनमें भी राग, द्वेष, काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य वैसे ही होते हैं जैसे हमें होते हैं। जैसे पहाड़ है, नदी है वैसे ही हमारा शरीर भी है। लेकिन हम *है* से कुछ ज़्यादा हुये; क्योंकि पहाड़ नदी हैं, लेकिन इस बात को जानते नहीं कि 'हम हैं' और अपने से भिन्न दूसरों को भी जानते नहीं। जो चेतनता पशु-पक्षियों में है, वह हम में है क्योंकि जैसे पशु-पक्षी जानते हैं कि 'हम हैं' और दूसरों को भी जानते हैं, इस जानने से उत्पन्न होनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जैसे उनमें हैं वैसे ही हम में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। भगवान् भाष्यकार सर्वज्ञ शंकर ब्रह्मसूत्रभाष्य में कहते हैं कि हाथ में हरी-हरी घास लेकर किसी गाय की तरफ जाने से वह भी बड़े प्रेम से आती है। हाथ में डण्डा लेकर लाल आँख करके जाने पर गाय भी भागती है। इसी प्रकार हमको जहाँ सुख नज़र आता है, वहाँ हम जाते हैं और जहाँ हमें दुःख नज़र आता है, वहाँ से भाग जाते हैं। 'पश्वादिभिश्चाविशेषात्' सर्वज्ञ शंकर कहते हैं कि इस अंश में हम में और पशुओं में कोई फ़र्क नहीं है। जैसे पशु सुख की तरफ जाता है, ऐसे ही अविवेकी पुरुष भी सुख की तरफ जाता है और दुःख से दूर हटता है।

एक चीज़ ऐसी है जो पशु-पक्षियों में नहीं, उनसे हम में ज़्यादा है। वह है हमारा बुद्धि-तत्त्व जो हमें राग-द्वेष से दूर करने में समर्थ है। पशु-पक्षी राग, द्वेष, काम, क्रोध तक तो हमारे जैसे हैं लेकिन ये राग-द्वेष आदि बुरे हैं, इनको छोड़ना चाहिये, यह समझ उनमें नहीं है। यहाँ 'चाहिये' शब्द पर ज़ोर है जिसे अंग्रेजीवाले औचित्य या कर्तव्यबोध कहते हैं। यह बुद्धि-तत्त्व मनुष्य में है, पशु-पक्षी में नहीं। 'ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे' जहाँ तक विषयों के ज्ञान का प्रश्न है, वह तो पशु-पक्षी जितने प्राणी हैं, सब में वैसा ही है। ज्ञान के प्रकार में फ़र्क हो सकता है। इसीलिये आगे ऋषि कहते हैं -

'दिवान्धाः प्राणिनः केचिद् रात्रावंधास्तथाऽपरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।।'

कौए इत्यादि दिन में देख लेते हैं और उल्लू इत्यादि रात्रि में देख लेते हैं। लेकिन दोनों का ज्ञान एक-जैसा ही है। इस अंश में पुरुष में और पशु में फ़र्क नहीं। लेकिन मनुष्य राग-द्वेष का त्याग करने की सोच सकता है, काम-क्रोध को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीतने की सोच सकता है। यह संभावना पशु में नहीं है। जब तक इनको जीतने और छोड़ने की प्रवृत्ति नहीं होती तब तक यह पशु ही कहा जायेगा। जैसे छोटा बालक जब तक ज्ञानहीन अवस्था में होता है तब तक लोग यही कहते हैं कि यह तो अभी पशु की तरह है। केवल शरीर की लम्बाई-चौड़ाई बढ़ने से पशुता थोड़े चली जायेगी! छोटे बच्चे को यह पता नहीं कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। माता स्तन पिला रही होती है, वह उसी स्तन पर अपनी मुट्ठी मार देता है, माँ के गाँठ पड़ जाती है। बालक को पता नहीं कि 'जिससे मैं दूध पी रहा हूँ उसे कैसे मारूँ, आगे मुझे ही दूध पीने में दुःख होगा। माँ को कष्ट होगा तो वह एक स्तन पिलायेगी, दूसरा नहीं पिलायेगी।' इस बात का उसे पता नहीं इसीलिये उसे पशु कहा जाता है। साफ़ बिस्तरे पर उसे लिटाया, उसी पर टट्टी-पेशाब कर देगा। इसी प्रकार बहुत से लोग लम्बे-चौड़े हो जाते हैं, वज़न में भी बढ़ जाते हैं, लेकिन उनको यह पता नहीं रहता कि हम किससे उपकृत हुये हैं, किस के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है। जो माता हमें जीवनदान देती है, हमको टट्टी-पेशाब से बचाकर रखती है, उसी माता को हम समझ लेते हैं कि यह बेकार है, हमें केवल दुःख देती है। उसकी भावनाओं के प्रति हमारे हृदय में कुछ महत्त्व नहीं रहता। जो पिता अपना रक्त देकर, अपने जीवन के समग्र भोगों को छोड़कर हमारा उपकार करता है, उस पिता को हम शत्रु की तरह समझते हैं कि यह मेरी कोई मदद नहीं करता! हम सोच लेते हैं कि हमारा व्यक्तित्व मानो सृष्टि से भिन्न कोई एक अनोखी चीज़ है।

समाज के अंदर रहनेवाला ही मानव हुआ। बिना समाज के यदि घोर जंगल में होता तो इसकी स्थिति पशु से भी खराब होती। पशु को परमेश्वर ने ऐसे हाथ-पैर इत्यादि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिये हैं जिनके सहारे वह जंगल में रह सकता है। मनुष्य में कम-से-कम आज यह सामर्थ्य नहीं है। कुछ पाश्चात्य देश से प्रभावित लोगों का कहना है कि मनुष्य पहले जंगली था। यदि उनकी बात मान भी लें तो *पहले* था। इस समय यदि किसी मनुष्य को जंगल में छोड़ दो तो वह कच्चा अन्न खाकर हज़म नहीं कर सकेगा। पत्तों को दाँतों से चबाकर उनको रक्त में परिणत नहीं कर सकेगा। भोजन पकाने के लिये उसे बर्तन और अग्नि चाहिये। आटा पीसने के लिये उसके पास साधन चाहिये। घोर जंगल में मनुष्य का अपना व्यक्तित्व शून्य है। वह पशु से भी गया-बीता हो जायेगा। इसलिये समाज एक 'पुरुष' है। इसको लेकर श्रुति ने समाज को पुरुषविध बताया। पुरुषसुक्त में 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः' इत्यादि के द्वारा बताया कि यह समाज एक पुरुष है। जिस प्रकार शरीर के अंदर यदि कोई एक अंग निर्णय करता है कि मैं शरीर का नुकसान करते हुये बढ़ूँगा तो उसे कैंसर रोग कहा जाता है। वह सारे शरीर को रुग्ण करने की सामर्थ्य रखता है और स्वयं भी नष्ट हो जाता है क्योंकि शरीर को नुकसान पहुँचाकर क्या शरीर का अंग बच सकता है! जिसके यकृत ने यह विचार कर लिया कि 'मुझे तो बढ़ते चले जाना है, मुझे इस मनुष्य की लाभ-हानि से कोई मतलब नहीं;' कण्ठ ने निर्णय कर लिया कि 'हमें बढ़ते चले जाना है, इससे मतलब नहीं कि समग्र शरीर का लाभ हो या हानि हो'; थोड़े समय के बाद वह शरीर खत्म हो जायेगा। फिर कण्ठ या यकृत क्या बचे रहेंगे? ठीक इसी प्रकार से जब कोई व्यक्ति समाज के अंतर्भूत रहते हुये यह सोचने लगता है कि हमारा व्यक्तित्व समाज से अलग है, बस वहीं रोग आरम्भ हो गया। उसी का नाम रोग है। समग्र समाज के समन्वित तरीके से चलने में ही व्यक्ति का हित निहित है और व्यक्ति के पोषण में ही समाज का हित निहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। समाज से बहुत बड़ा समाज ले सकते हो, मानव समाज ले लो, वह भी एक समाज है। छोटा समाज एक राष्ट्र है। उससे छोटा समाज एक नगर को ले सकते हो। उससे छोटा समाज ले सकते हो एक मुहल्ला। उससे छोटा, घर भी एक समाज है, कुटुम्ब भी एक समाज है। यह नियम सर्वत्र लगेगा। जिस प्रकार कोई मानव विचार करे कि 'मेरे पास दस एटमबम हैं, मैं छोड़ दूँगा,' तो वह खुद समेत अनेकों का नुकसान ही करेगा। यह कोई नई परिस्थिति नहीं समझना, पुरानी परिस्थिति है : अश्वत्थामा के पास ब्रह्मास्त्र था। वह ब्राह्मण था।

शास्त्रों ने वर्ण-व्यवस्था बनाते हुये बहुत सूक्ष्म विचार किया कि ब्राह्मण को राजा बनने का अधिकार नहीं है। इसका कारण है कि ब्राह्मण में बुद्धि बहुत होती है। बुद्धि तब तेज़ रह सकती है जब तपस्या की सान पर चढ़ती है। यह एक विचित्र स्थिति है। जितना शरीर भोगी होगा, उतनी ही बुद्धि मोटी, स्थूल होगी। भोग और बुद्धि दोनों का आपस में विपरीत अनुपात है। भगवान् भाष्यकार कहते हैं 'तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां'; इसका रहस्य यह है कि जब कभी अपनी बुद्धि मोटी करनी हो तो भोगों की उपलब्धि करनी चाहिये। इसी बात को प्राचीन काल में हँसी में और कुछ सत्यता में कहा करते थे; हमारे ऋषि लोग हँसी-हँसी में ज्ञान कराना चाहते थे; कि भैंस का दूध और उड़द की दाल खाओ तो बुद्धि मोटी हो जायेगी! तात्पर्य यह है कि भैंस के दूध में घी अधिकाधिक होने से स्वाद और ताकत दोनों हैं। इसी प्रकार उड़द की दाल में स्निग्ध पदार्थ अधिक होने से शरीर को पुष्ट करने की ताकत है। इनमें शरीर की वृषणशक्ति को तीव्र करनेवाला, भोग शक्ति को बढ़ानेवाला और शरीर को पुष्ट करनेवाला तत्त्व है। वे ही बुद्धि को मोटी करनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्त्व हैं। कहा तो बड़े सरल रूप में है लेकिन रहस्य यह है कि जो-जो चीज़ भोग-शक्ति को बढ़ाती है, जहाँ-जहाँ भोग का अभिवर्द्धन, वहाँ-वहाँ बुद्धि कमज़ोर हो जाती है, बुद्धि तत्त्व नहीं रह जाता। दोनों का विरोध है। इसी बात को और सुन्दर शब्दों में परिष्कृत भाषा में कालिदास कहते हैं 'आकारसदृशी प्रज्ञा' आकार के जैसी बुद्धि होती है अर्थात् यदि शरीर का आकार मोटा है तो बुद्धि मोटी है और शरीर का आकार पतला है तो बुद्धि भी सूक्ष्म है! बात वही है, कहने के तरीके में फ़र्क है। ब्राह्मण के अन्दर बुद्धि का अभिवर्द्धन करना है और वह तभी हो सकता है जब भोग-त्याग की सान के ऊपर उसे चढ़ाया जाये क्योंकि असली तप शास्त्रों में इसे कहा गया है। बार-बार भगवान् वेदव्यास इसी बात पर ज़ोर देते हैं कि इन्द्रियों का संयम ही वास्तविक तप है। केवल किसी दिन नहीं खा लेना, अथवा माघ के मेले में कुम्भ स्नान कर लेना ही सच्चा तप नहीं है। 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः' मन और इन्द्रियों को एक परमात्मा की तरफ लगा देना, विषयों से हटा लेना ही यहाँ परम् तप है। ब्राह्मण को तप के द्वारा, अपनी इन्द्रियों की एकाग्रता के द्वारा, अपनी बुद्धि को सूक्ष्म रखना चाहिये।

आज सारी की सारी हमारी जो भोजन व्यवस्था गड़बड़ हो रही है उसका मूल कारण यही है। डाक्टर कहता है कि अण्डा खाओ, मुर्गी का शोर्बा पियो। बड़े-बड़े आँकड़े इकट्ठे कर कहते हैं कि इससे ताकत आती है। हम कब कहते हैं कि ताकत नहीं आती है! हमने यह कब कहा कि भैंस के दूध और उड़द की दाल में ताकत नहीं है? हम तो कहते हैं कि इससे बुद्धि मोटी होगी। बुद्धि अर्थात् यह समझना कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। अण्डा और शोर्बा खिलाने के बाद कई माता-पिता हमसे कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं कि आजकल के बच्चे बड़े बुद्धिमान् हैं क्योंकि रेडियो बजा लेते हैं, टेलिविज़न चला लेते हैं, टेलिफोन का घोंचा घुमा लेते हैं। विदेशियों का नाम लेते हैं कि वे ठेठ चन्द्रमा में पहुँच जाते हैं। यह *बुद्धि* का विकास कहाँ है? यह तो मन का विकास है। बुद्धि का विकास तो ज्ञातव्य-अज्ञातव्य का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान होना है। पता लगाकर देखो कि विदेशी लोगों के अंदर अपने बड़ों के प्रति भोगत्याग की इच्छा है या नहीं? विदेशों में जाकर देखोगे कि वे अपने बुड्ढे बाप को उसके मुँह पर ही बुड्ढा कहते हैं। हमारे यहाँ भी यह सब खाकर यही बुद्धि आई है कि 'देखो, बुढ़ऊ बैठा हुआ है।' विवाह के समय मनुष्य पूछता है कि घर में कितने मेहमान हैं, कितने देवर और ननदें हैं, ससुर है या नहीं? सास-ससुर मरे हुये हों तो और अच्छा है। इनको लोग मेहमान कहते हैं। दोष उनका नहीं है। हमने उनको खिलाया क्या है? हमने उनकी बुद्धि मोटी की है। न अपने पूर्वजों के प्रति और न समाज के प्रति ही कर्त्तव्य का ख्याल है, केवल अपने भोग का अभिवर्द्धन है। जितना यह रोग बढ़ेगा उतना बुद्धि तत्त्व कम होता चला जायेगा, समाज विशृंखलित होता चला जायेगा।

तप की कमी से ही ब्रह्मास्त्र छोड़ने का निर्णय अश्वत्थामा ने किया था। ब्राह्मण को इसीलिये राज्याधिकार नहीं दिया गया वरन् यह कहा गया कि तप से ही वह अपनी शक्ति बढ़ाये। अश्वत्थामा राजा के बच्चों के साथ बड़ा हुआ। संगदोष का प्रभाव हुआ। कहाँ तो आचार्य द्रोण इस तपस्या की हालत में रहते थे कि जब अश्वत्थामा ने दूध माँगा तो उन्होंने आटा घोलकर उसे पिलाया क्योंकि घर में दूध नहीं था। मामा के घर रह आया था, वहाँ दूध पी आया था। पीकर देखा तो उसे लगा कि यह दूध नहीं है। माता बेचारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झूठ बोलना नहीं जानती थी। तब तक हमारी *उन्नति* नहीं हुई थी कि हम झूठ बोलें! माँ ने कहा 'दूध तो नहीं है, यह आटे का पानी है। हम ब्राह्मण हैं, दूध कहाँ से लायें?' अश्वत्थामा मचल पड़ा। पिता का मन डाँवाडोल हो गया, घटना इतनी छोटी-सी थी लेकिन मन डोलने से क्या हुआ? राजा के यहाँ पहुँच गये। योग्यता पूर्ण थी। विद्या का थोड़ा-सा प्रदर्शन किया। जहाँ कौरव-पाण्डव खेल रहे थे, वहाँ उनकी गेंद कुये में गिर गई थी। द्रोणाचार्य ने एक के ऊपर दूसरा बाण मारकर इस प्रकार बाणों के सहारे से एक पूरी रस्सी जैसी तैयार करके गेंद को बाहर निकाल दिया! यह खबर भीष्म पितामह को मिली तो समझ गये कि इतना बड़ा धनुर्विद्या का आचार्य जो मेरी टक्कर ले सके, द्रोण के सिवाय दूसरा नहीं हो सकता। बड़े आदर से बुलाया और बड़े ही आदर से उन्हें वहाँ रखा। अब दूध की क्या कमी! लेकिन तप से चूक गये थे, अब अश्वत्थामा राजपुत्रों के साथ रहने लगा, बुद्धि मोटी होती चली गई। द्रोण समझाते रहे लेकिन काम नहीं बना। भोग के अंदर स्वयं रोग निहित होता है। भोग करते समय मीठा लगता है, फल के समय तड़पा देता है। उस समय कहा जाता है कि इस पर भगवान् दया या करुणा क्यों नहीं करते! महाभारत युद्ध हुआ। कौरव हार गये क्योंकि पाप का पक्ष था। लेकिन अश्वत्थामा की कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की बुद्धि क्षीण हो गई थी। उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भ्रूण के ऊपर कर दिया! अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित अभी गर्भ में ही था। यह बुद्धि भ्रष्ट होने का लक्षण है। विचार नहीं किया कि कहाँ इसका प्रयोग करना चाहिये, कहाँ नहीं करना चाहिये। अर्जुन के पास भी ब्रह्मास्त्र था, उसने भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। ऋषियों ने आकर कहा कि 'यह क्या कर रहे हो!' जैसे आज लोगों के पास ऐसे-ऐसे प्रक्षेपणास्त्र हैं जो एक-दूसरे की काट करने में घोर नुकसान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर देते हैं ऐसे ही ऋषियों ने कहा कि ब्रह्मास्त्रों की टक्कर से संसार भी नष्ट हो जायेगा और तुम दोनों में से भी कोई नहीं बचेगा। अर्जुन ने अपना अस्त्र वापिस ले लिया। अश्वत्थामा रोकर कहने लगा कि 'यह शक्ति मेरे में नहीं है। मैं भोगी हूँ।' ब्राह्मण हुआ तो क्या हुआ! अंततोगत्वा भ्रूण की रक्षा भगवान् ने की।

जिस मनुष्य के मन में यह कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की बुद्धि नहीं होती, वह मानवता का नाश कर सकता है। जैसे मानवता, वैसे ही देश के अंदर होता है: वहाँ भी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक नहीं रहता है, केवल अपने शासन की चिंता रहती है। उससे देश बिगड़ेगा तो मेरा परिवर्द्धन कैसे होगा - यह विवेक नहीं रहता, देश का हिताहित सामने नहीं रहता। जैसे हिटलर का हाल हो गया था, जर्मनी खत्म हो गया तो हिटलर कहाँ बचा रहा? उसी ने 'स्कार्च अर्थ पालिसी' का सिद्धान्त निकाला। जिस समय हारने लगा, फौजें पहुँचने लगी, उस समय उसकी क्या बुद्धि रहनी थी! उसने कहा 'सारा जर्मनी नष्ट हो जाये, एक फैक्ट्री न रहे।' यही बुद्धि का नष्ट होना है। उसका अभिमान था कि जर्मनी की उन्नति होनी है तो मेरे द्वारा होगी और यदि नाश का प्रसंग आ गया तो मैं अपने मरने के साथ सारे जर्मनी को खत्म कर दूँगा। यह बात दूसरी है कि उसका हुक्म उसके कमाण्डरों ने ही नहीं माना क्योंकि उन लोगों ने समझ लिया कि हारना ही है तो राष्ट्र को क्यों बरबाद करें। लेकिन हिटलर की बुद्धि का दोष था कि वह यह नहीं समझ सका कि इस बड़े समाज का मैं भी एक अंग हूँ। इस प्रकार के लोग त्याग की बात तो करेंगे लेकिन उस सब त्याग के अंदर अपनी अहम्मन्यता ही केन्द्र में बैठी है। 'मुझे कुछ त्यागना न पड़े, मेरा अहम् बना रहे' - यह भाव समाज को नुकसान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहुँचाता है और अंत में वह व्यक्ति भी नष्ट हो जाता है। मूर्ख लोग ऐसी अहम्मन्यता की प्रशंसा किया करते हैं कि 'इन्होंने अपने अहम् को पूर्ण करने के लिये कितना त्याग कर दिया' क्योंकि ऐसों को कुछ बाह्य पदार्थ छोड़ते हुये देखते हैं। परंतु वह त्याग नहीं है।

इसी प्रकार से चाहे मुहल्ले में जाओ, चाहे शहर में जाओ, सर्वत्र यही नियम है। 'मेरे पास पुरानी मोटर है, उसमें मोबिल गैस का धुआँ उड़ता है। नई मोटर में पैसा ज़्यादा लगता है, बस में मुझे जाना नहीं है। इसलिये मैं मोटर में धुआँ उड़ाता हुआ ही जाऊँगा, लोगों को रोग हो तो हो, मुझे इससे क्या!' नियम कहता है कि ऐसी मोटर मत चलाओ। लेकिन चार-पाँच रुपये दे दिये जाते हैं और ऐसी गाड़ी को पास करा दिया जाता है। इस पर बड़ी प्रशंसा से मनुष्य कहता है कि 'इसमें क्या है! दो-चार रुपये देकर काम बन जाता है।' काम किसका बना? उससे जो रोग होने हैं वे क्या किसी दिन तुम या तुम्हारे बच्चे या तुम्हारी पत्नी पर नहीं आने हैं? वह वातावरण क्या केवल दूसरों को नुकसान पहुँचायेगा? लेकिन मनुष्य उस समय सोचता नहीं है। बड़े-बड़े भी नहीं सोचते हैं। सन् ४१ में सबसे पहले डीज़ल के ट्रक कलकत्ते में आये। उस समय लोगों ने बड़े जमकर इन अमेरिकन ट्रकों का विरोध किया था कि ये स्वास्थ्य के लिये घातक हैं। आंदोलन करके उन्हें शहर के बीच से जाना बन्द कराया गया। आज अर्थलोलुपता के कारण क्या उन्हीं ट्रकों को, बसों को हम गली-गली में नहीं घुमा रहे हैं? कहते हैं कि धन की ज़रूरत है लेकिन यह नहीं देखते कि क्या रोग की भी ज़रूरत है? हम भूल जाते हैं कि समाज के नुकसान के साथ हमारा भी नुकसान है। छोटे मुहल्लों में पहुँच जाओ तो आदमी घर का कचड़ा निकालकर बाहर सड़क पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

फेंकता है। उस सड़क पर से किसको चलना है, क्या उस पर बैठी मक्खियों और उसकी गन्दगी का प्रभाव तुम पर नहीं आयेगा? ऐसी प्रवृत्तियों में हेतु सर्वत्र बुद्धि का ह्रास है, बुद्धि का मोटापन है। यह नहीं सोचते हैं कि यह समाज एक अंगी है। यदि हम अंगी को नुकसान पहुँचायेंगे तो अंगरूप हम ही इससे नुकसानवाले होंगे। यह दृष्टि नहीं बन पाती है।

इसी प्रकार घर के अंदर भी यही बात है 'मेरी इच्छा पूर्ण हो, जितनी मेरी परम्परायें हैं उनके अनुकूल सब ढलें, मैं किसी के अनुसार न ढलूँ!' ऐसा आग्रह रखनेवाले बड़े घमण्ड से कह देते हैं कि मैं सब कुछ त्यागने को तैयार हूँ! त्याग तो अहंता का करना है। वह त्यागो तो त्याग हुआ। त्याग हिटलर ने भी किया था जिससे सारे जर्मनी को बरबाद किया। पर उसका नाम त्याग नहीं है। उलटा, वह तो अहंता और भोग की बुद्धि का अभिवर्द्धन है। आज का व्यक्ति कहता है 'मैं यज्ञोपवीत पहनना नहीं मानता। माता-पिता सब कह दें, मैं नहीं मानता।' वहाँ से लेकर, कितने बजे उठें, इसे भी व्यक्तिगत मामला मानता है। क्या तुम समाज से अलग हो? यह तो प्रश्न ठीक है कि 'ज़रा समझाइये कि यह मेरे जीवन को कैसे लाभ पहुँचायेगा? मेरे करने से सबका लाभ कैसे होगा?' लेकिन जब यह कह देते हो कि 'यह मेरा व्यक्तिगत विषय है' तो उतने क्षणों के लिये घोर जंगल में रहो, जहाँ समाज का कोई स्पर्श नहीं हो। समाज में रहते हुये सर्वथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता कहाँ से आयेगी? जब तक समाज के इस संघटित रूप को मनुष्य नहीं समझ पायेगा तब तक वह मनुष्यतावाला न रह कर पशु बना रहेगा। यह जो बुद्धि तत्त्व मनुष्य के अंदर है इसमें 'चाहिये' की भावना है, 'मुझे क्या भोग प्रिय लगते हैं,' केवल इसकी भावना नहीं है। 'मुझे कुछ भी प्रिय लगे, लेकिन मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या करना चाहिये' – यह दृष्टि है। किसको रात में नौ बजे पिता के पैर दबाना अच्छा लगता है? लगता तो पत्नी के साथ रंगरेलियाँ करना ही अच्छा है! 'पिता बीमार है, मुझे उनके पैर दबाने चाहिये' यह कर्त्तव्य बुद्धि पशु में नहीं मिलेगी। जब कोई कहता है 'मेरा मन चाहता है इसलिये मुझे करने दो,' तब वह पशु की बोली बोल रहा है, मनुष्यता की बोली नहीं बोल रहा है। मनुष्यता की बोली यह होनी चाहिये 'यह जो आप काम कर रहे हैं इसमें अमुक समाज का, अमुक कुटुम्ब का नुकसान है। मेरा भोग प्रतिबद्ध होता है, इसमें कोई बात नहीं है।'

पदार्थों के अंदर परमात्मा की केवल सत्ता का प्रकाश आया जो जड और चेतन दोनों पदार्थों में है। पशु-पक्षी के अंदर व मनुष्य के अंदर ज्ञान का, चित्ता का प्रकाश आया। यह जो समाज के साथ एक होकर बुद्धि का आत्मसात् होना है, यह परमेश्वर की अनंतता का प्रकाश बुद्धि तत्त्व में आया। 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म' श्रुति के अनुसार चूँकि मैं सब देश काल पदार्थों में व्यापक हूँ इसलिये मैं केवल एक शरीर को, परिच्छिन्न को लेकर नहीं सोच सकता। जब तक बुद्धि तत्त्व विकसित नहीं होता है तब तक मनुष्य इस अनंतता के भाव को पकड़ ही नहीं पाता है। पूर्णता से कर सके, न कर सके, यह तो आगे की बात है, लेकिन पहले कम-से-कम हृदय में यह उद्‌बोध तो हो कि मैं जो करता हूँ उसमें मैं केन्द्र नहीं हूँ बल्कि मैं एक समष्टि का अंग हूँ। वह समष्टि घर और मुहल्ले से लेकर समग्र ब्रह्माण्ड तक जा सकती है। 'अहं ब्रह्म अस्मि' अर्थात् मैं अनंत कोटि ब्रह्माण्ड के कण-कण और क्षण-क्षण में विद्यमान हूँ, उन सबके अंदर शिव-दृष्टि मुझे करनी है। पहुँचना वहाँ है। यदि मैं पैर उठाता हूँ तो मैं इस बात को जानता हूँ कि समग्र ब्रह्माण्ड में इसके द्वारा एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पन्द पैदा होगा। वह स्पन्द शिव या अशिव, कल्याणकारी या अकल्याणकारी स्पन्द हो सकता है। मेरे मन में एक सूक्ष्म सा विचार उठा, वह शिव-अशिव दोनों हो सकता है, अकल्याणकारी विचार न जाने मुझे कहाँ तक पहुँचा सकता है! कहाँ तक गिरा सकता है, यह अश्वत्थामा के दृष्टान्त से बताया। एक छोटा-सा ही विचार था कि आखिर बेटा दूध ही तो माँग रहा है। वह अशिवता कहाँ तक पहुँची, यह इस दृष्टान्त से स्पष्ट है।

कहोगे कि यह तो अश्वत्थामा ने ही गलती की, लेकिन ऐसा नहीं समझ लेना। अभिमन्यु को मारने के उपक्रम में आगे कौन बढ़ा था? उस समय सेनाध्यक्ष कौन था? द्रोण थे। भीष्म पितामह ने दस दिन युद्ध किया और एक दिन भी अधर्म का काम नहीं किया, यद्यपि प्रसंग कई आये। लोगों ने कहा लेकिन भीष्म पितामह ने स्पष्ट कहा कि 'मैं जब तक सेनाध्यक्ष हूँ, युद्ध में अधर्म नहीं हो सकता।' तब अधर्म युद्ध में भी अधर्म नहीं करते थे! उनकी सेनाध्यक्षता में दस दिन युद्ध हुआ। प्रतिदिन सायंकाल युद्ध बन्द होना है तो होना है। रात्रि में आर्य नहीं लड़ता, आर्य निशाचर नहीं हुआ करते। सूर्य के सान्निध्य में आर्य काम किया करता है। महाभारत में आता है कि जब उन्होंने सेनाध्यक्ष पद लिया तो उनका आदेश था कि धर्मयुद्ध होगा और प्रतिदिन दस हज़ार योद्धाओं को मैं व्यक्तिगत रूप से मारूँगा। युद्ध में कोई कमी नहीं रखूँगा। दुर्योधन ने पूछा कि कौन कितना युद्ध कर सकता है? किसी ने कहा एक हज़ार और किसी ने कहा पन्द्रह सौ। कर्ण कहने लगा कि गिनती कौन रख सकता है! कर्ण को तो भीष्म पितामह ने अर्द्धरथी गिना था। युद्ध प्रारंभ होते समय विचार चला कि किसको किस पद पर रखा जाये तो कर्ण को भीष्म ने अर्द्धरथियों में रखा। खलनायक पर लोगों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहानुभूति होती है । पापी के प्रति पापी की सहानुभूति रहा करती है। परवर्ती साहित्य में कर्ण के प्रति लोगों की बहुत सहानुभूति रही है। अर्द्धरथी गिने जाने पर कर्ण बिगड़ा तो उन्होंने कहा 'गिनना तो यह भी नहीं था, पर दुर्योधन बुरा मान जायेगा इसलिये तुझे अर्द्धरथियों में गिन लिया है! महारथी, अतिरथी, रथी और तब अर्द्धरथी होता है। लेकिन कर्ण अपने को महारथी मानता था। कर्ण ने गुस्से में आकर कहा कि 'आप मुझे ऐसा कैसे कहते हैं'? क्या मुझे शस्त्रास्त्रों का ज्ञान नहीं है?' भीष्म हँसकर कहने लगे 'यहाँ ब्राह्मणों की या शिक्षकों की गिनती नहीं हो रही है कि कौन कितने अस्त्रों को जानता है। यहाँ तो इस बात की गिनती हो रही है कि कौन कितने अस्त्र चला सकता है। तूने परशुराम से विद्या प्राप्त की है। मेरे गुरु भी वे ही हैं। मुझे उन्होंने गुरु बनकर विद्या सिखाई है, और मैंने शिष्य बनकर उनसे विद्या प्राप्त की है। तूने झूठ बोलकर, ब्राह्मण बनकर प्राप्त की है। मुझ से तेरा रहस्य छिपा हुआ नहीं है। तू सब सिखा सकता है, लेकिन उन्होंने कह रखा है कि क्रिया में तुझे याद नहीं रहेगा। मैं इस बात को जान रहा हूँ। यह दुर्योधन की सभा नहीं जहाँ तू अस्त्रों का व्याख्यान देगा। यहाँ तो अस्त्र चलाना पड़ेगा।' प्रत्यक्ष में भी देखा जाये तो दस दिन तक भीष्म ने और पाँच दिन तक द्रोणाचार्य ने युद्ध किया और कर्ण तो केवल डेढ़ दिन ही सम्भाल पाया! भीष्म धर्मयुद्ध पर डटे रहे लेकिन द्रोणाचार्य के समय में क्या हुआ? द्रोण पर छींटाकसी होने लगी और तीसरे दिन उन्होंने अभिमन्यु को निश्शस्त्र अवस्था में सात महारथियों के द्वारा घेरकर मारा! यह कहकर काम नहीं चलेगा कि चाहते तो थे कि अर्जुन मर जाये लेकिन अभिमन्यु मर गया। आखिर उसके धनुष को तो उन्होंने काटा। कारण क्या है? वही जो एक बार मन के अंदर अशिव स्पन्द पैदा हुआ कि 'चाहे राजा का अन्न खाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी मैं अश्वत्थामा को दूध पिला दूँ।' इसलिये छोटा-सा अशिव स्पन्द कहाँ तक पहुँचाता है, यह इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। स्वयं अपना नुकसान और अपनी संतति का नुकसान भी किया।

इसलिये पहुँचना तो वहाँ है जहाँ हमारे अंतःकरण में एक स्पन्द भी पैदा हो, हमारे शरीर के अंदर पैर चलने के लिये उठे, तो पूर्ण ध्यान रहे कि 'कहीं कोई अशिव कार्य तो नहीं हो रहा है। मैं शिवरूप हूँ, मेरे से कोई अशिव या अमंगल कार्य तो नहीं हो रहा है।' लेकिन वहाँ तक नहीं पहुँच सके, 'अहं ब्रह्मास्मि' तक नहीं पहुँच सके, तो कम-से-कम अपना कुटुम्ब, अपना परिवार, अपना घर, अपना मुहल्ला, अपना नगर, अपना देश है, मानवता है - इनके अंदर तो जहाँ तक धीरे-धीरे बढ़ सको, बढ़ना है। देखना यह है कि इनके द्वारा हम किधर जा रहे हैं? यह शिव कार्य है या अशिव कार्य है? मुझे भोगों की प्राप्ति कैसे हो - यह विचार पशु करता है, मनुष्य नहीं। अनंतता का विचार देनेवाला बुद्धि तत्त्व मनुष्य में आकर प्रस्फुटित हुआ। यह अनंतता का विचार ही इसकी मुक्ति का बीज है। क्या कारण है कि शास्त्र बार-बार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि जब तक मनुष्य के अंदर धर्मनिष्ठा नहीं होगी तब तक ब्रह्मनिष्ठा आयेगी कहाँ से! भगवान् सुरेश्वराचार्य कहते हैं -

अमानित्वादिनिष्ठो यो यश्चाऽद्वेष्ट्रादिसाधनः।
ज्ञानमुत्पद्यते तस्य न बहिर्मुखचेतसः।।

जिस व्यक्ति ने अमानित्व से लेकर गीता में कहे हुये गुणों को पूर्ण रूप से निष्ठा से प्राप्त नहीं कर लिया, 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च' ये जो भगवद्भक्त के लक्षण हैं इनको जो नहीं कर रहा है, उसको इस तत्त्व के अंदर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी भी वृत्ति या स्थिति बनेगी ही नहीं। दूसरी जगह भगवान् वार्तिककार सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि जिसने अपने मन को प्रशान्त नहीं कर लिया, जिसने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित नहीं कर लिया वह इस वेदान्त तत्त्व में प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि ये ही दोष मनुष्य को परिच्छिन्न आत्मभाव की तरफ ले जाते हैं और वेदान्त तुम्हें अनंत, अपरिच्छिन्न आत्मभाव की तरफ ले जाता है। जितना-जितना इन्द्रिय-मन के पीछे चलोगे उतने-उतने परिच्छिन्न होते चले जाओगे। जितना-जितना इससे विपरीत चलते जाओगे, जितना-जितना इन्द्रियों और मन के भावों को छोड़ते चले जाओगे, उतनी-उतनी व्यापकता आती चली जायेगी। पूर्ण व्यापकता आना ही तो ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति है। धर्म इस व्यापक तत्त्व को, बुद्धि तत्त्व के अंदर जो अनंतता का भाव है उसे प्रस्फुटित करने के लिये पहले-पहल लिया जानेवाला कदम है। अनंतता का भाव तो जब आयेगा तब आयेगा, लेकिन जहाँ तुमने बुद्धि के द्वारा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक शुरू किया, समझ लो कि वहीं से धीरे-धीरे तुम्हारे अंदर व्यापकता आने लगी।

इसीलिये जब कोई आकर पूछता है कि भगवान् की तरफ चलने की पहली सीढी क्या है? तो सबसे पहले हम लोग बताते हैं कि ब्राह्म मुहूर्त में प्रातः चार बजे उठा करो। आजकल कोई योगाभ्यास में, कोई ध्यान में लगा है तो कोई कुण्डिलिनी का चालन और कोई समाधि लगा रहा है! उनसे पूछते हैं कि उठते कितने बजे हो? तो कहते हैं 'आठ बजे उठ जायें तो क्या हर्जा है?' रात्रि में क्या करते हो? कहते हैं 'इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि रात्रि में कहाँ जाते हैं!' ऐसे लोग समाधि लगाते हैं। वह योग और समाधि कैसी है, वह भी हम जानते हैं। वे लोग योग नहीं करते 'योगा' करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी से स्थिति का पता लग जाता है। धर्म उस बुद्धि तत्त्व में प्रवेश करने की पहली सीढी है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक ही धर्म का प्रारंभ है। प्रातः काल उठे तो सबसे प्रथम भोग का त्याग किया। यह साधारण काम नहीं है। अपना एक विवाहित बच्चा है, वह हमसे पूछ रहा था कि स्त्री-विषयक कामना को कैसे शान्त करें? उसको हम समझाते हुये यही कह रहे थे कि चार बजे उठना शुरू कर दो और उठकर थोड़ा ध्यान इत्यादि करो। वह कहने लगा कि 'वह तो मैं करूँगा लेकिन और कोई योगाभ्यास बताइये।' हमने कहा कि चार बजे वही ध्यान में बैठेगा जो साढ़े तीन बजे उठेगा और रात्रि में नौ दस बजे तक सो जायेगा। तो वह भोग-प्रवृत्ति करेगा कब? भोगी समय पर सोते नहीं और फिर सवेरे सात बजे तक सोते रहेंगे। हमारे शास्त्रकारों ने जो बड़े छोटे-छोटे गुर बताये हैं, उनके अंदर प्रविष्ट होकर देखो तो पता लगता है कि उनमें अनंत पक्ष हैं, एक ही पक्ष नहीं है। सवेरे चार बजे उठनेवाला दस बजे तक अपना अधिकतर काम कर लेगा। पहले गाँवों में दिन में दस-ग्यारह बजे तक बाजार बन्द हो जाता था। वातानुकूल की ज़रूरत भारत में नहीं पड़ी। भारत गर्म मुल्क है। अर्थ-दृष्टि से भी अरबों रुपये की बचत हो जायेगी। सामाजिक दृष्टि से प्रातःकाल आदमी का चित्त शांत होता है। राग-द्वेष उस काल में अधिक नहीं होते। मनुष्य में चिड़चिड़ापना हमेशा शाम को आता है। दिनभर इधर-उधर की बातों से, किसी की हुण्डी नहीं दे पाये इत्यादि से चिन्ता सारी शाम को होनी हुई। सवेरे हर व्यवहार में शान्ति होगी, फिर लड़ाई-झगड़ा क्या होगा! हर दृष्टि से फ़ायदा है। और आज अरबों रुपये खर्च करके मनुष्य को हीजड़ा बनाने का जो प्रयास है, वह भी बच जायेगा! बिजली का भी फ़ायदा होगा क्योंकि पाँच-साढ़े पाँच बजे भाग फट जाती है, इसलिये बिजली की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी ज़रूरत नहीं। इस प्रकार से जब ऋषियों की यह सोच देखते हैं तब हृदय पुकार उठता है कि ये मनुष्य नहीं थे, यह तो निश्चित है। किसी मनुष्य में इतनी बुद्धि नहीं हो सकती। आज हम एक पक्ष बनाते हैं तो आज ही वह पक्ष टूटने लग जाता है! उन्होंने जो विचार रखे उनमें आधुनिक लोगों को भी पाँच हजार साल बाद तक गुण दीख रहे हैं । और हम आज नियम बनाते हैं तो अगले साल ही संशोधन की ज़रूरत पड़ती है। काल बदल जाता है तो बात बदलनी पड़ती है। हजारों साल हो गये पर ऋषियों का कोई नियम आज तक कमज़ोर नज़र नहीं आ रहा है। लेकिन यह भोग-त्याग से होगा। सवेरे चार बजे उठना भोग-त्याग का प्रतीक है।

यह जो बुद्धि तत्त्व को अनंतता की तरफ ले जानेवाला मार्ग है, इस पर जितना ज़ोर देंगे उतना-उतना उस दहर में बुद्धि के साथ प्रवेश हो सकेगा। इसलिये कहा कि परमात्मा का, सत् का प्रकाश सर्वत्र है। जड पदार्थों में भी है। परमेश्वर के चित् का प्रकाश चेतन पदार्थों में, पशु-पक्षी आदि में है। अनंतता के प्रकाश का उद्घाटन मनुष्य के अंदर बुद्धि तत्त्व में आता है। यह अनंतता का भान ही मनुष्य को पूर्णता की तरफ ले जाता है। यह दहर देखने में अत्यल्प है, लगता है कि यह परिच्छिन्न है, लेकिन अपने इस परिच्छिन्न स्व के द्वारा जब हम सारे ब्रह्माण्ड के स्व के साथ एकता करते हैं तो स्व का छिद्र हमें अनंत प्राणियों के साथ सारे जड-चेतन जगत् से एक करके अंत में ब्रह्म-प्राप्ति करा सकता है। यह दहर छोटा-सा लगता है लेकिन है बहुत बड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवम प्रवचन

३.४.७६

भगवती श्रुति उस दहर विद्या को बताती है जिसका अभ्यास परमात्म तत्त्व को समझने के बाद दृढ विज्ञान के लिये, दृढ अनुभव के लिये किया जाता है। इस अनुभव को उपलब्ध करने का पहला स्थल बताया ब्रह्मपुर। मनुष्य-शरीर ही ब्रह्मपुर है। इसके अंदर भी जो इसका मध्य भाग है और वहाँ भी जो दहर अर्थात् अत्यंत अल्प आकाश है, वहाँ ध्यान करना है। इससे पूर्व बताया कि परमात्मा के सत्-रूप की व्याप्ति सर्वत्र है। चित्-रूप की व्याप्ति चेतनों में और अपनी व्यापकता के ज्ञान से प्रसूत जो कर्त्तव्याकर्त्तव्य का, ज्ञातव्याज्ञातव्य का विवेकरूप बुद्धि है, वह मनुष्य में आकर प्रकट हुई। यद्यपि यह कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की बुद्धि मनुष्य में है लेकिन इसका सम्यक् प्रयोग करने से ही जो आनंदरूपता है वह यहाँ प्रस्फुटित होती है। परमात्मा का अनंत सच्चिदानंद रूप है। पदार्थमात्र सत् रहेगा ही, चाहे उसकी सत्ता को तुम कितना ही न्यून कर दो लेकिन पदार्थ से सत् को हटा नहीं सकते। इसी प्रकार से चेतन पदार्थों में चेतनता के अंग को चाहे जितना कम कर दो लेकिन चेतनता हट नहीं सकती। उसका उपयोग करोगे तो बढ़ेगी, उपयोग नहीं करोगे तो घटेगी। चेतनता की उपयोगिता क्या है? नियम में बद्ध रहना पदार्थों का, जड चीज़ों का नियम है। नियमों को समझकर उनके परे जाना चेतन का कार्य है। मोटी भाषा में जिसे कह सकते हैं कि स्वतंत्र व्यवहार, स्वतंत्र व सहज इच्छा का उत्कर्ष जड पदार्थों में नहीं। यही जड और चेतन को अलग करता है। जड पदार्थ चाहे जितना बड़ा हो जाये, हिमालय पर्वत बन जाये, लेकिन नियमों में बद्ध ही रहेगा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके आगे नही जा सकता है। जैसा नियत है वैसा ही रहेगा।

आजकल लोग ऐसे-ऐसे यंत्र बनाते हैं जो मनुष्य की तरह आचरण करते हैं। गणना करनेवाला छोटा-सा यंत्र कइयों ने देखा होगा। जिन जोड़, घटा, गुणा, भाग, वर्गमूल आदि को निकालने में हम लोग अपने बचपन में न जाने कितनी छड़ियाँ खाते थे, आजकल के लड़के बटन दबाकर उनका हल निकाल देते हैं। ऐसे यंत्र बन गये हैं जिनके साथ बैठकर तुम शतरंज खेल सकते हो, वे तुम्हारी चाल का बराबरी का जवाब देंगे, वे तुम्हारी चाल को याद रखते हैं। जो चाल तुमने चली उसको वह एक बार देख चुका तो उस चाल से तुम फिर उसे नहीं हरा सकते! जर्मनी में एक ऐसा यंत्र भी बन गया है कि जिसके अंदर तुम जन्म का समय अंकित कर दो तो पूरा जन्म पत्र, अंतर्दशा, महादशा आदि सहित तैयार हो जायेगा। ऐसे-ऐसे यंत्रों का निर्माण हुआ, लेकिन फ़र्क क्या है? उस यंत्र के अंदर जिन नियमों को तुमने बाँध दिया, उन्हीं नियमों में वह यंत्र चलेगा। जिस प्रकार का तुमने उसे नियमित कर दिया, उससे हटकर वह कुछ कर नहीं सकता।

वातानुकूल में समझ लो, यह यंत्र बहुतों के घर में है। वातानुकूल को तुमने ७५ डिग्री फैरन्हाइट पर स्थिर कर दिया कि आज इतनी ठण्डक रखनी है। तुम बाहर से चलकर आये, पसीना ज़्यादा आया लेकिन वह यंत्र ७५ डिग्री पर स्थिर रहेगा। अथवा डेढ़ टन का वातानुकूल लगा हुआ है जिसमें तीन आदमी तक बैठें तो काम करेगा। तुम्हारे पिताजी ही मिलने आ गये। क्या उसे शर्म आयेगी कि थोड़ी और ठण्डक कर दूँ? दूसरी तरफ, तुम्हारा नौकर बाहर बैठा हुआ पंखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खींच रहा है। पुराने लोगों को याद होगा कि पंखे की रस्सी पकड़कर नौकर बाहर बैठा रहता था, वह हवा देता रहता था। उसने देखा कि लाला जी बाहर से पसीने से भींज़ कर आये हैं तो वह अपना हाथ तेज़ी से चलाने लगता था, फिर थोड़ी देर बाद हाथ धीमा हो जाता था। उसने देखा कि लालाजी के पिताजी आये हैं और समझ गया कि हवा ज़्यादा चाहिये। तुमको हुक्म नहीं देना पड़ता। यह कार्य यंत्र नहीं कर सकता। तुम्हारे पिता जी आये हैं तब क्या व्यवहार किया जाये और ऐसे ही मिलनेवाला मटरगश्ती करनेवाला दोस्त आ गया तब क्या व्यवहार किया जाये - यह विवेक यंत्र नहीं कर सकता। ऐसे-ऐसे यंत्र हैं कि यदि तुमको पाँच बजे सवेरे चाय तैयार चाहिये तो उसके अनुसार रात में नियत कर दो, सवेरे ठीक पाँच बजे चाय तैयार होकर वह यंत्र सीटी मार देगा! दिनों-दिन ठीक काम करेगा। तुमने अपनी पत्नी को भी कह रखा है कि तुमको पाँच बजे चाय चाहिये लेकिन पत्नी किसी दिन पाँच बजकर दस मिनट पर देती है और किसी दिन पन्द्रह मिनट पहले ही तैयार करके ले आती है। तुम कहते हो कि 'आज दस मिनट देरी हो गई?' तो वह कहती है कि 'आपको मीठी नींद आ रही थी, मैंने सोचा सोने दूँ।' यह काम वह सीटी मारनेवाली मशीन नहीं कर सकती। जिस दिन पाँच मिनट पहले लायेगी उस दिन कहेगी 'मैंने देखा कि आप करवट बदल रहे हैं, नींद तो आ नहीं रही है इसलिये सोचा कि आपके साथ पाँच मिनट मीठी बातें करते हुये चाय ही पी लूँ।' यह काम भी मशीन नहीं कर सकती।

यह जो स्वतंत्रता का तत्त्व है यही जड को चेतन से अलग करता है। चाहे जैसे यंत्र बना लो, उनको जो हुक्म फरमाओगे वही करेंगे, अपनी बुद्धि उसमें नहीं लगा सकते। चेतन की विशेषता ही यह है। इसीलिये वेदान्त चेतनता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊपर ज़ोर देने के कारण हमेशा हमारी स्वतंत्रता पर ज़ोर देता है, हमारी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखता है। परतंत्र बनाने से तो फिर जडरूपता हो जायेगी। यदि इस स्वतंत्रता के व्यवहार को बढ़ाओगे, इसका सदुपयोग करोगे तो स्वतंत्रता बढ़ती चली जायेगी। दुरुपयोग करोगे तो वह घटती चली जायेगी। एक दिन बढ़िया भोजन बन गया, दाल का सीरा हमने दो गुणा खा लिया, स्वतंत्रता का उपयोग कर लिया। यदि उसके बाद चार दिन तक हमने भोजन कम करके उस दाल के सीरे को बराबर कर लिया तो यह उस स्वतंत्रता का सदुपयोग हो गया। शरीर ठीक चलता रहेगा। लेकिन आज दाल का सीरा खा लिया, कल मीठे चावल या मेवे की खिचड़ी खा ली, परसों पिन्नी खा ली; तुम्हारी स्वतंत्रता है, उससे ज़्यादा भी खा सकते हो, हजम भी हो जायेगा, लेकिन इस स्वतंत्रता का अंतिम नतीजा यह होगा कि एक दिन कुछ भी नहीं खा सकोगे! यकृत काम नहीं करेगा, क्लोरोस्ट्रोल बढ़ जायेगा, शरीर के अंदर वसा बढ़ जायेगी, मधुमेह हो जायेगा और अंत में डाक्टर कहेगा कि 'लालाजी! अब तो आप उबली लौकी खाओ और दाल का पानी ही पियो।' यह स्वतंत्रता का दुरुपयोग है। यदि उस स्वतंत्रता का हमने ठीक उपयोग किया, नियंत्रण रखा तो वही स्वतंत्रता हमको लाभदायक हो गई। गाड़ी में पैट्रोल की टंकी ऐसा नहीं कर सकती। मोटर से कहो कि 'आज तो बहुत दूर जाना है, २५ गैलन ज़्यादा पैट्रोल अपने अंदर ले ले अथवा आजकल शहर मे ही हैं तो पाँच गैलन से ही काम कर ले,' तो नहीं कर सकती। उसमें तो अगर उसका पच्चीस गैलन का पेट है तो उतना ही रहेगा। लेकिन चेतन की स्वतंत्रता है। चालीस रसगुल्ले से लेकर एक रसगुल्ले तक खाने की इसकी स्वतंत्रता है। सदुपयोग दुरुपयोग दोनों कर सकता है। सदुपयोग से स्वतंत्रता बढ़ती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, दुरुपयोग से घटती है। लेकिन जब तक चेतन है तब तक स्वतंत्रता नष्ट कभी नहीं होती।

मनुष्य चाहे जितना पिछड़ा हुआ क्यों न हो जाये, उसका कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक कभी नष्ट नहीं हो सकता। बुद्धि तत्त्व उसका जायेगा नहीं। यह जो अनंतता से प्रसूत बुद्धि तत्त्व है, व्यापकता की दृष्टि है, यह बुद्धि तत्त्व मनुष्य से जाता नहीं है। अफ्रीका में घोर जंगली व्यक्तियों में चले जाओ तो उनमें भी कर्त्तव्याकर्त्तव्य की बुद्धि है। गलत हो, ठीक हो, यह विषय अलग है। लेकिन कुछ काम करने चाहिये, कुछ नहीं करने चाहिये - यह बुद्धि उनमें भी है। नरमांस-भक्षियों में भी देखा गया है कि उन्हें भी औचित्य-ज्ञान है। उनमें भी नियम हैं कि अपने समुदाय के किसी व्यक्ति को नहीं ही मारना है, प्रिय व्यक्ति को नहीं ही मारना है। अपने को लगता है कि नरमांस-भक्षियों में कुछ बुद्धि नहीं है, लेकिन वहाँ भी बुद्धि तत्त्व है। वे यह कभी नहीं समझते कि सब कार्य सब समय किया जा सकता है, कार्य गलत चाहे जितना हो। एक बार हमारे साथ रहनेवाले एक महात्मा तिब्बत की यात्रा करने गये। वहाँ बहुत से नरमांस-भक्षियों के स्थल हैं। उन्होंने उनको पकड़ लिया। बेचारे बड़े रोये-गाये लेकिन वहाँ कौन सुनता है! अंत में एक व्यक्ति उन्हें मिला जो थोड़ा-बहुत इधर की भाषा जानता था। महात्मा ने उससे कहा 'क्यों मेरे साथ यह सलूक कर रहे हो?' उस व्यक्ति ने कहा 'आप घबराइये नहीं। अभी आपको पाँच-सात दिन बाद ही मारा जायेगा क्योंकि आप दुर्लभ व्यक्ति हैं।' यद्यपि गलती है लेकिन गलती के पीछे भी बुद्धि तत्त्व काम करता है। उसने बताया 'हमारे चारों तरफ जितने गाँववाले हैं उन सबको निमंत्रण दिया जायेगा। आप काशी से आये हैं। हम लोग आप को काशीलामा कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपके खून में गंगाजल है। हम गरीब कहाँ जाकर गंगा-जल पी सकते हैं! हमारे भाग्य में वह तो नहीं है। इसलिये आपको उबालकर थोड़ा-थोड़ा पियेंगे। हमारे यहाँ भी गंगाजल को बड़ा पवित्र माना गया है, इसके लिये आपके साथ ऐसा सलूक कर रहे हैं। वैसे तो आपके ऊपर हमारी बड़ी श्रद्धा है।' महात्मा की छाती घुड़क-घुड़क होनी ही हुई! चौथे दिन सब जगह निमंत्रण घूम गया। दिन निश्चित हो गया। लेकिन जहाँ उन्हें रखा गया था, उसकी एक जवान लड़की थी, उसको उन पर कुछ दया आई कि ये लोग इसको उबाल कर पियेंगे, यह तो ठीक नहीं है। इसलिये उसने रात्रि में ही खिड़की से उन्हें भगा दिया। इस प्रकार जान बचाकर भाग आये। वह बता रहे थे 'मैंने वहाँ से जो भागना शुरू किया तो छह घण्टे तक जब तक पैरों ने बिलकुल जवाब नहीं दे दिया, भागता ही रहा, न दायें देखा और न बायें देखा। मैं समझता हूँ कि घोड़ा भी कभी ऐसे नहीं दौड़ा होगा।'

कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने में भूल हो सकती है, जैसे स्वतंत्रता का सदुपयोग या दुरुपयोग हो सकता है। बुद्धि तत्त्व का सदुपयोग और दुरुपयोग हो सकता है। लेकिन चेतन हो और उसमें स्वतंत्रता न हो, यह नहीं हो सकता। मनुष्य हो और उसमें बुद्धि न हो, यह नहीं हो सकता। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक हमेशा रहता है। यदि इसका सदुपयोग किया जाता है तब यह कर्त्तव्याकर्त्तव्य मनुष्य को सुख की तरफ, आनंद की तरफ ले जाता है। अनंत सच्चिदानंद परमात्मा का स्वरूप है। जितना-जितना बुद्धि को तुम दबाओगे उतना-उतना आनंद से दूर होगे। जितना-जितना बुद्धि तत्त्व विकसित होगा, उतना ही उतना आनंद का विकास होगा। आनंद और सुख में यही फ़र्क है। सुख होता है मन और इन्द्रियों के साधन से जबकि आनंद होता है कर्त्तव्याकर्त्तव्य की बुद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से, कृतकृत्यता के बोध से। कृत्य अर्थात् जो मेरे लिये कर्त्तव्य है 'कर्तुं योग्यं कृत्यम्' जो मेरे लिये करना उचित है उसको जब में कृत अर्थात् कर लेता हूँ, तब मन में जो कृतकृत्यता उत्पन्न होती है कि मैंने ठीक किया, उससे जो भाव बनता है वह आनंद है। इन्द्रिय और मन के द्वारा किसी इच्छित पदार्थ के साथ जब सम्बन्ध होता है तब जो होता है वह सुख है। यह सुख और आनंद का मूलगत भेद है। दोनों को कहीं-कहीं एक इसलिये कहा जाता है कि कृतकृत्यता में भी तो जिसको तुम कृत्य सोचते हो, चाहते हो, वह पूरा हुआ; इसलिये इच्छा की पूर्णता कृतकृत्यता में भी है और इष्ट पदार्थ के भोग में भी है। इच्छा पूर्ण तो दोनों जगह हुई। यह समानता, लेकिन एक में इच्छा है विषय और मन को लेकर, जब तक दूसरे में इच्छा है बुद्धि या कर्त्तव्य को लेकर।

इसलिये दोनों का अनुभव बिलकुल अलग है। विषयेन्द्रिय-संयोग से जो सुख होता है वह क्षयिष्णु है, घटता रहता है। कृतकृत्यता के बोध से जो आनंद होता है, वह कभी घटता नहीं, हमेशा स्थिर रहता है। प्रत्यक्ष अनुभव करके देखोगे कि बढ़िया से बढ़िया तुमने रसगुल्ला खा लिया, उस समय लगा बड़ा मज़ा आया, लेकिन यदि शाम तक तुमसे पूछें 'क्या यह मज़ा कायम है?' कहोगे 'अब तो उसका स्वाद ही याद नहीं है! अब तो फिर इच्छा हो रही है कि रसगुल्ला मिले।' वह सुख क्षयिष्णु है। कम होता जाता है। इतना ही नहीं, पहला रसगुल्ला खाने में जितना सुख मिलता है उतना छठा खाने में नहीं मिलता। दसवें तक पहुँचते-पहुँचते तो बहुत से लोग 'नहीं जी, नहीं जी' करके पत्तल पर ही लोट जाते हैं। लेकिन जो कृतकृत्यता है, उससे कभी भी यह बुद्धि नहीं होती कि 'बस, पर्याप्त हो गया'। तुमने एक गरीब कन्या का विवाह कराया। तुम लोग सनातनी हो, इसलिये किसी गरीब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कन्या का कन्यादान कराना अपना कर्त्तव्य जानते ही हो क्योंकि तुम्हारे पास धन है। अथवा किसी भूखे को तुमने भोजन कराया। यही तुम्हारा कर्त्तव्य अर्थात् कृत्य हुआ। पहले को भोजन कराया और फिर दूसरे को कराते हो तो क्या आनंद में कमी आयेगी? पहली लड़की का विवाह कराने के बाद दूसरी का विवाह कराओगे तो क्या आनंद कम होगा? जैसा आनंद पहले में था, वैसा ही दूसरे में है, उलटा कुछ ज़्यादा ही है क्योंकि प्रथम की स्मृति से युक्त दूसरा आया। दूसरे में सुख तो उतना ही है लेकिन 'मेरे हाथ से भगवान् ने दो-चार का विवाह कराया, मेरे हाथ से दस का सदाव्रत खुलवा लिया' - यह आनंद कभी क्षयिष्णु नहीं होगा। न यह उस काल में क्षयिष्णु है और न बाद में इसकी क्षयिष्णुता आती है। इच्छापूर्ति रूपी फल तो दोनों में एक जैसा है। इच्छापूर्ति कृतकृत्यता में भी हुई और इच्छापूर्ति विषयेन्द्रिय-संयोग में भी हुई। लेकिन एक में निरंतर क्षयिष्णुता नहीं है, उलटा पूर्व की स्मृति के अनुरोध से वर्द्धिष्णुता है, कुछ न कुछ अधिक सुख की प्रतीति होती है। इसलिये बार-बार शास्त्र कहता है कि बुद्धि तत्त्व के विकास में ही आनंद तत्त्व प्राप्त होता है।

जैसे-जैसे बुद्धि तत्त्व विकसित होता है वैसे-वैसे कृतकृत्यता आने लगती है। तब अंत में मनुष्य के मन में यह जिज्ञासा होती है कि जो आत्मतत्त्व मेरे शरीर को रात-दिन रिझ-रिझ कर शक्ति दे रहा है, जिस आत्मतत्त्व ने इस समग्र सृष्टि का निर्माण इस भाँति किया है कि जिसमें हमें सब प्रकार की स्वतंत्रता है और कृतकृत्यता प्राप्त करने के अवसर की प्राप्ति हो रही है, वह परमात्मतत्त्व कैसा है, उसको तो मैंने जाना ही नहीं। यह कृतकृत्यता ही इस प्रकार से आगे जाकर ज्ञातव्यता में परिणत हो जाती है कि जानने योग्य तो वही है जिसने इन सबको बनाया और हमें शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दी। जहाँ उसको जानने की इच्छा उत्पन्न हुई तो जब तक जानोगे नहीं तब तक चुपचाप बैठ नहीं सकते और जहाँ उसको जाना वहाँ उस परम आनंद की प्राप्ति हो गई, ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो गई।

इसीलिये दहर के बाद पुण्डरीक है। दहर अर्थात् उसकी अनंतता को छोटी-सी जगह के द्वारा देखा जाता है। कर्त्तव्य दीखता छोटा है लेकिन उसके पेट में यह तत्त्व है कि 'सारे ब्रह्माण्ड में मैं व्यापक हूँ।' यह बोध होगा तभी कर्त्तव्य-बुद्धि आयेगी, इसके बिना नहीं आयेगी। व्यापक बुद्धि जब तक नहीं है तब तक भान नहीं और व्यापक बुद्धि आने पर कृत्य की बुद्धि आती है। देखने में दहर अति छोटी चीज़ दीखती है लेकिन उसके द्वारा अनंतता का प्रकाश होता है। जो अत्यंत अल्प स्थल बताया है वहाँ एक कमल है। कोशकार कहते हैं 'पुण्डरीकं सिताम्भोजः' सफ़ेद कमल को पुण्डरीक कहते हैं। श्वेत कमल क्यों कहा? एक तो, जहाँ यह ध्यान किया जाता है वह अंगुष्ठ परिमाण का स्थल, सफ़ेद रंग का है जिसको आधुनिक चिकित्सक लोग 'साइनल नोड' कहते हैं। सूक्ष्म कारण इसका यह है कि सफ़ेद रंग सत्त्वगुण को बताता है। ज्ञातव्य को जाना तभी जा सकेगा जब तुम्हारे अंदर बिलकुल श्वेतता हो अर्थात् अपनी प्राचीन वासना और संस्कारों से अपने हृदय पुण्डरीक को रंग न रखा हो। सत्त्व होने पर ही तत्त्वदर्शन हो सकता है। एक कहानी प्रसिद्ध है: दो चींटियाँ बड़ी दोस्त थीं। एक नमक की खान में और दूसरी चीनी के गोदाम में रहती थी। चीनी के गोदामवाली ने नमक की खानवाली से कहा 'कभी मेरे यहाँ आओ, तुझे बढ़िया माल खिलाऊँगी।' एक दिन नमक की खानवाली वहाँ पहुँच गई। पहुँचकर चीनी खायी तो बोली 'थोड़ी-सी नमकीन लगती है।' उसने सोचा 'गजब हो गया! चीनी नमकीन कैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगती है?' धीरे से उससे कहा 'ज़रा अपना मुँह तो खोल।' उसने मुँह खोला, चीनीवाली ने झाँक कर देखा कि उसने मुँह के अंदर नमक रखा हुआ था! वह साथ ले आई थी कि क्या पता वहाँ कुछ मिले, न मिले। उसने अपने ढंग से हाथ डालकर नमक की डली को निकाल दिया और कहा 'अब खाकर देख।' वह बोली 'अब मीठा स्वाद आया।' जैसे नमक की डली मुँह में पड़ी हुई चीनी के स्वाद को नहीं लेने देती, उसी प्रकार जब हम तत्त्वदर्शन करने जाते हैं तो तत्त्व के विषय में हम पहले से कुछ वासना या संस्कार बना लेते हैं क्योंकि सोचते हैं कि 'तत्त्वदर्शन पता नहीं क्या करे, क्या न करे; वासना को तो बचाकर रखें, समय पर काम आयेगी। आखिर दुनिया में कुछ तो करना ही हुआ।' उसको बचाकर रखोगे तो कब तत्त्व दीखेगा, कैसे दीखेगा! रामानुज को विशिष्टाद्वैत, निम्बार्क को द्वैताद्वैत दीखेगा, किसी अन्य को कैसा ही अद्वैत दीखेगा। कहते हैं कि अद्वैत का स्वाद तो है लेकिन थोड़ा विशिष्ट है, कुछ द्वैत भी है। पहले-पहल सुनते हैं तो चित्त बड़ा घबराता है कि बात क्या है? ये लोग भी बड़े अनुभवी व्यक्ति हैं। ध्यान देकर जब अंदर देखते हैं तब पता लगता है कि संसारवाला थोड़ा-सा नमक रखा हुआ है। अद्वैत का अनुभव उन्हें हो रहा है, तभी विशिष्टाद्वैत अथवा द्वैताद्वैत कहते हैं। उनसे कहते हैं कि 'ज़रा अपना मुँह खोलो, वह नमक निकालो,' तो फिर अद्वैत ही रह जाता है। यह जो ज्ञातव्य का बोध है, परमात्म-तत्त्व को जानना है, इसके लिये हृदय कमल श्वेत चाहिये अर्थात् जितनी अपनी पहले की मान्यतायें हैं, जितनी अपनी वासनायें और संस्कार हैं, उन सबको दूर करना पड़ता है। अन्यथा उस तत्त्व को ठीक प्रकार से नहीं देख पाते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज के युग में सबसे बड़ा प्रतिबंधक क्या है? हमारे मन से तत्त्वान्वेषण की इच्छा हटकर तत्त्व की प्रयोजनीयता में चली गई है। एक होता है सत्य से प्रेम। सत्य क्या है? - इस बात को हमें समझना है। इसमें तो तत्त्वान्वेषण से प्रेम है। दूसरा है कि इस सत्य से हमें या समाज को क्या फ़ायदा होगा। उपयोगिता की दृष्टि है। गत सौ वर्षों के अंदर लोगों के मन से तत्त्व के प्रति प्रेम की भावना कम होती जा रही है। हर चीज़ में यह सोचते हैं कि इस तत्त्व से फ़ायदा क्या है? जब तक तुम प्रयोजनीयता सोचते रहोगे, लाभ सोचते रहोगे, तब तक तत्त्वदर्शन असम्भव है, हो ही नहीं सकता। क्योंकि लाभ का मतलब है कि तत्त्व को तुम कहाँ प्रयुक्त कर सको, इसलिये तुम तत्त्व को किसी प्रयोजन का साधन बना रहे हो जबकि तत्त्व ही साध्य है, साधन नहीं है। यह जो प्रयोजनीयतावाली दृष्टि है, यह मनुष्य को तत्त्वदर्शन नहीं करने देती। जो सत्य को चाहता है वह प्रयोजनीयता की चिंता नहीं करता है। कई बार आदमी आकर पूछता है कि 'महाराज! प्राणायाम करेंगे तो कहीं फेफड़े खराब तो नहीं हो जायेंगे, दिल पर ज़ोर तो नहीं पड़ेगा, हम यह ध्यान करेंगे तो कहीं दिमाग भारी तो नहीं हो जायेगा?' कुछ डाक्टर कह भी देते हैं कि ऐसा करोगे तो रक्तचाप (ब्लड प्रैशर) बढ़ जायेगा। कोई उससे आगे बढ़ता है कि 'यह जगत्-मिथ्यात्व का विचार करूँगा तो संसार से मेरा व्यवहार गड़बड़ा तो नहीं जायेगा।' इन सारे प्रश्नों का मूल है कि सत्य के प्रति प्रेम नहीं है। हमें देखना है कि प्राणायाम करके क्या अनुभूति होती है - इस सत्य को जानना चाहिये। फेफड़ा फटेगा तो फटे! इसे अनादि काल से आज तक, अंत में चिता पर रखकर फाड़ते ही रहे हो। इस भावना के सहारे सत्य के प्रति अन्वेषण हो जाता है। ध्यान करोगे, दिमाग फट जायेगा तो फट जाये। पहले भी तो पुत्र ने बाँस लेकर दिमाग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फाड़ा ही है। एक बार देखो तो सही कि सच्चाई क्या है? संसार के व्यवहार यदि नष्ट हो जायेंगे तो हो जायें। सौ वर्ष पूरे होने पर तो व्यवहार नष्ट होना ही है। दुकान आदि को छाती पर बाँध कर थोड़े ही ले जाना है! देखो तो सही कि इस विचार का फल क्या है? - यह परमात्म दर्शन के प्रति निष्ठा है। यह जहाँ नहीं होती है वहाँ घबराहट हो जाती है।

साधारण आदमियों को ही नहीं, अर्जुन जैसे महावीर को भी घबराहट हो गयी थी। उसने भगवान् को छेड़ तो दिया कि 'आप यदि मुझे अत्यंत योग्य समझते हों तो अपना सर्वव्यापक रूप ज़रा दिखाइये। 'असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।' असित ने देखा, देवल ने देखा, व्यास ने देखा, इन सबने मुझ से कहा और अब आप भी कह रहे हैं तो ज़रा दिखा देते।' भगवान् प्रेम में आ गये। कहने लगे 'पश्य मे योगमैश्वरम'। वह रूप देखने के साथ ही अर्जुन घबराया, कहने लगा 'दिशो न जाने न लभे च शर्म' न मुझे दिशायें नज़र आ रही हैं, शान्ति बिलकुल नहीं हो रही है। अपने इस रूप का उपसंहार करें। सत्य के प्रति निष्ठा होती तो कहता 'कुछ भी हो जाये, देखें तो सही कि क्या है'। बस थोड़ी-सी, दो-चार चीज़ें ही देख पाया जिसमें उसकी अपनी आसक्ति थी। भगवान् ने तो विराट् रूप दिखाया लेकिन उसने क्या देखा 'भीष्मं च द्रोणं च जयद्रथं च' ये सारे के सारे जिनका मुझे डर है, मर रहे हैं; बस इतना ही देखा, आगे नहीं देख पाया। इसलिये जब तक अपनी यह प्रयोजनीयता की दृष्टि खत्म नहीं हो जाती तब तक तत्त्वदर्शन बनता नहीं।

पुण्डरीक शब्द 'पुडि कुडि भूषणे' धातु से बना है। इन दोनों धातुओं का अर्थ भूषण होता है। जिसे तुम लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शृंगार कहते हो, उन गहनों को भी आभूषण कहते हैं। इसलिये पुण्डरीक का तात्पर्य है कि यह जो श्वेत कमल हृदय के मध्य में है यही तुम्हारा शृंगार है। बाकी शरीर के बहुत से शृंगार हैं, कपड़ों के शृंगार, गहनों के शृंगार इत्यादि। शृंगार क्या करता है? मनुष्य के सौन्दर्य को खिला देता है, सौन्दर्य को लाता नहीं है। चाहे जितना शृंगार करो, यदि सौन्दर्य है नहीं तो क्या आ जायेगा! हज़ार रुपये की साड़ी हो, हीरे चम-चम कर रहे हों लेकिन बदसूरत बेडौल शरीर हो तो क्या सुन्दर लगेगा? शृंगार तो मौजूद सौन्दर्य को खिला सकता है, सौन्दर्य का आपादन नहीं कर सकता। सुंदर चीज़ सुंदर क्यों कही जाती है? क्योंकि उसे देखने से, स्मरण करने मात्र से हृदय में आह्लाद होता है, प्रसन्नता होती है। यही सौन्दर्य है। ऐसा तो कुछ नहीं है कि इंच फुट में नापो कि इतनी लम्बी नाक और इतना लम्बा कान हो तो सुंदर होगा। बहुत साल पहले कलकत्ते के अंदर किसी ने 'कवि की नायिका' का चित्र बनाया था। कविता में कहा जाता है कि नायिका के होठ बिम्ब फल जैसे हों, नेत्र कमल के पंखुड़ी की तरह हों, नासिका तोते की तरह हो। उसने वे सारे के सारे चित्र वैसे ही अलग-अलग बना दिये और नीचे लिख दिया - यह कवि की नायिका है! इस प्रकार महाभद्दा रूप दीखेगा। इसलिये सौन्दर्य कोई लम्बाई-चौड़ाई नापने से नहीं होता है। यह इसलिये कहते हैं कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में प्रवाहित होने के कारण आज भारतवर्ष के अंदर भी सौन्दर्य की लम्बाई-चौड़ाई आने लग गई है। कोई 'मिस दिल्ली' बनती है तो कोई 'मिस इण्डिया' बनती है। उस में हर अंग की नपाई होती है। इसका नाम सुन्दरता थोड़े ही है! जिसको देखने मात्र से, जिसके स्मरणमात्र से हृदय में प्रसन्नता, आह्लाद भर जाये, उसका नाम सुंदरता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम यहाँ जानबूझ कर आह्लाद शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। क्योंकि जिस चीज़ को देखकर भोग्य-बुद्धि उत्पन्न हो जाये, समझ लेना वहाँ सुन्दरता नहीं है। सुंदरता हमें स्तब्ध करेगी, चित्तवृत्ति को एकाग्र कर देगी। उस एकाग्र चित्तवृत्ति के अंदर आनंद, आह्लाद का अनुभव होगा। जहाँ चित्तवृत्ति एकाग्र नहीं होगी, स्तब्ध नहीं होगी, जिसे देखकर अपने आपको धन्य अनुभव नहीं करोगे, उस चीज़ को पकड़ना चाहोगे, उस चीज़ को हथियाना चाहोगे, वहाँ सौन्दर्य का अनुभव नहीं हो रहा है। एक बार कानपुर में हम एक अस्पताल में थे। कोई एक अंग्रेज़ डाक्टर हमारे पास आता था। किसी भक्त ने वहाँ कमरे में फल-फूल सुंदर तरह से सजा रखे थे। बाकी लोग आते थे तो समय पर हम उसमें से उठाकर प्रसाद दे देते थे। जब वह डाक्टर आया तो उसे भी उठाकर देने लगे। उसने कहा - 'रहने दीजिये।' हमने कहा - 'ले लो।' उसने कहा 'इस सुन्दर सजावट को थोड़ा भी इधर-उधर करना मुझे सुन्दरता का अपमान लगता है। इसलिये इसे ऐसे ही छोड़ दीजिये।' यह है सौन्दर्यबोध। जहाँ सुन्दरता दीखेगी वहाँ भोग्यबुद्धि नहीं रहेगी। जब तक भोग्यबुद्धि है, तब तक सुन्दरता का अनुभव नहीं होगा। जहाँ सुन्दरता का अनुभव होता है वहाँ प्रतिक्षण नवीनता का अनुभव होता है। इसलिये बताया है 'क्षणे क्षणे यद् नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' जो चीज़ क्षण-क्षण के अंदर नवीनभाव को उत्पन्न करे वह रमणीय है, वह सुन्दर है। प्राचीन जन्म के, यहीं पहले के किये हुये, लोगों के द्वारा बताये हुये जो संस्कार पड़े हुये हैं, उन सब कारणों से हमारे अंदर किसी चीज़ को देखकर भोग्यबुद्धि उत्पन्न होती है, वह सुन्दरता का बोध नहीं है। सौन्दर्य की स्मृति, दर्शन हृदय को आह्लादित कर देता है। आजकल जो प्रचलित हैं उन्हें सौन्दर्य प्रतियोगिता न कहो, भोग्यता-प्रतियोगिता कहो तो और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात है। यह इसलिये कह रहे हैं कि अब तक तो अपने शरीर और अंगों का प्रदर्शन हिन्दुस्तान में केवल गणिकायें किया करती थी, आज भले घर की लड़कियाँ उनका प्रदर्शन करके टाइटल लेना चाहती हैं और उनके माता-पिता मन में बड़े खुश होते हैं! भूल जाते हैं कि क्या कर रहे हैं। वे बेचारे 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' के नाम से भ्रम में पड़ जाते हैं।

यह हृदय पुण्डरीक है अर्थात् आत्मा स्वयं आनंदरूप है, आत्मा के अंदर आनंदरूपता या सुन्दरता कहीं से लानी नहीं है बल्कि आत्मा की सुन्दरता हृदय कमल के अंदर प्रकट हो जाती है, प्रस्फुटित हो जाती है। यह जो उसका प्राकट्य है, यही मानो उस आत्मा को भूषित कर देता है, उसके ऊपर भूषण चढ़ा देता है, शृंगार कर देता है। है तो वह कण-कण और क्षण-क्षण में परम सुन्दर, परम आनंदमय, लेकिन जब अपने हृदय के अंदर उस परम आनंद का, परम आत्मा का अनुभव होता है तब मानो एक विशिष्ट प्रकार के आनंद का, सौन्दर्य का जनक होता है। इसी को शास्त्रीय भाषा में जीवन् मुक्ति कहते हैं। चाहे जितने तुम गहने पहनो, आभरण आभूषण पहनो, चौबीस घण्टे थोड़े ही पहने रहते हो। जब कहीं जाना हुआ, किसी से मिलना-जुलना हुआ तब अच्छी तरह से शृंगार कर लेते हो कि शेरवानी अच्छी तरह से इस्त्री की हुई हो, नीचे चूड़ीदार पायजामा हो, चुन्नट भी ठीक हो, कड़क भी बढ़िया, जूतों पर पॉलिश भी खूब चम-चम कर रही हो। लेकिन यह सारा करके हमेशा थोड़े ही रहते हो। राष्ट्रपति ने दावत दी है, वहाँ जाना है इसलिये दो घण्टे के लिये सब करते हो। ठीक इसी प्रकार विदेह मुक्ति, विदेह कैवल्य स्वाभाविक है। इसके लिये आभूषण नहीं पहनना है। लेकिन इस पुण्डरीक में जो जीवन् मुक्ति का काल है, यह थोड़ा-सा ही काल है। विदेहमुक्ति मरने के बाद अनंत काल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक है। वह तो हमारे घर के कपड़े हुये और यह हुआ कि इस विश्व ब्रह्माण्ड में बैठे हुये हृदय पुण्डरीक में शृंगार करके अपने को प्रकट करना। यही जीवन् मुक्ति का आनंद है। इसीलिये इसे पुण्डरीक कहा।

इसके अंदर मुक्ति का आनंद है, आभूषण आभरण है। उससे तुम्हारा सौन्दर्य प्रकट होता है। विचार करो, ब्रह्म से मिलने कहाँ जाओगे? है तो वह सर्वव्यापक लेकिन यदि उसकी सुन्दरता देखनी है तो कहाँ देखोगे? ब्रह्मज्ञानी के व्यवहार में ही तो देखोगे या और कहीं देखोगे? और कहीं देखने को नहीं मिलता है। वही तो इस सारे ब्रह्माण्ड का आभूषण है। उसको देखकर ही तो पता लगता है कि इस सारे संसार में सबसे सुन्दरतम वही है, मुझे वहाँ पहुँचना है। उससे ज़्यादा सुन्दर चीज़ थोड़े ही दीखनी है। स्वयं ब्रह्मज्ञानी अनुभव करता है कि 'मैं आनंदरूप, परम सुन्दर रूप इस पुण्डरीक के अंदर आभूषण पहनकर चल रहा हूँ।' आत्मा स्वभाव से सुन्दर है, चाहे कुछ न पहनो तो भी सुन्दर है। लेकिन ऐसा सुन्दर व्यक्ति भी जिस समय सजधज कर चलता है तो उसके मन में एक प्रसन्नता विशेष होती है, उसे बोध होता है कि 'मैं सजा हुआ हूँ।' उस समय बड़ी सावधानी से चलता है। थोड़ा-सा कहीं कीचड़ हो तो बचकर चलता है। राष्ट्रपति के यहाँ जा रहा है, जूता खराब हो गया तो अच्छा नहीं लगेगा, कहीं धक्का लगकर क्रीज़ खराब न हो जाये, इसलिये बड़ा बचकर चलता है। लेकिन यह सावधानी दुःखद नहीं है। मन में अपनी सुन्दरता का आह्लाद है कि मैं सजा हुआ हूँ। इसी प्रकार जब जीवन् मुक्त व्यवहार करता है तब एक भी कार्य उसका गलत नहीं हो सकता क्योंकि वह जानता है कि यही सौन्दर्य-निखार का समय है। लेकिन वह इसे कोई बोझ रूप से नहीं करता है वरन् स्वाभाविक रूप से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता है। सौन्दर्य का आह्लाद उसके मन में खिलता है। इसलिये उसके जितने व्यवहार होंगे, चलना, खाना, पीना, सब समय वह सावधान है। यह सारी सावधानी विदेहकैवल्य में तो ख़त्म होनी है। घर में बैठ जाओगे तो सजना-धजना नहीं होगा। लेकिन यह सजना-धजना अपने आनंद को प्रकट करने के लिये है। जीवन् मुक्त का अनुभव है कि सब प्राणी उस ब्रह्म का सौन्दर्य-विशेष लिये दीख रहे हैं। इसलिये 'पुडि भूषणे' से पुण्डरीक को बताकर कहा कि दहर में आनंदरूपता है, वह आनंद भी शृंगारमय है जो इस पुण्डरीक में प्रकट होता है। इसको प्रकट करने का तरीका आगे बतायेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशम प्रवचन

४.४.७६

परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को जानकर उसकी कैसे उपासना की जाये, कहाँ उसकी उपलब्धि हो - इसके स्वरूप को यहाँ दहर विद्या के द्वारा बता रहे हैं। हृदय में जो परमात्मा है, यह उसके स्वरूप की उपासना है। दहर स्थल को बताने के लिये पहले उसका केन्द्र बता दिया ब्रह्मपुर। फिर बताया कि बुद्धिवृत्ति के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है इसलिये वह दहर है। बुद्धि चूँकि अति सूक्ष्म होती है इसलिये बुद्धिरूप उपाधि के लिये दहर शब्द का प्रयोग किया। हृदय देखने में सूक्ष्म है परंतु वस्तुतः अनंतता ही उसका मूल है। बुद्धि का प्रारंभ अनंतता के बोध से हुआ है। इसलिये उसको दहर कहा। आगे कहा कि उसकी प्राप्ति का भूषण क्या है? पुण्डरीक अर्थात् आनंद ही भूषण है। जब तक उस परमात्मतत्त्व के आनंदरूप का साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक ज्ञान आभूषणवाला नहीं बनता। पुण्डरीक अर्थात् श्वेत कमल सुन्दर आभूषणवाला है। संसारी लोग भोग्य को सुंदर समझते हैं लेकिन वस्तुतः वह सुंदर नहीं है। सौन्दर्य का मूल भोग्यता नहीं है वरन् वृत्ति की लीनता है। जिस प्रकार ज्ञान का लक्षण विषयों को जानना नहीं है बल्कि विषयों के सामने आने पर मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण रहना है; 'तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां' ज्ञान का लक्षण ही यह है कि जो मनुष्य की इन्द्रियाँ और मन शांत करे। चीज़ों को जान लेना हमारे यहाँ ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार सुन्दरता वह है जिसको देखकर मनुष्य की वृत्ति आत्मा में लीन हो, उस पदार्थ को ग्रहण करने की तरफ न जाये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस आनंदरूपता की प्राप्ति अंदर की तरफ कैसे होती है - इसको बताने के लिये श्रुति आगे कहती है **'यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः'** यह जो पुण्डरीक शोभावाला है, इसके भीतर जाना है। इस हृदय पुण्डरीक के अंदर जाना है। अभी तो हम लोगों ने हृदय कमल से इन्द्रियों के द्वारा बाहर जाना ही सीख रखा है। अंदर प्रवेश करना अपने कारण की तरफ जाना है। परमात्मा ने संकल्प किया कि मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ। उस बहुत होने के संकल्प को पूर्ण करने के लिये उसने क्रमशः सृष्टि बनाई। सृष्टि के अंदर जीव ने आकर राग-द्वेष से प्रेरित होकर धर्म-अधर्म किया। उन धर्म-अधर्मों को भोगने के लिये लोकों की सृष्टि हुई। यह हुई सृष्टि-प्रक्रिया अर्थात् बाहर जाना। जब तक इसका विलोम क्रम नहीं किया जायेगा अर्थात् उल्टी तरफ नहीं जाया जायेगा तब तक वह आनंद जो अपने आपको फैलाने के लिये ही विस्तृत हुआ, प्रकट नहीं हो पायेगा। 'एकोहं बहु स्याम्' के संकल्प में छिपा हुआ था कि आनंदरूपता विस्तार को प्राप्त हो। जब तक शुद्ध अध्वा रहा, शुद्ध सृष्टि रही, उसके अंदर अज्ञान का प्रवेश नहीं हुआ, तब तक तो आनंद का विकास हुआ। मिश्र अध्वा और अशुद्ध अध्वा में आकर क्रमशः राग, द्वेष और धर्म-अधर्म की सृष्टि हुई। था यह आनंद का विकास। जब दुःख की व्याप्ति हो गई, तब विलोम क्रम की ज़रूरत पड़ी। जिन-जिन तरीकों से बाहर आये हैं उन्हीं-उन्हीं तरीकों को उल्टा करने पर वापिस अपने स्वरूप आनंद को प्राप्त करना है। किस क्रम से बाहर आये? परमात्मा को पकड़ना छोड़ा - यहाँ से बाहर आये। परमेश्वर से हम एक थे, परमेश्वर से हम हाथ पकड़े रहकर अलग हुये और बाद में हमने हाथ भी छोड़ दिया! परमेश्वर से हम एक थे, यह आनंदरूप था। परमेश्वर से हम अलग रहे लेकिन हाथ पकड़े रहे तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनंदरूप तो नहीं रहे, लेकिन आनंद के साथ हमारा सम्बन्ध बना रहा। जब तक परमेश्वर का हाथ पकड़कर रहे, तब तक मिश्र अध्वा में रहे थे। अभी दुःख नहीं आया था। लेकिन हाथ पकड़ने का मतलब है कि वह आनंद हमें सर्वथा व्याप्त करके नहीं रह रहा था। जब हमने परमेश्वर का हाथ भी छोड़ दिया तब दुःख-परम्परा प्रारंभ हुई। विपरीत क्रम में पहले हमें परमेश्वर का हाथ पकड़ना है, फिर परमेश्वर में लीन हो जाना है। इसी क्रम से वापिस अंदर जायेंगे।

अतिदीर्घ काल के बाद जब परमेश्वर का हम दर्शन करते हैं, परमेश्वर को समझते हैं, तब सबसे पहले हम भयचकित हो जाते हैं। सबसे पहले परमेश्वर की तरफ प्रवृत्ति करने पर हमारे हृदय में एक विस्मय की भावना आती है, हम स्तब्ध रह जाते हैं। अंदर ही अंदर उनसे हमको भय लगता है। यह प्रथम स्थिति है। साधक सबसे पहले जब परमेश्वर की तरफ जाता है तो उसको कैसा समझता है? वेद कहता है-

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः।।

साधक समझता है कि वह परमेश्वर इतना अधिक बलवाला है कि जिन इन्द्र, वरुण, सूर्य, यम आदि को हम संसार का शासक समझते हैं वे भी उसके सामने भय से काँपते हैं। वह समग्र सृष्टि को चलानेवाला तत्त्व है। यह सब कहने के साथ यदि हृदय से अनुभव करो तो आदमी चकाचौंध हो जाता है। अकस्मात् यदि हमको राष्ट्रपति फोर्ड के सामने चले जाना पड़े तो जबान घिघियाने लगती है! आदमी बोल नहीं पाता। यहाँ बैठे हुये व्यक्ति कहते हैं 'राजनीतिज्ञ चोर होता है, किसी काम का नहीं होता है,' लेकिन उसी समय कोई कह दे कि अमुक मंत्री आये हैं तो जबान खट बन्द हो जाती है। यदि कोई न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझकर उस समय उसके दरवाज़े में घुसने पर पूछे – 'पिताजी! आप इसी को चोर कह रहे थे?' तब आँखों से आग बरसती है, कि 'चुप रह बेवकूफ।' क्या कारण है? क्या कोई विशिष्ट कारण हुआ? उसके आने के साथ भय से तुम स्तब्ध हो गये। साधारण लौकिक राजा को देखकर यदि ऐसी भावना बनती है तो हृदय में यह विचार आने के साथ ही कि अनंतकोटि ब्रह्माण्ड को परमात्मा चलाता है, हमारे हृदय में एक विस्मय की भावना आती है, हम स्तब्ध रह जाते हैं।

आजकल लोग बड़ा डर रहे हैं। क्यों डर रहे हैं? कहते हैं कि सरकार ने अपने चर (सी आई डी, सी बी आई) लोग बहुत छोड़ रखे हैं। न जाने कौन आदमी हमारे खिलाफ शिकायत कर दे! इससे लोगों को भय लगता है। जो व्यक्ति आज से आठ महीने पहले जनसंघ का झण्डा लेकर घूमता था वह आज कांग्रेस की पूँछ बनकर घूमता है क्योंकि भय है। उन्हें याद कभी दिला दें कि तुम जनसंघी थे, तो कहता है – 'जाने दीजिये, जमाना बदल गया है। अब तो बीससूत्री कार्यक्रम है।' भय से उनके सिद्धान्त बदल गये हैं क्योंकि न जाने कौन कहाँ किस समय खबर दे देगा तो काम गड़बड़ा जायेगा। यही भय का कारण है। विचार करो, भारतवर्ष के ५६ करोड़ आदमियों के बीच ज़्यादा से ज़्यादा कितने चर होंगे? पाँच लाख साठ हजार होंगे। इतने भी मुश्किल से होंगे। तब इतना भय है। अब उस अनंतकोटि ब्रह्माण्ड-नायक का विचार करो जो प्रत्येक जीव के हृदय में चरों के द्वारा नहीं, स्वयं बैठा हुआ है। 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' पास ही नहीं, हृदय के अंदर बैठा हुआ है। ईसाइयों में तो कुछ बच भी जाओ क्योंकि ईसाई धर्मशास्त्रों का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के कन्धे पर दो देवदूत बैठे रहते हैं। व्यक्ति जो पुण्य करता है उसे एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरफवाला लिख लेता है और जो पाप करता है उसे दूसरी तरफवाला लिख लेता है। कन्धे पर ही बैठा हुआ है, ईसाई यदि दिल में गाली दे दे तो बच भी जाये! लेकिन सनातनी कहता है कि वह इतना भी मौका नहीं देता। 'हृद्देशे' अर्थात् हमारे मन में विचार आया और वह झट समझ गया। ईसाई-मत में तो देवदूत बैठे हुये हैं। वे अपनी रिपोर्ट तैयार करके भेजेंगे तब काम होगा लेकिन यहाँ कोई दूत नहीं, परमेश्वर स्वयं ही बैठा है। 'वह अनंतकोटि ब्रह्माण्ड में एकमात्र शासन करनेवाला है और हमारी प्रत्येक बात को अन्तर्यामी नारायणरूप से बैठकर जाननेवाला है, जिससे छिपकर हम कुछ नहीं कर सकते,' इस बात का विचार आते ही मनुष्य भय से संत्रस्त हो जाता है। स्तब्ध रह जाता है कि गजब हो गया। जब कभी मनुष्य संसार में किसी बात को भूलकर छिपाता है तो आश्चर्य होता है। जो वस्तुतः दण्ड देने में समर्थ है, उससे तो छिपा नहीं सकते और जिनसे छिपाते हो वे दण्ड दे नहीं सकते।

जब ईश्वर के पास होने का अनुभव करता है तब व्यक्ति की नज़र ऊपर उठती है। पहले तो भय लगता है लेकिन जब सामने है ही, तब नज़र उसकी ओर उठती है। उसकी नज़र से नज़र मिलती है तो दूसरा विस्मय होता है कि उसमें सिवाय करुणा के, सिवाय स्नेह के और कुछ भरा हुआ है ही नहीं! परमात्मा की दृष्टि में हमारे प्रति कूट-कूटकर करुणा और स्नेह भरा हुआ है। फिर ध्यान से आदमी देखता है, विचार करता है कि 'मैंने कितने पाप, कितने गलत काम किये हैं। कहीं यह करुणा दृष्टि किसी दूसरी तरफ तो नहीं देख रही है?' लेकिन जैसे-जैसे नज़र जमती है वैसे-वैसे पता लगता है कि 'अरे! जिसको मैं अत्यंत दण्ड देनेवाला समझ रहा था, वह पिघला चला जा रहा है। उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम अक्षुण्ण है।' कल्पना नहीं कर सकते परमात्मा की प्रेम-शक्ति की। भगवान् भाष्यकार एक जगह कह उठते हैं कि परमेश्वर की वह करुणामयी शक्ति अनंत माता-पिताओं से भी ज़्यादा करुणामयी है। जैसे दो-ढाई साल के बच्चे पर माता-पिता की करुणा उडल जाती है, उससे भी ज़्यादा हजारों गुणा करुणा वह परब्रह्म परमात्मा हमारे ऊपर उडेलता है। यह देखने के साथ ही मन का भाव बदलने लगता है। इसी को शास्त्र परमेश्वर की अनुग्रहशक्ति कहता है। यह परमात्मा का अपना स्वरूप है।

सृष्टि तो वह किसी दूसरों से भी करवा लेता है। ब्रह्मा को शक्ति दे दी कि तुम सृष्टि करो, विष्णु से कह दिया कि तुम स्थिति कर दो। संहार के काम के लिये भी रुद्र को नियत कर दिया कि तुम संहार कर दो। लेकिन अनुग्रह तो वह स्वयं करता है। लोक में भी ऐसा ही देखने में आता है। घर में बच्चे के न पढ़ने की रिपोर्ट स्कूल से आने पर माँ पिता को कहती है 'देखो, तुम्हारे लड़के ने क्या किया?' आशा करती है कि वह अपने लड़के को डाँटे। लड़का देर तक खेलकर बाहर से आया तो लड़के के बाप को कहती है 'आप कुछ कहते ही नहीं। यह रात के आठ बजे तक खेलता रहता है।' वही कह दे! लेकिन नहीं, ऐसे सब काम बाप से करवाती है, लेकिन जब बच्चे को मीठा खिलाना होता है तब खुद बढ़िया बादाम का सीरा बनाकर सवेरे-सवेरे कहती है 'बेटा! खा ले। आजकल इम्तिहान के दिन हैं, तू दिमागी काम बहुत करता है।' उस समय बाप से नहीं कहती कि 'मैंने बना दिया, खिला आप दें।' यह प्रेम का स्वरूप होता है। इसी प्रकार से बच्चे को जब तक संसार-चक्र में चलाना होता है तब तक साक्षात् परब्रह्म परमात्मा सोचता है कि 'चलो, जन्म देने का काम ब्रह्मा कर दे, कौन-सा अच्छा काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। ठीक है, बेचारे ने गलती की है, डाँटना तो है ही। छोटी-सी मलमूत्र की कोठरी में बन्द करना है।' कहते हैं - 'ब्रह्मा! तुम हमारा ही रूप हो, कोई फ़र्क थोड़े ही है।'

लेकिन जिस समय प्यार से जीव को वह अनंत आनंद देते हैं तब अपनी अनुग्रह शक्ति का प्रयोग वे स्वयं करते हैं। उसके लिये किसी दूसरे को नियत नहीं करते हैं। जब इस प्रेम का जीव अनुभव करता है तब उसमें एक साहस आता है। उस साहस के साथ ही साथ, अब तक उसने जो कुछ किया है उसके प्रति हृदय में सर्वथा वितृष्णा आ जाती है कि 'हाय! आज तक इन करुणामय नेत्रों को न देखकर मैंने क्यों पहले ये सब कर्म किये? कहाँ भूल गया था!' सारे संसार में इसी के लिये तो घूम रहा था कि कहीं से प्रेम मिले। जहाँ प्रेम होगा, वहीं तो आनंद होगा, और कहीं नहीं होना है। न जाने कैसे कैसे लोगों में प्रेम को ढूँढता रहा। झूठमूठ भी किसी ने दो मिनट का प्रेम दिखा दिया तो मैं अपने को तृप्त समझ लेता था। 'यह जो पूर्ण प्रेम और करुणा की दृष्टि है, यह मेरी अपनी है, पर इसकी तरफ मैंने ध्यान ही नहीं दिया' - इस निश्चय के साथ ही मनुष्य की जितनी अनात्म वृत्तियाँ हैं, सब खत्म हो जाती हैं। अनात्मा के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होती है। वितृष्णा उत्पन्न होने पर क्या होता है? जब हमको पता लगता है कि हमने गलत काम किया लेकिन माता-पिता का ऐसा अद्भुत प्रेम हमारे ऊपर है, तो शरम के मारे बच्चा जाकर माता से अच्छी तरह से चिपट जाता है और केवल रोने लगता है। बोलता कुछ नहीं है। 'मैंने गलती की, मैंने भूल की,' ऐसा कहना भी उसको अच्छा नहीं लगता। उस प्रेम के सामने सर्वथा विगलित होकर माता से चिपटकर केवल रोता है। तब माँ क्या करती है? केवल हाथ फेरती है। इस समय माँ भी कुछ नहीं बोलती है। वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी जानती है कि जब तक आँसू निकल नहीं जायेंगे तब तक इसका हृदय शान्त नहीं होगा। इसलिये वह भी उसको अपने हृदय से चिपटा कर केवल हाथ फेरती है। उसके बाद जब उसकी घिग्घी बँधने लगती है तब कहती है – 'बेटा! किस बात से घबराता है, क्यों घबराता है? अरे! गलती तेरी थोड़े ही है। गलती तो मेरी है कि मैंने तेरे को जल्दी रास्ता बताया नहीं।' यह प्रेम का सूत्र याद रखना। जहाँ प्रेम होता है वहाँ प्रिय पात्र की सारी गलतियाँ अपने में झलकती हैं। मैंने ऐसा किया होता तो इसको दुःख न होता – यह झलकता है। जहाँ प्रेम नहीं मोह होता है, वहाँ गलती सामनेवाले में झलकती है। यह प्रेम और मोह का आधारभूत भेद है। प्रेम में अनुभूति होती है कि 'मैंने क्या-क्या नहीं किया जो करना चाहिये था।' जहाँ प्रेम नहीं होता है वहाँ अनुभूति होती है कि 'इसने क्या-क्या नहीं किया जो इसे करना चाहिये था।' पहले जब माता या पिता से दूर हुआ था तब भयत्रस्त था। फिर पास गया, सन्निधि में पहुँच गया। ठीक इसी प्रकार साधक परमेश्वर में लीन होता है। शास्त्रीय भाषा में इसको कहते हैं कि पहले ग्राह्यालम्बन, फिर ग्रहण-आलम्बन और फिर ग्रहीत्रालम्बन। जब बच्चा दो-ढाई वर्ष का वत्स होता है तब जब उसे भोजन चाहिये, माँ से माँगता है, पानी भी माँ से लेता है, जो वस्त्र चाहिये वह भी माँ से लेता है। जितनी भी चीज़ें उसको चाहिये वह माँ से ही लेता है। यह अच्छी तरह से समझना : कपड़ा माँ नहीं, भोजन, पेय पदार्थ या अन्य इच्छित चीज़ें लालीपॉप, चाकलेट, खिलौना आदि पदार्थ माँ नहीं है, लेकिन माँ से चाह रहा है। जब ज़रूरत पड़ेगी तब माँ से लेता है। कोई दूसरा दे दे तो ले लेता है। कभी कदाचित् दूसरे से माँग भी लेता है। ज़ोर तो माँ के ऊपर है। यह ग्राह्यालम्बन है। इसमें परमेश्वर को ग्रहण तो कर रहा है लेकिन किस रूप से ग्रहण कर रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है? परमेश्वर की जो बाहर की उपाधि है, तद्रूप से ग्रहण कर रहा है। जब जीव परमेश्वर की तरफ मुड़ता है तब पहली वृत्ति होती है कि 'मुझे जो चाहिये, हे भगवन्! तुम्हारे से चाहिये।' जो मिलता है, उसको भगवान् से ही मिला ऐसा मानता है। किसी ने मीठी बात कही तो वह जानता है कि मेरे परमात्मा ने इससे मुझे मीठी बात कहला दी। किसी ने सुख दिया, रसगुल्ला खिलाया, तो मानता है कि इसके द्वारा परमेश्वर ने मुझे खिलाया। जो चीज़ उसे चाहिये उसे परमेश्वर से ही लेता है। परमेश्वर पर उसका ज़ोर है लेकिन परमेश्वर से अन्य चीज़ें हैं, उन्हीं को ले रहा है। समय बे समय दूसरों से भी ले लेता है। इस काल में यद्यपि जीव की जितनी भी हृदय की वृत्तियाँ हैं, अधिकतर वे परमेश्वर को विषय करती हैं, देवतांतरों को विषय नहीं करतीं, दूसरों से वह कुछ नहीं चाहता, न देवताओं से और न राजा से, लेकिन उनसे भी यदि मिल गई तो ठीक है। इसलिये किसी-किसी काल में किसी देवता की उपासना भी कर लेता है। ग्रह, नक्षत्र भी भगवान् का रूप हैं इसलिये उनकी उपासना कर दी। लेकिन प्रधान रूप से परमात्मा का सहारा लेता है। यद्यपि परमात्मा की बाहर की उपाधि को समझता है, इसलिये अन्य आलम्बन का महत्त्व कुछ नहीं रहता।

जब बच्चा दो साल से कम उम्र का होता है, छह या आठ महीने का होता है, तब वह माँ से इन सब चीज़ों को नहीं चाहता बल्कि माँ का साक्षात्रूप ही उसका भोज्य है। स्तन्य ही पीता है। इसी प्रकार से उसको माँ की ही गोद चाहिये। उसको अभी वस्त्र का बोध नहीं है। दो साल का बच्चा तो कहता है कि 'माँ मुझे वस्त्र पहना दो या मेरा कपड़ा गीला हो गया है, बदल दो,' वह माँ से चाहता है। लेकिन आठ महीने के बच्चे को ठण्ड लगती है तो माँ वस्त्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओढ़ाये ऐसा वह थोड़े ही चाहता है! चाहे माँ उसे गोद में ले, चाहे अपनी छाती से चिपटा ले, किसी भी प्रकार से माँ उसे गर्मी पहुँचा दे तो वह शान्त हो जाता है। इधर-उधर उसे हिलने-डुलने की इच्छा हो तो माँ ही उसे गोद में लेकर घूमे। माँ बढ़िया से बढ़िया पालना आदि बनाती है। दो चार मिनट उसमें रहता है, फिर रोने लगता है। कई बार माँ थक जाती है तो गुस्सा भी करती है, लेकिन उसे तो माँ ही चाहिये। दूसरा उसको कुछ भी दे लेकिन थोड़ी देर के बाद फिर उसे तो माँ ही चाहिये। माँ *से* कुछ नहीं चाहिये, माँ की बाह्य उपाधि उसे नहीं चाहिये, बल्कि माँ स्वयं ही चाहिये। वही उसका भोज्य है, वही उसका वस्त्र है, वही उसकी सब चीज़ों का एकमात्र केन्द्र है। जब वह नहीं मिलेगी तब वह भड़भड़ायेगा। मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार वर्तमान बच्चों में अधिकतर अनुशासन-हीनता, बच्चों के अंदर बड़ों के प्रति भावना की कमी, स्वयं अपने अंदर अशांत रहने की भावना और अशान्ति उत्पन्न करने की भावना इत्यादि का मूल कारण है कि वह जो बच्चे की प्राथमिक अवस्था है, उसमें उसने संतुष्टि का बोध नहीं किया। माँ नहीं मिली, मम्मी नाम की एक जाति होती है, वह मिली! वह जो जीवन के उषःकाल का असंतोष है, अनुपलब्धि है, वह यावज्जीवन जीव को सालती रहती है, उसे शांत नहीं रहने देती। उसे संतुष्ट नहीं होने देती। उसे साक्षात् माँ चाहिये, अन्य आलम्बन नहीं। किसी दूसरे आलम्बन को लेने की कोई सम्भावना नहीं। उसी का दर्शन चाहता है, उसी की उसे आकांक्षा है। समग्र इन्द्रियों का विषय बस माँ ही है। दूसरा चाहे जितना प्यार से बुलाये, कभी चाचा, कभी नानी चाहे जितना 'बेटा, बबुआ' कहकर प्यार से बुला लें, लेकिन वह आँखें फेरकर माँ को ही ढूँढ रहा है। जहाँ माँ ने आवाज़ दी, अपनी आँख उधर ही स्थिर करता है। समग्र इन्द्रियाँ माँ को ही विषय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती है, माँ के सिवाय उसका और कुछ नहीं है। इसको ग्रहणालम्बन कहते हैं जिसमें माँ को ही ग्रहण करता है।

इसके आगे ग्रहीत्रालम्बन अर्थात् उत्पन्न होने के पहले गर्भ में जब बच्चा है तब ग्रहीता से एक है। गर्भस्थ शिशु या भ्रूण माँ से अभिन्न हुआ माँ को भी नहीं चाहता; वहाँ चाहने का प्रश्न ही नहीं चूँकि उससे एक है। क्या वह माँ को माता के रूप से देख सकता है? फिर किस रूप से देखता है? अपने स्वरूप से ही देखता है। माता रूप से अविषय हुआ भी स्वरूप से विषय है। यहाँ जाकर वह एकता को प्राप्त हुआ। यह ग्रहीत्रालंबन उपासना है। समग्र कामनायें वहाँ हैं ही नहीं। अपने आप ही माता से एक है, माता स्वयं ही सब कुछ उसे दे रही है। यह अधिक से अधिक नज़दीक जाना हुआ।

जब जगत् अवस्था से परमेश्वर के समीप जाना शुरू करता है तब इन्हीं तीन साधनों में से निकलता है। पहले तो परमेश्वर का परम ऐश्वर्य समझा और भयत्रस्त हो गया। फिर उनकी करुणा को देख लिया और अब उनके साथ चल दिया, पास जाकर चिपट गया। अनंत जन्मों के पाप आँसुओं के रास्ते से निकल गये। माँ ने हाथ फेर दिया। यहाँ तक तो अभी उपासना की गहराई नहीं आई । प्रारम्भ तो है लेकिन असली उपासना उसके बाद चलनी है। जब तक पाप-पुण्य, धर्माधर्म आदि सारे बटोरे हुये सिर पर रखे हों तब तक उपासना कहाँ ! उपासना में तो परमेश्वर के पास बैठना है। पहले तो हुआ कि परमेश्वर से ही सब कुछ लेना, और किसी देवतांतर से नहीं लेना। फिर धीरे-धीरे जब वृत्ति एकाग्र होने लगती है तब वह परमेश्वर को ही देखता है, परमेश्वर को ही सुनता है। रात-दिन उसी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनंद का चर्वण करता है। इस दशा को बताते हुये आचार्य उत्पलदेव एक जगह लिखते हैं कि अतिदीर्घ काल तक कष्ट पूर्वक तप करनेवाले, अत्यंत कष्ट से भरकर जिन्होंने खूब क्लेश को प्राप्त किया ऐसे मुनि देवों के लिये तो आप दुरासद हैं। घोर तपस्या करने पर भी उन्हें भगवद्-दर्शन नहीं होता है। भगवान् भी इसीलिये गीता में कहते हैं 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्'। इससे विपरीत, अशेष वृत्तियों के अंदर, जो-जो मन की वृत्ति बनती है उसमें जो आपको ही समारूढ देखता है उसकी दृष्टि से आप ओझल होते नहीं। वह कोई कष्ट नहीं करता, कोई क्लेश या तप नहीं करता। सहज वृत्ति से जिस ढंग से आप सामने आते हैं, बस आपको पहचानता रहता है। जो सब वृत्तियों के अंदर आपको देखता है उसके लिये आप सुलभ से सुलभ हैं क्योंकि कोई क्षण ऐसा नहीं होता जिसमें वह आपका साक्षात्कार न कर रहा हो। कभी आप भावरूप से तो कभी आप ही अभावरूप से आते हैं। भाव और अभाव दोनों वृत्तियों को लेकर आनेवाले आप ही हैं। पति दो हज़ार रुपये का बढ़िया सूट, नैक्-टाई और टोप लगाकर आ जाये तो और गम्छा पहनकर तेल मालिश कराकर आ जाये तो, क्या पत्नी को लगता है कि कोई दूसरा आदमी आ गया? इसी प्रकार आप भावरूप से आयें, अभावरूप से आयें, आप मेरी पहचान से छूटनेवाले नहीं हैं। मैंने अच्छी तरह आपको पहचान रखा है। आप अनेक रूप धारण करके आते हैं, मैं सब रूपों में आपको जानता हूँ। जैसे बच्चा माता को ही विषय करता है वैसे ही यह इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सबके द्वारा उसी को विषय करता है। इसी को नाम-रूप का बाध कहते हैं। जैसे पत्नी पति के सूट का बाध करके पति को ही विषय कर रही है और पति के तेल और गम्छे का बाध करके पति को ही विषय कर रही है। वह बैठकर ऐसा थोड़े ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोचती है कि एतद्देशकालावच्छेदेन दोनों के नाक आँख इत्यादि एक जैसे हैं, बाकी सब कपड़े बदल गये हैं - ऐसे भाग-त्याग-लक्षणा नहीं करती है। देखते ही जानती है कि मेरा प्रियतम है। वृत्ति का यह रूप जब जीव को प्राप्त हुआ तब उसकी ग्रहणालम्बन दृष्टि हो गई। यह उपासना का अगला क्रम है जिससे और सन्निहित हुआ। जैसे भ्रूण अंतःप्रविष्ट हो गया, वैसे ही जब इसके भी अधिक आगे जाता है तब उसे अहं-रूप से ही, स्वरूप से ही ग्रहण करता है, 'मैं ही वह हूँ' - इस रूप से ग्रहण करता है। इस स्वरूपग्रहण के आनंद के लिये ही यह समग्र सृष्टि हुई।

पुराणों में कथा आती है कि एक बार भगवान् शंकर और पार्वती अंदर अपने आनंद में रत थे। अकस्मात् किसी कारण से भगवती बाहर आ गई। चूँकि अंतःपुर से, भगवान् शंकर के पास से आई थी, उनके सारे बाल बिखरे हुये थे। आँखों के अंदर ज़बरदस्त मस्ती छाई हुई थी। शरीर भर से पसीना निकल रहा था। सिवाय भगवान् शंकर के और किसी के देखने लायक वह रूप था ही नहीं। जैसे ही बाहर निकलीं तो दरवाज़े के ऊपर भृंगी और महाकाल दोनों द्वारपाल बैठे हुये थे। भगवती के मन में कुछ थोड़ी-सी लज्जा का अनुभव हुआ और साथ में गुस्सा भी आ गया। कहने लगीं कि 'ठीक है, तुम हमारे बच्चे हो, हो तो शुद्ध लेकिन थोड़ी शरम और मर्यादा भी तो करनी चाहिये। अब तुम बड़े हो गये हो। ऐसा नहीं करना चाहिये। इस प्रकार जो तुमने मेरी तरफ नज़र करके देखा तो तुम मनुष्य लोक में जाने लायक हो। इसलिये तुम मनुष्य बन जाओ।' महाकाल और भृंगी रोने लगे और कहने लगे 'आपने निरपराधों को दण्ड दिया। भगवान् शंकर और आपकी आज्ञा से ही हम द्वारपाल बनकर बैठे हैं। चाहिये तो यह था कि आप अपने अंदर से ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैयार होकर आतीं। हम तो आपके द्वारा ही काम पर लगाये हुये यहाँ बिठाये गये हैं। बिना अपराध के आपने हमको यह शाप दिया और शुद्ध तो आप हमको कह ही रही हैं! आपका वचन पूरा हो लेकिन साथ में हम भी कह देते हैं कि पैदा हम होंगे लेकिन जब मनुष्य शरीर से आप और भगवान् शंकर हमको पैदा करेंगे तब पैदा होंगे! आपने जो बात कही वह तो अन्यथा हो ही नहीं सकती।' उनको मनुष्य लोक में पैदा तो होना ही था।

मनुवंश के अंदर पौष्य नाम का एक राजा था। उसकी तीन पत्नियाँ थीं लेकिन पुत्र किसी से उत्पन्न नहीं हुआ। बहुत बड़ा सार्वभौम राजा था। उसने एक-एक करके तीन विवाह किये लेकिन पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। तब उसने भगवान् शंकर की आराधना की। भगवान् शंकर की कृपा से उसको एक फल मिला। भगवान् शंकर ने उसको फल देकर कहा 'यद्यपि तुम्हारे कोई पुत्र होने की सम्भावना तो नहीं है लेकिन मैं अपने ही किसी गणविशेष को तुम्हारे पास भेजूँगा'। वह फल लेकर घर आया। तपस्या के बाद आया था, सोचा 'फल एक है, रानियाँ तीन हैं, क्या करूँ?' उसने फल के तीन टुकड़े करके तीनों को खिला दिया। धीरे-धीरे तीनों के गर्भ रहा। बड़ी रानी ने जब बच्चे को जन्म दिया तो केवल सिर तक पैदा किया। बीचवाली से मध्य भाग पैदा हुआ और नाभि से नीचे तक का भाग तीसरी पत्नी से उत्पन्न हुआ। राजा बड़ा घबराया कि यह क्या हो गया! भगवान् शंकर के मन्दिर में जाकर रोने लगा कि भगवन् मैंने तो बड़ी गलती की। उसने सोचा था कि तीन ही हो जायेंगे। यह नहीं समझ लेना कि कालाबाजारी आज ही शुरू हुई है! यह अनादि है। अब तीनों में से एक का भी काम नहीं बन रहा था। भगवान् शंकर के सामने रोने लगा तो भगवान् शंकर ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा 'कोई बात नहीं, तुम जाकर तीनों टुकड़ों को मिला दो, योजना कर दो। तुम्हारा एक पुत्र हो जायेगा।' उस फल के अंदर भगवान् शंकर ने स्वयं ही अपने अंश से अपने गण को दे दिया अर्थात् उस फल में भगवान् शंकर ने स्वयं ही अपना अंश दिया। इसलिये उसको देखकर राजा ने उसका नाम चंद्रशेखर रख दिया और चूँकि वह तीन माताओं से पैदा हुआ था, तीनों से एक-एक हिस्सा पैदा हुआ था, इसलिये 'अतस्त्रयम्ब नामाभूत्' उसका नाम त्रयम्ब पड़ा।

धीरे-धीरे बड़ा हुआ, पंद्रह साल की आयु हो गई तो उसकी योग्यता को देखकर पौष्य राजा ने विचार किया कि अब मैं वानप्रस्थ ग्रहण करके परमात्मा के भजन में लगूँ। इसलिये राजा ने उसका पंद्रह वर्ष की आयु में राज्याभिषेक कर दिया। उसे राजा बनाकर वह एकांत में तपस्या करने चला गया। अब वह उस ब्रह्मावर्त का राजा हो गया। उसकी राजधानी का नाम करवीर था। दृषद्वती नदी के तीर पर ही वह राजा होकर आनंद से रहने लगा। ये नाम याद रखना। वहाँ से कुछ दूर पर भगवती देवी की आराधना करके राजा कुकुस्थ ने एक पुत्री को प्राप्त किया। उसकी पत्नी का नाम मनोन्मनी था। वह भी भगवती की कृपा से ही उत्पन्न हुई। उसे भी भगवती ने ऐसा ही फल दिया और उसमें भगवती का ही अंश था। लड़की का नाम तारावती रखा गया। वह उधर बढ़ रही थी। जब राजा चन्द्रशेखर सत्रह साल का हुआ, उसी समय तारावती का स्वयंवर रचा गया। उसमें चंद्रशेखर भी गया। तारावती ने भगवती की आराधना करके पूछा कि 'बहुत से राजा आयेंगे, मेरे को क्या पता कि किससे विवाह करूँ?' भगवती ने चिह्न बता दिया और कहा 'चन्द्रशेखर आयेगा, तुम उसी का वरण करना।' स्वयंवर में उसने उसका वरण कर लिया और उसके साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका विवाह हो गया। चूँकि दोनों भगवान् शंकर और भगवती पार्वती के अंश से, उन्हीं की कृपा से उत्पन्न हुये थे, उन्हीं के गण थे, उन्हीं के स्वरूप थे, इसलिये भगवान् शंकर और भगवती ने उनके अंदर प्रवेश करके पुत्र उत्पन्न किया। उनसे जो युग्मपुत्र उत्पन्न हुये वे भृंगी और महाकाल थे।

दोनों बड़े हुये तो राजा चंद्रशेखर ने उनको कहा कि अब आगे तुम राज्य करो। वे हँसकर कहने लगे कि 'हमारा तो केवल सोलह वर्ष तक का जीवन यहाँ है, उसके बाद हम चले जायेंगे।' राजा ने पूछा कि यह तुमको कैसे पता लगा? उन्होंने कहा कि 'हम ऐसे पैदा नहीं हुये हैं। हमको तो मनुष्य बनने का आदेश मिला था इसलिये पैदा हुये हैं। मनुष्य की पूर्णता सोलह वर्ष की उम्र में हो जाती है। इसलिये सोलह वर्ष की उम्र में हम यहाँ से चले जायेंगे।' यह सुनकर राजा और रानी ने देखा कि इतने योग्य पुत्र ऐसा कह रहे हैं तो उनसे पूछा कि तुम हमें पूरा वृत्तान्त बताओ। उन्होंने कहा 'अभी हम नहीं बतायेंगे। जब सोलह वर्ष के होंगे तब बतायेंगे।' धीरे-धीरे जब सोलह वर्ष के हुये तब उन्होंने बताया कि 'हम भृंगी और महाकाल हैं और इस-इस प्रकार से भगवती के शाप से उत्पन्न हुये लेकिन तुम भी अपना स्वरूप विचारकर देखो तो तुमको पता लगेगा कि तुम कौन हो?' भृंगी और महाकाल ने कहा कि 'आप दोनों अपनी आँखें मींचो।' इस प्रकार थोड़ी देर तक माता-पिता को बैठने को कह दिया। फिर कहा 'अब आँखें खोलकर एक-दूसरे को देखो।' पिता आँख खोलकर देखते हैं कि सामने पार्वती और माता देखती है कि सामने भगवान् शंकर बैठे हुये हैं। दोनों को स्पष्ट भान हो रहा है कि मैं ही शंकर और मैं ही गौरी हूँ। ऐसा उन्हें विज्ञान अर्थात् अनुभव हुआ। उनके वंश से उत्पन्न अतः उनसे भिन्न नहीं, उनसे अभिन्न हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब भृंगी और महाकाल वहाँ से चलने लगे तो इन्होंने कहा कि 'हम भी अब तुम लोगों के साथ चलते हैं।' तब भगवान् शंकर ने उन्हें प्रकट होकर आदेश दिया कि 'ऐसा नहीं करो। जब तक तुम्हारा शरीर है तब तक अपने को मनुष्य समझ मानुषी भाव में रहो। फिर तुम हमारे दिव्य लोक को वापिस आओगे। ये दोनों तो शाप से आये हैं इसलिये इनको सद्यः वापिस जाना है, लेकिन तुम हमारी कृपा से, परमेश्वर की कृपा से उत्पन्न हुये हो इसलिये तुम्हें पूरे प्रारब्ध का भोग करके आना है।' भृंगी और महाकाल वहाँ से जाकर पुनः अपने अधिकार पर आरूढ हो गये। समय आने पर वे लोग भी उम्र पूरी होकर भगवान् शंकर और पार्वती के रूप में लीन हो गये।

विचार करो कि यह कथा क्या बताती है? भगवान् शंकर और पार्वती एकांत में नर्मकेलि कर रहे हैं। शिव आनंदरूप हैं। शिव कल्याण को बताता है। भगवती चिति या चेतनता को बताती है। चेतन और आनंद दोनों एक हुये समरस भाव में हैं। हम लोग समझते हैं कि चेतनता अलग है और आनंद अलग है। वेद कहता है 'विज्ञानम् आनंदं ब्रह्म' चेतन और आनंद की सामरस्यावस्था है। एकता की इस अवस्था में किसी काल में चिति अर्थात् 'एकोहं बहु स्याम्' यह चेतन की वृत्ति बाहर निकलती है। कहाँ से बाहर निकलती है? लीन होने के पहले क्या होता है? द्वारपाल कौन हैं? जब तुम समाधि में जाते हो तब चिदानन्दरूप की प्राप्ति करते हो। अर्थात् तुम अपने आप में लीन हो जाते हो तो उसके पहले दरवाज़े पर चित्त की एकाग्र वृत्ति और साक्षि-भाव को छोड़कर जाते हो। भृंगी भँवरे को कहते हैं। भँवरा एकाग्र वृत्ति से पुष्प के रस का पान करता है इसलिये भृंगी एकाग्र वृत्ति है। महाकाल साक्षी तत्त्व है क्योंकि जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकाल सबको खत्म करता है, वैसे ही सारी चीज़ें अंत में साक्षी के द्वारा ही खत्म होती हैं। अनंत कोटि ब्रह्माण्ड का बाध करनेवाला साक्षी ही तो है। चिदानन्द के अंदर समरसता आती है तो दरवाज़े पर साक्षिभाव और एकाग्रता बैठे हुये हैं। जब चित्तवृत्ति बाहर आयेगी तो उस समय चेतनता चूँकि आनंद से निकली हुई है, इसलिये उस पर कोई बंधन का अनुभव नहीं हो रहा है। चेतना सर्वथा स्वतंत्र होती है। उस समय चेतना के ऊपर आनंद की मस्ती छाई होती है। इसलिये उसके शरीर से पसीना टपक रहा होता है। पसीना स्नेह है, प्रेम है। स्नेह और आनंद से भरी हुई को एकाग्रता और साक्षी ने देखा। वह तो साक्षात् चिदानंद से अभिन्न है लेकिन इन्होंने इस स्वरूप में देख लिया। उसे ध्यान से देखने का मतलब है कि उसे समझना चाहते हैं। साक्षी और एकाग्रता जो उस आनंद के साधन हैं वे उसे देखना चाहते हैं। प्रायः साधक यह भूल करते हैं कि उसे मन से समझना चाहते हैं कि कैसा था? चूँकि उसे ध्यान देकर देखना या पकड़ना चाहा इसलिये कहा 'ऐसे नहीं, मानुषी भाव को प्राप्त करो अर्थात् अंतःकरण में प्रवेश करके मेरे इस स्वरूप को समझो।' वे लोग कहते हैं ' मानुष भाव को प्राप्त कर लेंगे। मनुत इति मनुः - मनु तो मन को कहते हैं। अंतःकरण में हम लोग पैदा तब होंगे जब आप लोग होंगे। आप के बिना हम लोग भी पैदा होनेवाले नहीं हैं।' बिना उस परब्रह्म परमात्म-तत्त्व के कहाँ साक्षी और कहाँ चित्त की एकाग्रवृत्ति रहेगी!

पोष्य कुल के अंदर चंद्रशेखर उत्पन्न होता है। जो अत्यंत पुष्ट हो उसे पोष्य कहेंगे। 'पुष्णाति' पंचमहाभूत ही सारे संसार का पोषण करते रहते हैं और अनादि काल से पोषण कर रहे हैं। न जाने कितना इन पंचमहाभूतों से लोगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने बना लिया, लेकिन इनका ऐसा 'स्टाक रजिस्टर' है जिसमें कभी 'निल' नहीं आता। यह पंचमहाभूतरूप जो पुष्प है उसका चिह्न मन है। 'चन्द्रमा मनसो जातः' मन ही हम लोगों का चंद्रशेखर है जो हमारे मानुष भाव में आने का साधन बनेगा। मन ही उसमें प्रधान है। इसलिये चंद्रशेखर उत्पन्न हुआ। उधर, मनोन्मनी के द्वारा तारावती उत्पन्न हुई। मन को उन्मन करनेवाली चीज़ तारावती है। 'तारं प्रणव उच्यते' ओंकार को ही तार कहते हैं। अंतःकरण का सम्बन्ध ॐ के साथ हुआ अर्थात् ओंकार की उपासना शुरू की। लेकिन चन्द्रशेखर तीन टुकड़ों में उत्पन्न हुआ है। जब तक ये तीनों मिलते नहीं तब तक काम नहीं बनता। स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों मिलने ज़रूरी हैं। जब ये मिलकर मनोन्मनी से उत्पन्न तारावती से सम्बन्धवाले होते हैं तब इनके अंदर धीरे-धीरे इन तीन वृत्तियों की उत्पत्ति होती है अर्थात् पहले उनका योग, उस योग के द्वारा चित्त की एकाग्रता और अंत में साक्षिभाव। तब जैसे भ्रूण गर्भ में चला जाता है वैसे चित्त और आनंद का सामरस्य हो जाता है जहाँ केवल अभिन्न रूप की प्राप्ति होती है। जब यह प्राप्ति हो गई तब चन्द्रशेखर अपना स्वरूप समझ लेता है, अंतःकरण भी जान लेता है कि मैं कौन हूँ। इसके द्वारा जब पूर्णता को प्राप्त कर लेता है तो जब तक शरीर का प्रारब्ध है तब तक शरीर का व्यवहार है, उसके बाद फिर अखण्ड मुक्ति है। इस प्रकार उपासना के क्रम से जब धीरे-धीरे बढ़ता है तब अंत में जो शिव-शक्ति सामरस्यावस्था है, चिदानंदमयता है उसकी प्राप्ति हो जाती है। तभी जीव कृतार्थ होता है। अंदर जाने का प्रकार और वह पुण्डरीक कैसा है, इस पर आगे विचार करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकादश प्रवचन

५.४.७६

भगवती श्रुति परमार्थ तत्त्व के स्वरूप को भली प्रकार से समझने के बाद उस तत्त्व में निरंतर स्थिति प्राप्त करने में सहायक दहरोपासना का प्रतिपादन कर रही है। शरीर के हृदय स्थल के अंदर जो दहर अर्थात् अत्यल्प आकाश और उसके अंदर जो पुण्डरीक और उस पुण्डरीक के आकाश के भीतर जो और सूक्ष्मतर आकाश है, उस पर दृष्टि को ले जाना है। पहले संसार-भर में घूमनेवाली दृष्टि को दूसरी जगह से घुमाकर कहाँ स्थिर किया? अपने शरीररूपी स्थल में अर्थात् जो वृत्ति सारे संसार की तरफ दौड़ रही थी वहाँ से वृत्ति को हटाकर पहले अपने शरीर में लायें। यह अंदर की तरफ चलने का पहला सोपान या पहली सीढ़ी हुई। स्वभावतः सुख दुःख पदार्थ इत्यादि हम लोग कहाँ देखते हैं? इन्हें बाहर देखते हैं और इस अभ्यास के कारण ही तो परमेश्वर को भी बाहर ढूँढ रहे हैं। जब वहाँ से दृष्टि हटाकर शरीर में केन्द्रीभूत करोगे तब यह भटकना छूटेगा। शरीर में केन्द्रीभूत करने के बाद शरीर के अंदर जहाँ अनुभूति का केन्द्र हृदय है, वहाँ ले गये। सुख-दुःख आदि की तीव्रता का अनुभव हमेशा हार्दाकाश (हृदय) में होता है। संसार में घूमनेवाली दृष्टि को पहले शरीर में लाना होगा, तब आगे शरीर में उसका अन्वेषण करना पड़ेगा। शरीर में लाने के बाद जो अन्वेषण प्रारंभ होता है उसी को शारीरक-मीमांसा नाम से कहा गया। ब्रह्मसूत्र-भाष्य में जगह-जगह भगवान् भाष्यकार कहते हैं 'शारीरकमीमांसायाम्'। शरीर में कहाँ ढूँढें? अनुभूति के केन्द्र हृदय के अंदर। हृदय के अंदर जो कमल है उस कमल के मध्य में जो अत्यल्प आकाश है, उस आकाश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अन्वेषण करना है। जो उस कमल के ऊपर बैठा है वह स्थानी है और कमल स्थान है।

यह कमल स्वभाव से छिपा हुआ है। बन्द कमल के अंदर क्या है इसकी प्रतीति नहीं होती। उसकी खुशबू तो आती है अर्थात् बन्द कमल का ज्ञान सुगन्धि के द्वारा तो होता है, लेकिन जब तक कमल खुला नहीं तब तक कमल अंदर कैसा है - इसका ज्ञान नहीं होता है। इसी प्रकार से इस हृदय कमल के अंदर जो आत्मा की, चेतनता की सुगन्धि है, वह तो बन्द कमल के आकार में हो रही है। जीव जब तक बन्द है, उसका कमल बन्द है, तब तक 'मैं चेतन हूँ' यह भान तो नहीं होता है, लेकिन चेतनता की सुगंधि उस कमल में से बंद होने पर भी निकल रही है। लेकिन यह चेतनता किसकी है? यह भान नहीं हो रहा है। इसलिये कोई कहता है यह चेतनता शरीर की ही है, जैसे लोकायत चार्वाक लोग मानते हैं कि चेतनता शरीर की ही धर्म है। 'मैं चेतन हूँ' यह तो उसको भी मानना पड़ता है लेकिन यह चेतनता किस की है, वह 'मैं' कौन है जिसकी यह चेतनता है? आधुनिक चार्वाक भी यही कहते हैं कि चेतना स्नायुसंघात की एक बाह्य उपलब्धि है, हमारे स्नायुमण्डल की बाह्य उपलब्धि का रूप चेतना है, उससे भिन्न कुछ नहीं है। प्राचीन चार्वाक स्नायुमण्डल तक न जाकर, कत्था-चूना मिलकर जिस प्रकार पान में लाल रंग उत्पन्न होता है वैसे ही शरीर में महाभूतों के एक विशिष्ट परिमाण में मिल जाने से चेतना उत्पन्न हो जाती है - यह मानते थे। कुछ लोग शरीर में चेतना नहीं मानकर शरीर के अंदर कोई एक जीव तत्त्व है जो चेतन है - ऐसा मानते हैं। अद्वैत वेदांत को छोड़कर सभी ऐसा मानते हैं कि जीव का धर्म चेतना है। जीव का धर्म यदि चेतना हो तो लोगों को ऐसा भान क्यों होता है कि 'मैं अज्ञानी हूँ, मैं जड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूँ, मैं मूर्ख हूँ'? ऐसा कभी-कभी भान होता है। इसलिये वेदान्त के जो अत्यधिक नज़दीक हैं जैसे कुमारिल भट्ट आदि मीमांसक, वे कहते हैं कि जीव में दोनों मान लो : जैसे जुगनू का एक हिस्सा अंधकाररूप और दूसरा हिस्सा प्रकाशरूप होता है इसी प्रकार ज्ञानरूप भी मैं हूँ और अज्ञानी भी मैं हूँ। जड और चेतन दोनों का मिला हुआ रूप ही जीव है लेकिन चेतना है जीव का नाम। वेदांती कहता है कि हिम्मत करके इस कमल को खोलकर देखो तो सही, कि आखिर यह सुगन्धि है किस की! कमल से सुगन्धि आ रही है, हृदय में चेतना का अनुभव हो रहा है और उस चेतन से ही संसार के सारे व्यवहार चल रहे हैं। इस विषय में तो चार्वाक से लेकर मीमांसक तक सबको एकमत होकर मानना ही पड़ता है क्योंकि प्रत्यक्षसिद्ध, अनुभवसिद्ध है। सारा व्यवहार चेतना से हो रहा है और उस चेतना का केन्द्र सबको अपने अंदर शरीर में ही मानना पड़ता है। वेदांती हिम्मत करके कहता है कि इस कमल को खोलकर देखो तो सही, जुगनू को खोलकर देखो तो सही कि सारा जुगनू प्रकाशरूप या सारा ही अंधकाररूप या सारा ही जुगनू उभयरूप है।

यह कमल खुले कैसे? शास्त्रकारों ने बताया है कि यह जो कमल है इसमें परमेश्वर बैठा हुआ है, जिस चेतन परमेश्वर से इस शरीर और समग्र संसार का व्यवहार चल रहा है। अतः वही परमेश्वर का मन्दिर है। संसार में कई वादी, कई प्राणी इसीलिये वेदांत के परमेश्वर, वेदान्त के मन्दिर को नहीं हटा सकते क्योंकि समग्र व्यवहारों का कारण कौन है? सबको मानना पड़ेगा कि शरीर में रहनेवाली चेतना ही समग्र व्यवहारों का कारण है। इस विषय में कोई संदेह क्या किसी के मन में हो सकता है! चाहे जितना बड़ा नास्तिक हो वह भी कहेगा कि 'मैं चेतन हूँ तो व्यवहार कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहा हूँ।' यह सीधी-सी बात है। इसलिये समग्र व्यवहार का एकमात्र केन्द्र चेतना है और वह चेतना शरीर में ही उपलब्ध होती है इसमें भी कोई संदेह नहीं है। इसको ही वेदान्ती कहता है कि बस, जहाँ तुमको हृदय में चेतना का अनुभव होता है, यही परमेश्वर का मन्दिर है। इस मन्दिर को ज़रा खोलना है, मन्दिर का दरवाज़ा बन्द है, बस इतनी-सी बात है। इस कमल को विकसित करना होगा। इसके विकसित होने का मतलब है कि स्वयं कमल अपने अंदर से सूर्य को देखकर अपने पत्तों को खोल दे, विकास का यह मतलब है। लेकिन कुछ बेवकूफ़ लोग फूल को पकड़कर उसके पत्तों को खींचते हैं! कमल के दलों को खींच-खींचकर वे समझते हैं कि हम खोल देंगे। ऐसा करते भी हैं, लेकिन इसे पुष्प का विकसित होना नहीं कहा जाता है। बुद्धिमान् फूल को देखते ही समझ जाता है कि यह छेड़ा हुआ फूल है। उसमें वह सुन्दरता नहीं होती। इसी प्रकार हठयोग आदि के अभ्यास से बहुत से लोग कुण्डलिनी की टक्कर से अथवा अन्य विधियाँ हैं जिनके द्वारा इस कमल को जबरदस्ती खींचकर खोल देते हैं। इस प्रकार से खुल तो जायेगा लेकिन खुलने पर भी इसके अंदर के पराग को स्पष्ट रूप से नहीं देख सकोगे।

क्या कारण है कि भिन्न-भिन्न योगियों के अनुभव यदि हार्दाकाश या सहस्रार के बारे में लें तो उनमें एकमतता नहीं होती? हमारे यहाँ भी जितने मध्यकाल के अभ्यासी लोग हुये उन सबके अनुभवों में भिन्नता है। कबीर उसी का वर्णन एक प्रकार से करेंगे, दादू उसी का वर्णन दूसरे प्रकार से करेंगे। उसी का वर्णन मलूकदास तीसरे प्रकार से करेंगे। कुछ लोग बैठे-बैठे उन सबका समन्वय लगाते रहते हैं। ठीक जैसे बाहर परमेश्वर कहाँ है - इस विषय के अंदर लोगों की अटकलें लगती रहती हैं। यहाँ से कितने करोड़ मील वैकुण्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोक है, उसके आगे कितने करोड़ मील गोलोक है, - यह भिन्न-भिन्न जगह वर्णित होने से लोग पूछते हैं कि तुम लोग अपनी ही बात ठीक क्यों मानते हो? इनका कुछ समन्वय बिठाओ। समन्वय उसका केवल एक है 'यं भावं दर्शयेद् यस्य तं भावं स तु पश्यति।' जिस भाव को जिस रूप से किसी ने तुम्हारे मन में बैठा दिया, वैसा ही तुम समझने लग गये, वैसा ही तुमको दीखने लग गया। इसलिये किसी ने जैसा बाह्य जगत् में इन कल्पनाओं को करना प्रारंभ किया, ऊपर से जो उसके मन में बैठाया गया, तदनुकूल उसने वृत्ति एकाग्र की और तदनुकूल उसे प्रतीति हो गई। ठीक इसी प्रकार से जिस योगी ने जिस ढंग से खींचतान की, वैसी ही उसकी कल्पना बन गई। कोई कहेगा कि भ्रूमध्य से बीच में जाकर भ्रामरी गुफ़ा मिलेगी, कोई कहेगा कुछ नीचे मिलेगी, कोई कहेगा सहस्रार के मध्य में जाकर भ्रामंरी गुफ़ा का तृतीय स्थान खुलेगा। कोई कहेगा लम्बिका के मार्ग से जानेवाला स्थान तृतीय स्थान है, कोई कहेगा कमल की तरह और कोई कहेगा पेठे की तरह खिलता है! जो लोग केवल एक को पकड़कर चल रहे हैं उनको तो जैसी प्रतीति है वैसा ही दीखता रहेगा। जो आगे बढ़कर इन सबको मिलाकर समन्वय करना चाहेगा वह देखेगा कि इनमें कई विरोधी बातें हैं। वह संस्कारवशात् एक को नीचा और एक को ऊँचा मान लेगा।

वास्तविक स्थिति क्या है? जब तक स्वाभाविक और सहज भाव से इस कमल को विकसित नहीं होने दोगे, जब तक उसमें खींचतान करोगे, तब तक जैसी खींचतान करोगे वैसा नतीजा आ जायेगा। इसीलिये शास्त्रकार कहते हैं कि इसको विकसित होने दो। इसके लिये प्राणायाम करना होगा। प्राणमय कोश अर्थात् कर्मेन्द्रियों सहित क्रियाशक्ति, उसका आयाम करना अर्थात् क्रिया को छोड़ देना। कर्मेन्द्रिय और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रियाशक्ति को छोड़ दो, अपनी तरफ से कुछ मत करो। यह है सहज प्राणायाम की स्थिति। जिसकी इन्द्रियाँ अत्यंत चंचल होती हैं उसको कुछ नियंत्रण करने के लिये कोई एक प्रकार बताया जाता है, लेकिन वह वस्तुतः परमेश्वर-प्राप्ति का साक्षात् साधन नहीं है, साधन है। जैसे छोटे बच्चे को कह देते हैं 'बेटा! मैट्रिक पास कर लेगा तो कलक्टर बन जायेगा।' इतने से वह कलक्टर थोड़े ही बनेगा! ठीक इसी प्रकार से जिसकी वृत्ति अत्यंत बहिर्मुखी होती है, जो एक मिनट शान्ति से नहीं बैठ सकता, उससे कुछ क्रियायें करवाई जाती हैं जिनसे वह ज़रा बैठने लग जाये। लेकिन यदि प्राण की टक्कर से तुम परमेश्वर के मन्दिर का उद्‌घाटन करना चाहो तो वह विकसित नहीं होगा। यहाँ जब दहरोपासना की बात कर रहे हैं तब प्राणायाम का क्या मतलब है? आयाम मायने रोकना अर्थात् क्रियाशक्ति और क्रियाशक्ति जिन कर्मेन्द्रियों से प्रकट होती है, उनको सर्वथा निरुद्ध कर दो, चलने न दो। यह प्रत्येक ज्ञान में करना पड़ता है।

किसी भी चीज़ को यदि जानना चाहो तो उस के साथ क्रिया करना छोड़ना पड़ेगा। यदि तुम अपनी तरफ से उस पर क्रिया करते रहोगे तो उसकी सत्यता का पता कैसे लगेगा? चीज़ स्थिर होगी, तुम उसमें कोई परिवर्तन अपनी तरफ से नहीं कर रहे हो, तभी पता लगेगा कि उसकी वास्तविकता क्या है? आधुनिक विज्ञान में यह बड़ी ज़बरदस्त समस्या हो पड़ी है। यद्यपि यह विषय कठिन है फिर भी संकेत कर देते हैं कि जब इतनी अल्प क्रिया पदार्थ को बदल देती है तब परब्रह्म परमात्मा तो अणोरणीयान् है अर्थात् परमाणु के तत्त्वों से भी अतिसूक्ष्म है। अगर तुमने वहाँ कुछ भी क्रिया करने का प्रयत्न किया तो कुछ ज्ञान नहीं होना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसीलिये भगवान् ने क्या नियम किया? 'कर्मेन्द्रियाणि संयम्य' अर्थात् कर्मेन्द्रियों को सर्वथा संयमित करो। इतना करके खुश हो जाओगे कि हमने कर्मेन्द्रियों का संयम कर लिया; तब कहते हैं 'य आस्ते मनसा स्मरन्' यदि कहीं मन से भी वृत्ति बनाना शुरू कर दिया तो वह पदार्थ पकड़ में नहीं आयेगा और मिथ्याचारी बन जाओगे। तुम कहोगे हमने छेड़ा नहीं और देखने की कोशिश में ही तो छेड़ रहे हो! यह भूल प्रायः मनुष्य करते हैं कि बाह्य स्थूल कर्मों को तो समझ लेते हैं लेकिन उसको जानने के प्रयत्न में भी एक क्रिया है, इसको भूल जाते हैं। इसलिये केवल कर्मेन्द्रियों का संयम न कहकर के प्राण शब्द का प्रयोग किया जाता है अर्थात् जब क्रियाशक्ति ही सर्वथा निरुद्ध हो जाये तब उस पुण्डरीक का विकास होता है। हम अपनी क्रियाओं के द्वारा ही तो स्वरूप को ढाँकते रहते हैं। रात-दिन हमारा व्यवहार ही यह होता रहता है। तत्त्व को निरंतर तुम अपनी क्रिया, अपनी इच्छा के अनुसार ढाँकते रहते हो। जो तत्त्व को समझना चाहता है, वह उसको छेड़ता नहीं है। यहाँ तक कि द्रष्टा बनोगे तो भी वह छिड़ जाता है। यह तो कभी भी प्रयोग करके देख लो : मन कोई बात सोच रहा है। लोग पूछते हैं - 'महाराज! मन बड़ा चंचल होता है तो क्या करें।' हम लोग सीधा साधन ही बताते हैं कि मन के द्रष्टा बन जाओ, मन शांत हो जायेगा क्योंकि तुम्हारी देखने रूपी क्रिया से ही मन शरम खा जाता है और चुप होकर बैठ जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि तुम्हारा मन स्वभाव से शांत हो गया! उसका स्वरूप तो तुम्हारे देखने से बदल गया। इसलिये द्रष्टा बनना भी एक क्रिया है। यह ठीक है कि जिसने अभी मन के साथ अपने तादात्म्य को हटाया नहीं वह बेचारा मन की चंचलता से ही परेशान हो जाता है। बहुत से लोग इसी से दुःखी हैं कि हमारा मन स्थिर नहीं है। हम कहते हैं, होने दो अस्थिर;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रष्टा बनकर बेचारे को छोड़ो तो चुप हो जायेगा। लेकिन जहाँ द्रष्टा भाव को छोड़ा, फिर खड़ा हो जायेगा, स्वाभाविक स्थिति में रहेगा। जब हम क्रियाशक्ति को सर्वथा निर्मूल कर देते हैं तब परमेश्वर का जो मन्दिर है वह अपने स्वरूप से विकसित होता है। जब स्वरूप से विकसित होता है तब उसके अंदर 'अष्टैश्वर्यदलोपेते विद्याकेसरसंयुते' उसके जो पत्ते खिलते हैं वे अष्टैश्वर्य हैं।

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः।।

ये आठ सिद्धियाँ ही जीव की अंतिम क्रिया है। अणिमा - अणु के अंदर भी जो प्रवेश कर सके, इतना सूक्ष्म हो, यह अणिमा नाम की सिद्धि है। महिमा - समग्र ब्रह्माण्ड में वह एक जैसा व्यापक होकर रह सके। गरिमा - सुमेरु पर्वत से भी अपने आपको भारी कर सके। लघिमा - छोटे से छोटे फूल की अपेक्षा भी जो अपने को अत्यंत हल्का कर सके। प्राप्तिः - जहाँ पहुँचना चाहे वहाँ संकल्पमात्र से पहुँच जाये। प्राकाम्य - सब चीज़ों का अतिक्रमण करके जा सके। ईशित्व - सभी पंचमहाभूतों के ऊपर जिसका शासन चल सके। और वशित्व - सब कुछ उसके वश में रहे। ये आठ सिद्धियाँ हैं। आगे इसी दहरविद्या के अंदर इन अष्टैश्वर्यों का वर्णन करेंगे कि जब दहरोपासना सिद्ध हो जाती है तो कैसी होती है। लेकिन ये सिद्धियाँ पूर्णरूप से योगी में नहीं आती, ज्ञानी में आती हैं। इसका कारण क्या है? जब तक किसी-न-किसी उपाधि से तुम अणु बनोगे तब तक उस उपाधि की अपेक्षा ही तुम्हारी अणुता रहेगी। आत्मज्ञानी की अणुता निरुपाधिक होती है। वह किसी चीज़ में अणु बनकर नहीं घुसता लेकिन उपाधि से अपनी अभिन्नतारूपी अणुता को लेता है। इसलिये अत्यल्प से अत्यल्प पदार्थ में भी बिना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी उपाधि के निरपेक्ष भाव से अपनी विद्यमानता जानता है, समझता है, अनुभव करता है। इसलिये उसकी अणुता निरपेक्ष, निरतिशय होगी। इसके विपरीत, योगी जब अपनी महिमा का, व्यापकता का अनुभव करेगा तब किसी-न-किसी उपाधि को लेकर करेगा, चाहे ब्रह्माण्ड या हिरण्यगर्भ ही उपाधि हो जाये। ज्ञानी की महिमा चूँकि निरुपाधिक होती है इसलिये हमेशा ही उसमें रहेगी। इसी तरह से लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, ईशित्व, वशित्व सर्वत्र समझ लेना। ज्ञानी के लिये ये आठ ऐश्वर्य इसीलिये सहज हैं कि योगी तो अभ्यास करके जब चाहता है तब करता है, ज्ञानी को उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। उसको एक साथ ही अनुभव हो रहा है कि विष्णु रूप में मैं शासन कर रहा हूँ, ब्रह्मा रूप में मैं सृष्टि कर रहा हूँ। एक साथ ही उसका यह अनुभव है इसलिये उसके लिये वह चीज़ सहज है। यह हुआ स्वाभाविक विकास। जब जबरदस्ती उसको विकसित करोगे तब उसमें यह सहजता नहीं आयेगी। इसलिये उसका अष्टैश्वर्य हमेशा सीमित रहेगा। भगवान् भाष्यकार भी ऐसे अष्टैश्वर्यों की प्राप्ति के बाद उसको स्पष्ट करने के लिये कहते हैं 'स्यादीश्वरत्वं स्वतः सिद्ध्येत् तत् पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्।' ज्ञानी का जो ऐश्वर्य, ईश्वरभाव या ईश्वरता है, वह स्वतः है अर्थात् किसी उपाधि को लेकर नहीं। किसी विशिष्ट उपाधि को लेकर उसमें ये चीज़ें होतीं तो स्वभाव से या स्वतः नहीं होतीं। चूँकि उसके अंदर स्वतः, स्वभावतः रहती हैं, इसलिये उसे कारणान्तर की अपेक्षा नहीं रहती है, किसी उपाधि को लेकर उसे नहीं करना पड़ता।

इसी बात को स्पष्ट करने के लिये श्रीमद्भागवत में आता है कि भगवान् कृष्ण खेल रहे हैं और खेल में उन्होंने मिट्टी खा ली, तो बड़े भाई को शिकायत करनी ही हुई। हमेशा से यह परम्परा चली आई है कि बड़ा छोटे की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिकायत माँ-बाप से करेगा। इसलिये बड़े भाई ने आकर शिकायत की। यह भी स्वाभाविक हुआ। माँ को गुस्सा आना हुआ, थप्पड़ मारने को तैयार होना भी स्वाभाविक है। इसलिये यशोदा ने थप्पड़ मारने के लिये हाथ भी उठा दिया, स्वाभाविक है। थप्पड़ देखकर बच्चे का रोना भी स्वाभाविक है। यह सब सहज हो रहा है। थप्पड़ खाने के पहले बच्चे को तो थप्पड़ देखते ही रोना हुआ, यह भी स्वाभाविक है। रोने के लिये जोर से 'आऽऽऽऽ' करेगा तो मुँह फटना भी स्वाभाविक हुआ। लेकिन मुँह फटने पर जो काण्ड हुआ वह जीवों के लिये स्वाभाविक नहीं है! यह सब स्वाभाविक कर्मों की परम्परा बता रही है कि यहाँ स्वाभाविक कर्मों को बताया जा रहा है, कोई कुछ करने के लिये नहीं। भगवान् का मुँह खुलते ही यशोदा को उसके अंदर ब्रह्माण्ड दीखने लग गया। जीव की दृष्टि में यह अस्वाभाविक है। भगवान् कुछ अस्वाभाविक करने नहीं गये थे। मुँह के अंदर ब्रह्माण्ड दीखने लग गया तो यशोदा डर गई कि क्या हो गया। भगवान् को अकस्मात् ख्याल आया कि स्वाभाविक कर्मों की परम्परा में इनके लिये यह अस्वाभाविक हो गया। अब इसकी स्वाभाविक लीला कैसे की जाये? भगवान् ने सोचा कि मुँह बन्द करके रोने लग जाओ। रोने लग गये तो स्वाभाविक क्रियाओं की परम्परा चली। जैसा होता है कि कोई आदमी किसी दूसरे ढंग से काम करे तो झट मन में आता है कि 'कोई भूत-प्रेत आ गया होगा, नहीं तो ऐसा क्यों करता।' बस, झट नमक मिर्च लाकर वारने लगी कि इसे कोई भूत आ गया। स्वाभाविक कर्मों की परम्परा में कृष्ण के लिये मुँह फाड़ना तो स्वाभाविक था। उसके अंदर विराट्-दर्शन भी स्वाभाविक था। गीता में भगवान् कहते हैं कि 'जो तूने मेरा विराट् रूप देखा, यह पहले किसी ने नहीं देखा', तो क्या यशोदा ने नहीं देखा था? देख लिया था। फिर अदृष्टपूर्वता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह है कि 'यहाँ तेरी प्रार्थना से मैंने ज्ञानपूर्वक तुझे दिखाया है लेकिन वहाँ यशोदा को ज्ञानपूर्वक नहीं दिखाया था। वहाँ उद्देश्य दिखाना नहीं था, वह दीख गया था।' इसी प्रकार जब भगवान् दुर्योधन के पास दूत बनकर गये थे और दुर्योधन उन्हें पकड़ने को तैयार हो रहा था, उस समय भी भगवान् का विराट् रूप दीखा था लेकिन वहाँ भी कोई संकल्पपूर्वक नहीं दिखाया था। वह तो जैसे ही दुर्योधन पकड़ने आया और उसको रोकने के लिये जो भगवान् का हाथ उठा तो उसके साथ ही सारे देवगण उठ गये। वह दिखाने का तात्पर्य नहीं था, तात्पर्य तो वहाँ से निकल जाने का था! गीता के मध्य में जानबूझकर दिखाने के लिये दिखाया गया है। बाकी जगह स्वाभाविक रूप से दीख गया था, उसमें तात्पर्य नहीं था। यह हुआ 'ईश्वरत्वं स्वतःसिद्धम्'। जब ये अष्टैश्वर्य ज्ञानी में दीखते हैं तब तो योगी की तरह भी हो सकते हैं लेकिन वहाँ भी फ़र्क क्या रहेगा? योगी किसी-न-किसी उपाधि को लेकर करेगा, ज्ञानी में ये निरुपाधिक रहेंगे।

इस सारी मिट्टी खाने की लीला का विचार करो तो बड़ी सीधी सी बात है। भगवान् बच्चों के साथ खेल रहे हैं। कौन हैं भगवान्? 'भगवानसौ' यह जो सामने बैठे हुये हैं यही भगवान् है। भगवान् गौडपादाचार्य कहते हैं 'असौ भगवान्' यह जो सामने है। जिस किसी धर्म से वही आवृत हैं। वे क्या करते हैं? भगवान् अपने साथियों के साथ लीला कर रहे हैं। तुम्हारी जो प्राणशक्ति, क्रियाशक्ति है, इन्द्रियाँ हैं वे तुम्हारे साथी हैं, इन्हीं के साथ खेल रहे हो। हो तुम कौन? परमात्मदेव, लेकिन खेलना इनके साथ है। निरुपाधिक बनकर इनके साथ कैसे खेलेंगे क्योंकि ये तो बेचारे उपाधिवाले हैं? उपाधिवाले के साथ तुम निरुपाधिक बनोगे तो कैसे चलेगा! इसलिये भगवान् अपने मुँह में मिट्टी डालते हैं। यह क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बताता है? यह शरीर मिट्टी का बना है, पार्थिव शरीर है। पार्थिव शरीर के अंदर मिट्टी डालना अपने कारण का ही ग्रहण है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तुम लोग कारण और कार्य को अलग-अलग समझते हो इसलिये जब तुम गेहूँ, जौ, चावल, दाल खाते हो तब समझते हो कि खाने की चीज़ खा रहे हैं लेकिन कभी विचार करो कि दाल, चावल, गेहूँ, जौ असल में मिट्टी ही है या और कुछ है? जितनी उसमें मिट्टी है वही न परिणत होकर ये सब हो गये! विश्वास न हो तो जलाकर देखो, क्या बनेगा? तो मिट्टी । जैसे कड़े को गलाया तो सोना और कड़ा बनाने के बाद सोना। जिस समय कड़ा दीख रहा है उस समय में भी सोना ही है। इसमें किसी के मन में संदेह नहीं। वैसे गेहूँ की बाली उगने के पहले खाद-मिट्टी और जलाने के बाद भी मिट्टी तो गेहूँ मिट्टी ही है। लेकिन कार्य-कारण की एकता को न समझने से एक चीज़ को खाद्य और दूसरी चीज़ को मिट्टी मानते हो। खेल-खेल में भगवान् अपने साथियों को कार्य-कारण की एकता बता रहे हैं।

तुम भी अपनी साथिन अपनी आँख को यही दिखाते हो। आँख तेजोरूप, प्रकाशरूप है इसलिये तेज को ग्रहण कर रही है। यही समझा रहे हो कि आँख तेजोरूप है। आँख यह नहीं समझती। वह समझती है कि 'कोई रूप नाम की चीज़ है जिसे मैं देख रही हूँ।' तुम आत्मदेव यह समझा रहे हो कि 'तू तेज को ग्रहण कर रही है इसलिये तेजोरूप है'। इसी प्रकार नासिका गंध को ग्रहण करती है तो समझती है कि कोई चीज़ ग्रहण कर रही है। तुम समझाते हो कि तू जिसे ग्रहण कर रही है वही तेरा कारण है। भ्रान्ति से समझते हो कि वहाँ रूप, गंध से अतिरिक्त कोई चीज़ है। 'ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैः ब्रह्म निर्गुणम्। अवभाति अर्थरूपेण'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुराणकार कहते हैं कि सर्वत्र एक निर्गुण ब्रह्मरूप ज्ञान ही प्रसृत है, फैला हुआ है। 'पराचीनैः इन्द्रियैः' बाहर जानेवाली इन्द्रियों को पकड़ने के चक्कर में तुम समझते हो 'अवभात्यर्थरूपेण' बाहर कुछ पदार्थ है। पदार्थ तो वहाँ एक निर्गुण ब्रह्म है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है! लेकिन तुम्हारी आँख से प्रकाश चला और वहाँ से प्रकाश आता दीखा तो प्रकाशवाला एक पदार्थ है, ऐसा मान लेते हो। जहाँ तुमको प्रकाश दीख रहा है वहाँ ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जहाँ से गंध आ रही है उस गंध के पीछे ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। नासिका चूँकि पृथ्वी से बनी है इसलिये उसे गंध आ रही है। इतने ही अंश में भ्रान्ति है कि तुम चीज़ों को बाहर समझ रहे हो। कार्य-कारण का अभेद जैसा भगवान् ने अपने साथियों को मिट्टी खाने की लीला से बताया, वैसा ही तुम भी अपनी इन्द्रियों को समझा रहे हो लेकिन वे समझती नहीं। न भगवान् के साथी समझे थे और न तुम्हारे साथी समझते हैं।

भगवान् के साथियों ने शिकायत लगाई कि यह अखाद्य खा रहा है, मिट्टी खा रहा है । ठीक इसी प्रकार तुम्हारी इन्द्रियाँ शिकायत लगाती हैं कि 'हमें संसार दीख रहा है।' यह झूठी शिकायत है। मुझ आत्मा को क्या कभी संसार दीख सकता है! मैं तो इन इन्द्रियों को बता रहा हूँ कि कार्य-कारण में अभेद है। लेकिन जिनकी अभेद-दृष्टि नहीं, वे समझते हैं कि संसार दीख रहा है। सारे वादी आत्मा पर यही दोष लगा रहे हैं कि यह आत्मा संसार को देख रहा है। शिकायत होने पर यशोदा रूपी बुद्धि डण्डा दिखाती है, कहती है कि यह तुमने धर्म किया और यह तुमने अधर्म किया। यह पुण्य और यह पाप किया है। जो संसार उत्पन्न नहीं हुआ, उस संसार में क्रिया कहाँ से, और उससे पुण्य-पाप उत्पन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहाँ से होंगे? लेकिन बुद्धि डण्डा लेकर खड़ी हो जाती है। यह भी बुद्धि का स्वभाव है। कोई काम करने के बाद खट कहेगी 'अच्छा किया, स्वर्ग जाओगे, बड़ा आनन्द आयेगा।' स्वर्ग का मतलब केवल मरने के बाद का स्वर्ग नहीं समझना। जब अदालत में तुम्हारा वकील कानून का ऐसा पेच मारता है कि जज कहता है 'तुम्हारी बात में कुछ तत्त्व है,' तब यह सुनते ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है कि 'मैं और मेरा वकील धन्य हैं! कल शाम को बड़ी मेहनत की थी तब यह विचार निकला है।' यदि कहीं जज ने कह दिया 'अदालत को धोखा देने की चेष्टा मत करो।' तब 'हाय! मैंने ही यह जबरदस्ती अपने वकील से कहलाया था,' इस भाव से यहीं नरक में पहुँच गये, मरने के बाद जो होगा सो होगा। आगे स्वर्ग-नरक नहीं है, ऐसी उलटी बात नहीं समझ लेना। लेकिन पहले यहाँ का प्रत्यक्ष तो देखो, फिर परोक्ष देखा जायेगा। यह सब बुद्धि ही तो कर रही है। अच्छा कर्म हो गया, बुरा कर्म हो गया, उससे उत्पन्न होनेवाले सुख-दुःख हो गये, यही बुद्धि का डण्डा दिखाना है। बुद्धि डण्डा दिखाती है तो जीव दुःखाकार वृत्ति बनाये, यह भी ठीक है। यही जीव का रोना है।

लेकिन होता क्या है? जहाँ दुःखाकार वृत्ति बनी, वहीं जीव खट साक्षि-भाव में चला जाता है। इसी दृष्टि से कुंती भगवान् से कहती है -

विपदः संतु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्याद् अपुनर्भवदर्शनम्।।

हे भगवन्! हमारे ऊपर हमेशा विपत्ति का पहाड़ आता रहे, सुख न मिला करे, क्योंकि जैसे ही दुःख आता है वैसे ही वृत्ति साक्षी ईश्वर की तरफ चली जाती है, सुख आते ही तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृत्ति अहम् की तरफ जाती है। जो ईश्वर को बहिर्भूत समझता है वह कहता है - 'हे भगवन् तुम बचाओ।' और जिसने अंतर्यामी को समझ रखा है वह कहता है कि अंतःकरण की दुःखाकार वृत्ति अनादिकाल से हो रही है, मैं तो अधिष्ठान तत्त्व हूँ। उसे चाहे महेश्वर रूप से कहो, अंतर्यामी रूप से कहो। वह वृत्ति कहाँ जाती है? मन के अंदर चेतना को पकड़ती है। सुख होते ही वृत्ति अहम् को पकड़ती है कि मैंने बड़ा अच्छा किया। जहाँ यह साक्षी खुल पड़ा, वहाँ वृत्ति खट शांत हो जाती है। चाहे बहिर्यामी रूप से याद आये, चाहे अंतर्यामी रूप से याद आये, जहाँ उसकी स्मृति आई, अंतःकरण दुःख-सुख छोड़कर वहीं शांत हो जाता है, फिर खड़ा नहीं रहता। बुद्धि घबरा जाती है कि 'मैं किसको दोषवाला समझ रही थी, किसके ऊपर दोष लगा रही थी! यह तो शुद्ध चेतन है। इसके ऊपर दोष कहाँ से आयेगा?' यह मानकर झट वृत्ति शांत हो जाती है।

घोर से घोर दुःख में जब परम महेश्वर याद आता है तब नतीजा होता है कि जिसको तुम दुःख समझ रहे थे वह हट जाता है। तुम लोग सत्संगी हो। कई बार घर में बच्चा बीमार होता है, डाक्टर भी ना कर देता है, उस समय वृत्ति सर्वथा एकाग्र हुई तो कहते हो 'हे परमेश्वर! यह ठीक हो जाये।' और वह बच जाता है। अथवा जिस मुकदमे को सोचते हो कोई नहीं जिता सकता, वह जीत जाते हो। शास्त्रकार यहाँ तक कहते हैं कि परमेश्वर की तरफ जहाँ वृत्ति बनी वहाँ जो दुःख है वह सुखरूप में तुरंत बन जाता है, देरी नहीं लगती। बंधन भी मोक्षरूप में बन जाता है, तुरंत परिवर्तन होता है। आज तक किसी का भी अनुभव नहीं कि उसने हृदय से परमेश्वर से प्रार्थना की हो और वह पूरी न हुई हो। यह कभी नहीं हुआ। दुःख हटने पर बुद्धि-वृत्ति ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह निर्दु:खरूप देखा तो ज़रा घबराई। यह तो अभी सहज रूप में देख लिया। ब्रह्माकारवृत्ति बनाकर ज्ञान से तो ब्रह्म का दर्शन नहीं किया, यह तो अपना ऐश्वर्य सहज रूप में प्रकट हो गया। तुरंत वह वृत्ति बन्द हो गई। भगवान् ने मुँह बंद कर लिया। जिस कारण से वह चीज़ उत्पन्न हुई थी, वह निमित्त हटने से नैमित्तिक भी हट गया। बंद होने पर लीला तो खत्म हुई नहीं। अनजाने में किया है, जानकर नहीं किया। बंद होते ही सोचते हो कि हनुमान्‌जी को लड्डू चढ़ाया था, इसलिये मुकदमा जीत गये। वृत्ति तुरंत उपाधि की तरफ चली गई, परमेश्वर हाथ से निकल गया। अथवा बच्चा ठीक हो गया तो कल वाला जो डाक्टर आया था, उसके हाथ में शफा है। या यह वकील उत्तम है, इससे पहले चार वकील किये लेकिन कुछ नहीं किया। यह नोन मिर्च लग गया; प्रार्थना, परमेश्वर सब गये! फिर वैसे के वैसे बन्धन में रह जाते हो। इसलिये भगवान् भाष्यकार ने कहा 'स्यादीश्वरत्वं स्वतः सिद्ध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्।' जब स्वाभाविक रूप से कमल का विकास होगा तब निरुपाधिक ऐश्वर्यरूप परमेश्वर की प्राप्ति होगी, सिवाय परमेश्वर के और कोई सामने नहीं रहेगा। जैसे फूल पर केसर होता है वैसे ही यहाँ भी 'विद्याकेसरसंयुते' ब्रह्मज्ञान रूपी केसर हाथ में तब रहेगा जब स्वाभाविक रूप से कमल का विकास होगा।

. Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादश प्रवचन

६.४.७६

भगवती श्रुति परब्रह्म परमात्मतत्त्व की उपलब्धि का स्थान बता रही है। परमात्मा की उपलब्धि कहाँ होगी? पहले बताया कि मनुष्य शरीर में होगी। मनुष्य शरीर में भी कहाँ? हृदय पुण्डरीक में। इस पुण्डरीक को किस प्रकार से विकसित किया जाये, इस पर विचार कर रहे थे कि जो स्वाभाविक प्राणायाम है अर्थात् कर्मेन्द्रियों के साथ क्रियाशक्ति का अवरोध है, सहज और स्वाभाविक रूप से जो अवरोध है, उसके द्वारा ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। यदि उसको सहज रूप से विकसित न होने देकर हठपूर्वक उद्घाटित करने जाओगे तो वह अपने स्वरूप से नहीं खिलेगा। स्वरूप से खिलने पर उसके अष्टैश्वर्यरूपी दल सहज ही खिल जाते हैं। 'स्यादीश्वरत्वं स्वतः' अर्थात् प्रयत्नसाध्य नहीं रहते हैं। दूसरी बात 'विद्याकेसरसंयुते' उसमें ही आत्मविद्यारूपी केसर होती है। यदि किसी पुष्प को जबरदस्ती खोलें तो उसका केसर स्वाभाविक रूप · से नहीं रहता क्योंकि जब पुष्प पूर्ण विकास को प्राप्त होता है तभी उसके अंदर केसर पूरी तरह से आता है अन्यथा उसमें केसर पूरी तरह से विकसित नहीं होता, खिलता नहीं। आत्मविद्या ही वस्तुतः इस पुण्डरीक का, इस सिताम्भोज का केसर है। जैसे केसर देखने में तो अत्यंत नहीं के जैसा पदार्थ होता है, थोड़ी-सी भी अंगुली लग जाये तो हाथ में लग जाता है, लेकिन पुष्प का जो वास्तविक गंधवाला हिस्सा है, वह वही है। पुष्प की प्रधानता सुगन्धि को लेकर के और सुगन्धि का केन्द्र वह केसर ही है। इसी प्रकार से आत्मविद्या देखने में तो लगती है कि कुछ नहीं-सी है लेकिन समग्र जीवन का और समग्र ब्रह्माण्ड का सार यह ब्रह्मविद्या ही है क्योंकि इस सारे पुण्डरीक का, सारे ब्रह्माण्ड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का, सारे मानव देह का एकमात्र लक्ष्य इस आत्मविद्या की प्राप्ति है। यदि यह न होती तो यह ब्रह्माण्ड और यह जीवन दोनों व्यर्थ होते, कोई लाभ न होता।

ऐसा क्यों? किसी जेल से निकलने की असलियत तब होती है जब फिर उस जेल में न जाना पड़े। तभी मानेंगे कि उस जेल से निकले हो। जब तक इससे विपरीत, जेल से इस शर्त पर छूटते हो कि हफ्ते-भर घर जाकर वापिस आ जाना है, तब तक छूटे नहीं कहे जाते। जेल में रहनेवाला व्यक्ति यदि ठीक आचरण करता है तो उसको कुछ दिन के लिये पैरोल पर छोड़ देते हैं। पैरोल का मतलब है कि अगर गाँव छोड़कर जाओ तो पुलिस को खबर देना, प्रतिदिन या प्रतिसप्ताह आकर अपनी रिपोर्ट पुलिस में दर्ज कराना कि मैं यहीं हूँ इत्यादि नियमों के साथ छोड़ा जाता है। यह वस्तुतः जेल से छूटना नहीं है। दीखता है कि छूट गया लेकिन सचमुच नहीं छूटा। इसी प्रकार शुभ कर्म, शुभ उपासनाओं के द्वारा ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ लोक, गो लोक को चले जाओगे; उसको भी छूटना कह देते हैं सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य आदि के नाम से, लेकिन यह सब पैरोल पर छूटना है। इसीलिये भगवान् ने कहा -

'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।'

वैकुण्ठ लोक, गो लोक, ब्रह्मलोक कहीं भी चले जाओ, वहाँ से वापिस लौटना पड़ता है। फिर इसी गर्भ में आना पड़ता है, इसी जेल में फिर बन्द होना पड़ता है। इसलिये यह वास्तविक छूटना नहीं है। 'माम् आत्मानम् उपेत्य' जब मुझ आत्मतत्त्व को मनुष्य जान लेता है तब वस्तुतः छूटता है 'पुनर्जन्म न विद्यते।' इसलिये इस समग्र संसार का केसर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मविद्या ही है। यह प्राप्त नहीं हुआ तो सारा फूल बेकार हो गया। जैसे हम कई बार विलायती गुलाब का दृष्टान्त देते हैं जो आजकल बहुत चलता है। उसके पत्ते भी जल्दी नहीं गिरते, देखने में भी सुन्दर, रंग भी उसका अच्छा होता है। सारी चीज़ें उसमें हैं लेकिन खुशबू नहीं है, उसमें केसर नहीं है। इसी प्रकार से केवल विलायती गुलाब ही ऐसा नहीं, समग्र विदेशी संस्कृति खुशबू से रहित है। मनुष्य जीवन में जो आनंद और प्रेम की गंध होनी चाहिये, जो परमात्मा की तरफ दृष्टि करने से आती है, वह जीवन में वहाँ नहीं मिलती। उनके पदचिह्नों पर जो चलते हैं, उनकी भी यही स्थिति है। बाकी सब चीज़ें उनमें मिल जायेंगी, देखने में भी बड़े मजबूत मिलेंगे लेकिन जो असली उद्देश्य है वह पूरा नहीं होगा। उनका कसूर नहीं है क्योंकि जब तक परमात्मारूपी सूर्य के द्वारा वे अपने हृदय-कमल को नहीं खिलायेंगे तब तक वह केसर कहाँ से आयेगा!

इस विद्याकेसर को उत्पन्न करने के लिये कमल की जो नाल होती है, वह क्या है? बताया है 'ज्ञाननालमहत्तेयं प्रणवेन प्रबोधिते' परमात्म-सम्बन्धी विचार ही वह नाल है। इसको काटने पर कमलगट्टा बन जाता है। पंजाबी लोगों ने उसका नाम भें रखा है, पता नहीं यह नाम क्यों रखा है! उसको नाल कहते हैं। उसी में से कमल रस खींचता है। विचार ही वह चीज़ है जिसके द्वारा रस खिँच कर अंत में केसर-भाव को प्राप्त होता है। लेकिन यह कैसे हो? जब यह ज्ञानरूपी नाल, महत् अर्थात् व्यापकभाव का विचार करने में लगे तब। ब्रह्मरूपता का जब तक विचार नहीं करेंगे, जब तक खण्ड पदार्थों का विचार करते रहेंगे, तब तक चाहे-जितना विचार कर लो, ब्रह्मविद्या उत्पन्न नहीं होती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार तो मनुष्यमात्र करता है। भगवान् ने मनुष्यमात्र को मन-बुद्धि दी है, उसके आधार पर विचार तो मनुष्यमात्र करता है, लेकिन विचार किस विषय का करता है? अल्प चीज़ों का विचार करता है जैसे धन का विचार कर लिया, दो-चार बेटों का विचार कर लिया, दो-चार बेटियों का विचार कर लिया, आठ दस कमरेवाले एक मकान का विचार कर लिया, दुकान का विचार कर लिया। विचार तो कर रहे हैं लेकिन उसके विचार का विषय महद् ब्रह्म नहीं है तो उससे ब्रह्मविद्या रूपी केसर कैसे पैदा हो सकता है! इसलिये कहा कि उसका जो गंधवाला हिस्सा है, जिसका आधार यह नाल है, जिसका विचार करना है, वह व्यापक तत्त्व है। व्यापक पर जितना विचार करोगे उतनी ही ब्रह्मविद्या उत्पन्न होगी और जितना अल्प पर विचार करोगे उतनी ही ब्रह्मविद्या दूर होगी। 'यो वै भूमा तत्सुखं नाऽल्पे सुखमस्ति' जहाँ तुमने अल्प का विचार लाया, परिच्छिन्न का विचार लाया, वहाँ विषय अपरिच्छिन्न ब्रह्म नहीं रहा। विचार रूपी नाल तो सबके पास है लेकिन जिसको वह विचार विषय करता है, वह अत्यल्प पदार्थ है। सबसे पहले तो अत्यल्प काल का विचार छोड़ना चाहिये। अधिकतर लोगों के विचार का विषय रहता है चालीस साल पहले जब पैदा हुये थे तब से तीस साल बाद हम जब मर जायेंगे तब तक। इस अनंतकाल में वे इन सत्तर साल को ही बहुत समझते रहते हैं! न इसके पहले का कभी विचार करते हैं और न इसके आगे का विचार करते हैं। सबसे पहले यह काल का परिच्छेद आता है। काल की परिच्छिन्नता को जब तक नहीं छोड़ोगे तब तक अपरिच्छिन्न आत्मतत्त्व का विचार हो नहीं पायेगा क्योंकि जिन सत्तर सालों का तुम विचार करना चाहते हो वे सत्तर साल किसके हैं? इस शरीर के हैं। जो भी विचार करोगे वह घूम-फिरकर शरीर को विषय करेगा, *तुम्हें* विषय नहीं करेगा। चालीस साल पहले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम पैदा थोड़े ही हुये थे, शरीर पैदा हुआ था और चालीस साल बाद *तुम* थोड़े ही मरोगे, शरीर मरेगा। इसलिये केवल इस शरीरमात्र को लेकर जितने विचार चलेंगे वे सब काल से परिच्छिन्न होंगे, भूमा तत्त्व की तरफ नहीं जाने देंगे।

इसीलिये शास्त्रकारों ने एक प्रकार का ध्यान शवासन में लेटकर करने का बताया है। बिलकुल जैसे शव के हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं, ऐसे ही अपने हाथ-पैर सर्वथा ढीले कर दो। उसके बाद यह शरीर शव हुआ पड़ा है - ऐसा ध्यान करो। जितना अपने शरीर की शवरूपता का ध्यान करोगे उतना इसमें अहं-बुद्धि कम होगी। दक्षिण भारत में रमण महर्षि हुये हैं। उन्होंने तो इस शव-ध्यान के द्वारा ही आत्मज्ञान को प्राप्त किया था! उनके घर में किसी की मृत्यु हो गई, उस समय वे नौ साल के थे। घर में बात चली कि अमुक मर गया है। सोचने लगे कि यह 'मरना' क्या होता है, कौन मरता है? जैसा उन्होंने उस मृत को देखा था, वैसे ही लेट गये। अब सोचने लगे कि 'मैं मर गया। इसी का नाम मरना है। मुझे उठाकर लोग ले जाकर जला देंगे, यह भी मैं सोच रहा हूँ। वह कौन है जो इस मृत को देख रहा है' - इस चिंतन को करते-करते ही उनके अंदर आत्माकार वृत्ति हो गई। यह जो अपने शरीर में शव-बुद्धि है, अपने शरीर को सर्वथा मृत समझकर आगे विचार करना है, इससे बड़ा हौसला और बड़ी शक्ति आयेगी क्योंकि शरीर के अंदर तादात्म्य बुद्धि करने से ही हम महत् चीज़ों को सोचने से रुक जाते हैं। बड़ी से बड़ी चीज़ सामने आये तो खट सोचते हैं कि 'शरीर का क्या होगा!' उसे झट पकड़ लेते हैं। यदि उस ज्ञान-नाल अर्थात् अपरिच्छिन्न-तत्त्व को विषय करना है तो पहले इस काल की परिधि को छोड़ो। देह ही काल की परिधि लाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार से व्यापक तत्त्व को सोचते समय देश की परिधि को भी छोड़ो। साढ़े तीन हाथ के शरीर में तुम बैठे हुये हो, ठीक है लेकिन यहाँ बैठे हुये तुम चन्द्रमा को देखते हो या नहीं देखते हो? देखते हो तो चन्द्रमा वहाँ से चलकर तुम्हारे अंदर आया नहीं। यह तुम मानोगे ही, निश्चित बात है। आगे मानना पड़ेगा कि तुम्हारा मन ही चलकर चन्द्रमा तक पहुँचा। अगर मन तुम्हारा चन्द्रमा में पहुँचा हुआ है तो तुम साढ़े तीन हाथ के शरीर में ही बंधे मनवाले कैसे हो गये? जब करोड़ों मील तुम चाक्षुषी वृत्ति के द्वारा पहुँच गये तो फिर कैसे कहते हो कि हम शरीर में परिच्छिन्न हैं? देश के परिच्छेद को भी इस दृष्टि से छोड़ना पड़ता है। जहाँ-जहाँ दृष्टि गई वहाँ-वहाँ मन गया या नहीं, और जहाँ-जहाँ मन गया वहाँ मैं हूँ या नहीं? मैं नहीं हूँ, तो मन जायेगा कहाँ! विचार उस चीज़ का करना है जो शरीर में प्रतीत होते हुये भी इन्द्रियों के रास्ते से न जाने कितनी दूर पहुँच जाती है। न इसमें काल का और न देश का परिच्छेद है। लोग समझते हैं कि देश काल से कभी छूटेंगे जबकि सत्य यह है कि अभी ही छूटे हुये हो, केवल ज़िद ही पकड़े हुये हो कि 'मैं अपने को देश काल में मानूँगा।' विचार करो तो जिस समय अपने को देश में बद्ध कहते हो उस समय में भी हो नहीं, जिस समय अपने को काल में बद्ध कहते हो, उस समय में भी बद्ध हो नहीं। हो तो छूटे हुये, लेकिन स्वयं अपने संस्कारों के कारण बँधा मानते हो। कभी-कभी दूसरे ज़बरदस्ती संस्कार डालते रहते हैं कि तुम तो शरीर में ही हो, इस कारण अपने को बद्ध समझते हो। इसलिये जो विचार की बात हुई उस पर विचार करना पड़ता है। इस महत्कंद को किस प्रकार प्रकट किया जाये? 'प्रणवेन प्रबोधिते।' दिक् काल आदि से अनवच्छिन्न जो आत्मतत्त्व है, उसका ओंकार के सहारे से बार-बार स्मरण करना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'प्रबोधिते' से कह रहे हैं कि केवल जप करने से नहीं होगा वरन् 'अकार, उकार, मकार, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, ईश्वर - ये सब जिसमें कल्पित हैं वह आत्मतत्त्व मैं हूँ' यह प्रबोध होना है। ओंकार के उच्चारण के साथ इस भाव का स्पष्ट प्रबोध होना चाहिये। जिस 'मैं' ने जाग्रत् देखा वही 'मैं' स्वप्न देख रहा था। विचार करो कि स्वप्न देखनेवाला और जगा हुआ मैं दो हूँ क्या? एक ही हूँ। गहरी नींद लेनेवाला कोई तीसरा है क्या? तुम ही हो। जाग्रत् में भी तुम, स्वप्न में भी तुम और सुषुप्ति में भी तुम। अब यदि तुम्हारे तीन नाम विश्व-तैजस-प्राज्ञ रख दिये गये तो यह भ्रम नहीं कर लेना कि तुम तीन हो गये! तीन हुये नहीं, नाम सुभीते के लिंये रखे गये। जिस अवस्था में तुम थे वही अवस्था जाग्रत्, जिस अवस्था में तुम थे वही अवस्था स्वप्न, जिस अवस्था में तुम थे वही अवस्था सुषुप्ति। जब तुम एक तो जिस अवस्था में तुम हुये वह अवस्था भी एक हुई या नहीं? जाग्रत् क्या? जिसमें तुम। स्वप्न क्या? जिसमें तुम। सुषुप्ति क्या? जिसमें तुम। इसलिये ये तीन अवस्थायें अलग-अलग थोड़े ही हैं। जैसे आफिस में आदमी मैनेजर साहब हो जाता है, घर में पापा जी हो जाता है; पहले लोग शास्त्र में कहे हुये ढंग से पुत्र उत्पन्न करते थे इसलिये उनका नाम तब पिता था और अब कामनारूपी पाप से प्रवृत्त होकर उत्पादन होता है इसलिये उनका नाम ही पापा है, जिसके द्वारा लड़का कहता है कि आपने मुझे पाप से पैदा किया, शास्त्र विधि से आपने मुझे उत्पन्न नहीं किया, लड़का पैदा किया है। आफिस में मैनेजर, घर में पापा, व्यक्ति वही, दो अलग नहीं, नाम दो होने पर भी। अवस्थायें भी उनकी दो अलग दीखती हैं। घर में धोती-कुर्ता पहनकर बैठता है, आफिस में पैन्ट-कोट पहनकर बैठता है। उपाधियाँ दोनों अलग हैं लेकिन वस्तुतः कपड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों उसी के हैं। इसी प्रकार से जाग्रत् में तुमने स्थूल कपड़े पहन लिये तो जाग्रत् अवस्था, स्वप्न अवस्था में तुमने स्वप्न के सूक्ष्म कपड़े पहन लिये तो स्वप्नावस्था। फिर जब सारे कपड़े खोलकर फेंक दिये, अपने घर में बैठे हो तो सुषुप्ति अवस्था। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति को देखनेवाले तुम एक और जिस-जिस अवस्था में तुम जाते हो, वह तुम्हारी ही उपाधि है। जाग्रत् में तुम्हारा नियंत्रण कौन करता है? परमेश्वर ही नियंत्रण करता है। तुम्हारे स्वप्न का नियंत्रण करनेवाला कोई दूसरा थोड़े ही है! ऐसा तो नहीं कि जाग्रत् में सुख परमेश्वर देता हो और स्वप्न में सुख-दुःख अल्मारियाँ देती हों। जो जाग्रत् में तुम्हारे कर्मों के अनुसार सुख-दुःख देता है वही स्वप्न में भी तुम्हारे कर्मों के अनुसार सुख-दुःख देता है। जाग्रत् में फल देनेवाला हुआ तो उसको वैश्वानर कह दिया। स्वप्न में फल देनेवाले को हिरण्यगर्भ कह दिया। लेकिन क्या ये दो अलग हैं? जिसने जाग्रत् में उसी ने स्वप्न में फल दिया और उसी ने सुषुप्ति में तुमको अपने अंदर चिपटाकर एक कर लिया। ऐसा एक कर लिया कि तुमको पता ही नहीं लगता है कि 'मैं था भी या नहीं।' किसी बच्चे को माँ अच्छी तरह से चिपटा लेती है तो उस समय बच्चे को यह थोड़े ही लगता है कि 'मैं माँ से अलग हूँ' बल्कि एक हो जाता है। सुषुप्ति के अंदर तुमको पता ही नहीं लगता कि मैं कोई अलग हूँ। गहरी नींद में मैं हूँ - क्या यह भान रह जाता है? उठने के बाद कहते हो कि 'बड़ा मज़ा आया, बड़े आनंद से सोया था'। 'आनंद से' अर्थात् आनंद के साथ सोया था; जैसे कहते हो कि मैं अपने दोस्त के साथ सोया था या मैं अपनी पत्नी के साथ सोया था वैसे ही क्या कह रहे हो कि मैं आनंद के साथ सोया था? आनंद किसका नाम है? 'आनंदं ब्रह्मेति व्यजानात्' आनंद ही तो ब्रह्म है। इसलिये उठकर सब प्राणी कहते हैं कि 'वहीं मैं ब्रह्म के साथ था'। साथ में यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी कहते हैं कि 'मैंने कुछ नहीं जाना' अर्थात् इतना चिपटकर सो गया था कि वहाँ 'मैं' नाम की चीज़ भी ज्ञात नहीं हुई! उस समय थोड़े ही लगता है कि 'मैं सो रहा हूँ,' उठने के बाद पता चलता है। जो तुमको जाग्रत् में धर्म-अधर्म का फल देता है, स्वप्न में तुम्हारे संस्कारों का फल देता है, वही सुषुप्ति में तुमको अपने साथ चिपटानेवाला है, कोई अलग नहीं है। जो वैश्वानर वही हिरण्यगर्भ और वही ईश्वर है। सुभीते के लिये नाम तीन रख दिये। इसलिये न विश्व तैजस प्राज्ञ नाम रखने से तुम तीन बन गये और न जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थायें कहने से तुम अलग हो गये, न वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, ईश्वर कहने से तुम्हारे में कोई फ़र्क आ गया। एक ही रहे। ओंकार का चिंतन करते हुये इस एकता की तरफ दृष्टि करनी है। इसीलिये कहा 'प्रणवेन प्रबोधिते'।

ये तीन जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तो अपनी अवस्थायें हो गईं। बाह्य जगत् क्या है जो हमें दीख रहा है? वह जाग्रत् क्या है जिसमें मैं था? कहते हैं 'विश्वार्चिषं महागंधिं ज्वलन्तं विश्वतोमुखं' अर्थात् जाग्रत् के अंदर सारे रूपों को देखनेवाला कौन है? 'विश्वार्चिषं;' अर्चि लपट को कहते हैं। हमारी इन्द्रियों से सारी लपटें जाकर सारा विश्व बना रही हैं। यह थोड़ी कठिन बात है। पदार्थ में रंग नहीं होता। तुम समझते हो कि गुलाब में लाल रंग है। गुलाब में लाल रंग नहीं है। कुछ लोग 'कलर ब्लाइन्ड' होते हैं जिनको रंग का ज्ञान नहीं होता है। उनको लाल गुलाब दिखाओ तो उन्हें लाल न दीख कर केवल हल्के काले रंग का दीखेगा! यदि पदार्थ में रंग हो तो जिस रंग की चीज़ है उस रंग की ही दीखनी चाहिये। पदार्थ में कुछ है, और तुम्हारी आँख में भी कुछ है उनका सम्पर्क होने पर लाल रंग का अनुभव पैदा होता है। पदार्थ में लाल रंग हो तो सबको लाल ही दीखे। इतना ही नहीं, तुम लाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंग को खूब गहरा करते जाओ। लाल रंग तो एक ही हुआ, जितना गहरा करते चले जाओगे उसका रंग बदलता चला जायेगा और यदि अत्यधिक गहरा कर दोगे तो बैंगनी रंग हो जायेगा! जिसको तुम गहरा कहते हो उसके मायने क्या? मानना पड़ेगा कि उस रंग के तत्त्व में कोई चीज़ है जो तुम्हारी आँखों के साथ मिलकर गहरी होती है। इसलिये पदार्थ में रंग नहीं है। पदार्थ रंगवाला बनता है किसी आँख से संयुक्त होकर।

ऐसे ही शब्द कान के साथ मिलकर पैदा होता है। कुछ तो बाहर है, वह जब तुम्हारे कान से मिलता है तब शब्द बनता है। जब तक तुम्हारे कान से नहीं मिला, वह शब्द नहीं बनता। इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो तुम्हारा ट्रान्जिस्टर या रेडियो है। जब तुम्हारा रेडियो बन्द भी है, उस समय रेडियो स्टेशन तो चालू है। यह बताओ कि जिस समय तुम्हारा रेडियो बन्द है उस समय रेडियो स्टेशन की आवाज़ तुम्हारे कमरे में पहुँच रही है या नहीं? ज़रूर पहुँच रही है। ऐसा थोड़े ही है कि जब तुम चालू करोगे तब तुम्हारा उस आवाज से सम्बन्ध हो जायेगा। कोई तार भी तो वहाँ लगा हुआ नहीं है। इसलिये उस समय भी उस कमरे में रेडियो स्टेशन से आनेवाली आवाज़ है। लेकिन फिर भी तुम बड़ी शान्ति से माला फेर रहे हो, 'नमः शिवाय' का जप कर रहे हो। तुम्हारा लड़का बाहर से आता है और झट रेडियो का खटका दबा देता है। तुम कहते हो 'भले आदमी! माला तो खत्म करने दे!' क्योंकि खटका दबते ही तुरंत तुम्हें शब्द सुनाई देने लगे। इसलिये जब तक उस शब्द का सम्बन्ध तुम्हारे कान से नहीं होता तब तक वह शब्द नहीं है, यद्यपि वहाँ मौजूद है। उस कमरे में मौजूद शब्द को कान तक पहुँचने के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रेडियो-यन्त्र की ज़रूरत है। लेकिन जब तक तुम्हारे कान से सम्बन्धित नहीं होता, वह 'शब्द' नहीं होता।

जैसे रूप में और शब्द में वैसे ही रस, गंध में भी समझ लेना। मिठास चीनी में नहीं होती है; यह कैसे पता लगे? कोई तुम्हारी जान-पहचान का व्यक्ति हो और उसे मधुमेह का रोग हो। उसके साथ कभी बैठकर चाय पियो तो वह तुम्हारे गिलास में तो डालेगा चम्मच भर चीनी और अपने लिये एक गोली निकालेगा जो अपनी चाय में डाल देगा। उससे कहो 'यार! यह भेदभाव तुम्हारा ठीक नहीं है, यह तो तुम पंक्तिभेद करते हो।' वह कहता है 'तुम चीनी लो, यह तुम्हारे काम की नहीं है।' तुम कहते हो, 'नहीं, यही लेंगे।' वह एक गोली डालने लगा तो तुमने कहा 'मैं तो चम्मच भर लेता हूँ, ब्राह्मणों के साथ रहनेवाला आदमी हूँ इसलिये ज़्यादा मीठा पीनेवाला हूँ।' वह कहता है 'दो डाल लो।' तुम कहते हो 'क्या मक्खीचूस आदमी है!' वह कहता है 'चम्मच भर डालोगे तो पी नहीं सकोगे!' तुम चम्मच भरकर डालकर अच्छी तरह पीना। महा कड़वा स्वाद लगेगा, पी नहीं सकोगे। तुम उससे कहते हो 'यह तूने क्या किया, तू भी तो यही पीता है!' वह कहता है 'दूसरे प्याले में एक गोली डालकर पीकर देखो।' पीते हो तो मीठा लगता है। मिठास यदि उस चीज़ में होती तो मीठा मीठे से मिलकर मीठा ही तो लग सकता है, उसकी जाति कैसे बदल दोगे? वस्तुतः मिठास उसमें नहीं है। वह जब तुम्हारी जीभ के साथ सम्बन्धित होती है तब मिठास पैदा होती है।

जितने भी रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श आदि हैं वे सब कैसे हैं? 'विश्वार्चिषं' अर्थात् अपने अंदर से इन इन्द्रियों के द्वारा जो लपट निकलती है, उससे ही रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श आदि बनते हैं। बाह्य जगत् में ये नहीं हैं। इसलिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाह्य जगत् तुम्हारे ही हृदय-कमल से इन्द्रियों के द्वार से बाहर निकलनेवाली लपट है। बाहर क्या है - यह तुमको कभी नहीं दीख सकता। वह कब दीखे? जब बिना इन्द्रियों के देखो। बिना चश्मे के जो रंग दीखेगा उसी को सच्चा रंग मानेंगे। लाल, हरा, पीला चश्मा पहनकर देखोगे तो उसे सच्चा रंग नहीं मानोगे। इसी तरह से आँख, कान, नाक इत्यादि इन्द्रिय-रूपी चश्मों को तथा संस्कार-रूपी मन के चश्मे को उतारकर जो देखोगे वह सच्ची चीज़ होगी। जब यह सब उतारकर देखते हो तब

'यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।' (कठ. ३.१०)

महर्षि यम कहते हैं - हे नचिकेता! जिस समय पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि को उतार दोगे तब जो दीखेगा वही तो परम गति परब्रह्म परमात्मतत्त्व है। इन्द्रियों से जब देखते हो तब जो ऐनक लगा ली उसका रंग दीखता है और इन सारी ऐनकों को उतार देने पर केवल निर्गुण ब्रह्म दीखता है। इसलिये जिसको तुम जगत् समझ रहे हो वह ब्रह्म ही है। इन्द्रियों के कारण तुम उसे विषय समझते हो, यह चश्मा उतार देना है। लेकिन एक बात याद रखना कि किसी चीज़ के रंग को देखने के लिये एक बार चश्मा उतारकर देख तो लेते हो। धूप में जा रहे हो, काला चश्मा पहना हुआ है। दूर से कोई चीज़ दिखाई दी। देखना चाहते हो कि किस रंग की चीज़ है। चश्मा खोलकर देख लेते हो और फिर चश्मा पहन लेते हो। ऐसा तो नहीं कि एक बार चश्मा उतारकर उसका रंग देख लिया तो अब चश्मा उतारे रहो। फ़र्क यह है कि चश्मा उतारकर देख लिया तो असली रंग का पता लग गया। इसलिये अब चश्मा पहनकर दूसरा रंग देखते हुये भी जानते हो कि इस चीज़ का असली रंग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या है? इसी प्रकार से जब उस परब्रह्म परमात्मतत्त्व का अखण्ड-वृत्ति में दर्शन हो गया तो उसके बाद व्यवहार करने के लिये इन्द्रिय-मन के चश्मे लगाते भी रहोगे, तदनुरूप तुमको जगत् के पदार्थ दीखते भी रहेंगे, लेकिन दीखने पर भी जानोगे कि यह रूप नहीं, है तो वह ब्रह्म। जब मैंने इस शरीर की एकता का चश्मा लगाया तो वहीं हमको पिता दीख गया। तुम्हारा जो लड़का है वही तुम्हारे पिता के लिये पोता है। जो एक का पुत्र है वही दूसरे का पिता है। जो पत्नी है वही शिशु के लिये माँ है। बिलकुल विरुद्ध धर्म हैं। एक ही औरत किसी की पत्नी और किसी की माँ है। लेकिन ये विरुद्ध धर्म क्यों हैं? चश्मे अलग-अलग हैं। अलग-अलग शरीर का चश्मा पहन लिया तो अलग-अलग प्रतीति हुई। ज्ञानवाला इस बात को जानता है कि मेरे चश्मे के कारण यह पुत्र है और स्वकीय रूप से निर्गुण ब्रह्म है। मेरे चश्मे के कारण यह पिता है, स्वरूप से ब्रह्म ही है। इसलिये इसे विश्वार्चिष कहा। विश्व का अर्थ 'अनेक प्रकार का' या 'विचित्र' है। संसार में अनंत शरीर, अनंत इन्द्रियाँ, अनंत मन हैं, उनमें से लपटें भिन्न-भिन्न प्रकार की निकलने से भिन्न-भिन्न प्रकार की चीज़ें दीखती रहती हैं लेकिन तत्त्व बाहर एक ही है, वह आत्मा है।

यह महावह्नि अर्थात् बहुत बड़ी अग्नि है। अनंत कोटि जीवों के हृदय में एक साथ ही जल रही है, सर्वत्र जल रही है। वह एक ही ज्योति है। प्रतीत वह तुमको छोटे से दहर-पुण्डरीक में हो रही है। तुमको वहाँ दीख रही है लेकिन वहाँ देखने से पता लगता है कि कण-कण के अंदर वह जल रही है। तुमको अपना पेट नहीं दीखता लेकिन पेट के अंदर भी जीव रहते हैं जिनको दवाई देकर डाक्टर धक्का मारकर निकाल देता है। वे जीव कितने सुन्दर रूप से तुम्हारे पेट को जानते हैं! एक्सरे से भी उनका पता नहीं लगेगा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काटकर देखोगे तो भी पता नहीं लगेगा क्योंकि सामान्य रूप से जब अम्ल वहाँ से निकलता है तब क्या करना चाहिये, किधर छिप जाना चाहिये ये सब बातें वे जानते हैं और करते हैं। जानते हैं तभी तो इतने साल तक वहाँ डटे रहते हैं, वहाँ अपने अण्डे भी देते हैं, बच्चे भी देते हैं। तुम उसे अपना पेट समझते हो, वे बेचारे उसे अपना घर समझते हैं। जैसे कभी-कभी सरकार जहाँ तुम बीस साल से बैठे हुये हो, वहाँ यदि बगीचा बनाना चाहे तो बुलडोजर लगाकर तुम्हारे मकान को उखाड़कर फेंक देती है, इसी प्रकार डाक्टर दवा देकर उन जीवों को तुम्हारे पेट से बाहर निकाल देता है तो वे भी बेघर हो जाते हैं, अब कहाँ जायें! विचार करो, उस कीड़े के अंदर भी वही ज्योति जल रही है। उसको भी वहाँ सब पता है। इसी प्रकार से उन कीड़ों के पेट में फिर कीड़े हैं! जैसे मच्छर एक कीड़ा और उस मच्छर के पेट में मलेरिया का एक और कीड़ा। इसका कहीं अंत नहीं आता है। इसी प्रकार से तुम दिल्ली शहर के अंदर हुये तो दिल्ली शहर का अधिष्ठाता तुमको उखाड़ता है और वह दिल्ली शहर इस विश्व के अंदर होने से उसको दूसरे उखाड़ते हैं। इसी प्रकार अंततोगत्वा उस परब्रह्म परमात्म- तत्त्व के अंदर होने से समय-समय पर ब्रह्मा, विष्णु का पद भी बदल जाता है। इसका न ऊपर की तरफ जाने से अंत है, न नीचे की तरफ जाने से अंत है। 'ज्वलंतं विश्वतोमुखं' चारों तरफ वह ज्योति जल रही है, कण-कण और क्षण-क्षण में जल रही है। लेकिन यह महावह्नि सारे मुखों के अंदर जल रही है, अनंत कोटि जीवों के द्वारा वह एक अग्नि ही सबके साथ एकाकार है। उस सर्वव्यापक अग्नि को इस पुण्डरीक में एक लपट के रूप में देखना है। वह कैसी लपट है? नीवार से अत्यंत सूक्ष्म लपट है, उसकी सूक्ष्मता का विचार आगे बतायेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रयोदश प्रवचन

७.४.७६

भगवती श्रुति ने दहर विद्या का प्रतिपादन करते हुये बताया कि बाह्य जगत् से अपनी दृष्टि को हटाकर हार्दाकाश में स्थिर करें। हृदय में जहाँ स्थिर करें वह पुण्डरीकरूप है, कमल के समान है। वह कमल स्वभाव से बन्द रहता है, ब्रह्मसूर्य के प्रकाश से विकसित होता है। स्वभाव से कमल बन्द है फिर धीरे-धीरे जितना-जितना परमात्मा का प्रकाश होता है उतना ही उतना वह खिलता है, विकसित होता है। विकास करने के प्रकार पर विचार करते हुये बताया कि किस प्रकार से वह प्रकाश ही भिन्न-भिन्न अंतःकरणों से निकलकर भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रियों में जाकर रूप रस आदि आकारवाला बनता है। हृदय पुण्डरीक को किस प्रकार देखना चाहिये? समग्र ब्रह्माण्ड के समग्र अंतःकरणरूपी मुखों से प्रकाशित हो रहा है। उसी को कहते हैं 'वैश्वानरं जगद्योनिम्' वही वैश्वानर है। प्रत्येक प्राणी के अंदर वैश्वानर अग्नि बैठकर अन्न पचाता है और अन्न को पचाते हुये शरीर को ऊष्मा या गर्मी देता है। मनुष्य में जीवन कब तक है? जब तक उसके शरीर में ताप है, ऊष्मा या गर्मी है। यह गर्मी ही मनुष्य के जीवन की पहचान है। जैसे ही मनुष्य का शरीर प्राण-रहित हो जाता है वैसे ही इसकी गर्मी ठण्डी होती चली जाती है। अंततोगत्वा जब सर्वथा प्राण नहीं रहता तब इसमें भी गर्मी सर्वथा नहीं रह जाती, यह ठण्डा हो जाता है। यह गर्मी देनेवाली जो अग्नि है इसी को वैश्वानराग्नि कहते हैं। यह गर्मी देती कैसे है? भोजन को पचाकर गर्मी देती है

'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीता में भगवान् कहते हैं कि प्रत्येक प्राणी के अंदर वैश्वानराग्नि रूप से विद्यमान रहते हुये मैं अन्न पकाता हूँ। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य - चारों प्रकार के अन्न वे ही पकाते अर्थात् पचाते हैं। कहीं भी यदि गर्मी रहती है तो चीज़ जलेगी, इसलिये अग्नि पकाती है।

कोई चीज़ जलेगी, तभी गर्मी रहेगी - यह गर्मी का नियम है। अग्नि तभी तक है जब तक उसके अंदर समिधा डाली जाये। जहाँ तुमने उसके अंदर जलनेवाली लकड़ी अथवा जलनेवाले पदार्थ का अभाव किया, वहाँ अग्नि ख़त्म और जब तक लकड़ी, कोयला आदि रहेगा तभी तक गर्मी रहेगी। तुम्हारा गैस का चूल्हा भी तब तक जलता रहेगा जब तक वहाँ गैस रूप समिधा है। बिजली का चूल्हा जलाते हो तो भी जब तक बिजली है तभी तक जलता रहेगा। जहाँ बिजली समाप्त हुई, उस चूल्हे की अग्नि भी गई। वहाँ बिजली ही समिधा है। इसलिये यह अग्नि का नियम है कि जब तक कोई न कोई चीज़ जलती रहे तब तक अग्नि रहेगी। दाह्य के अभाव में दाह का अभाव होता है। दाह्य अर्थात् जो जलाने के योग्य है, जिसको जलाया जा सकता है। वह ख़त्म हुआ तो दाह अर्थात् जलना भी ख़त्म हो जायेगा। मनुष्य शरीर के अंदर अन्न ही दाह्य है। वैश्वानराग्नि जब इस अन्न को जलाती है तब दाह अर्थात् शरीर में ताप रहता है।

यद्यपि केवल मोटी दृष्टि से कह दिया जाता है कि अन्न को मुँह से खाया जाता है, लेकिन भगवान् भाष्यकार कहते हैं 'अद्यत इति अन्नम्' जितने भी विषय हैं वे सब तत्तद् इन्द्रियों के द्वारा खाये जाते हैं। आँख रूप का भक्षण करती है, कान शब्द को खाता है, नासिका गंध को खाती है, त्वक् स्पर्श को ग्रहण करती है, जीभ रस को चखती है। इसलिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्न का मतलब केवल आटा-दाल ही नहीं समझना। यह भी अन्न है, लेकिन जो-जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करते हो, वह सब भी अन्न है। यह समझना इसलिये ज़रूरी है कि अन्न को तो जैसे पेट जलाता है, वैसे ही अन्न को यंत्रविशेष में भी जलाया जाता है। अन्न को पकाने का काम जैसे पेट करता है, वैसे ही यंत्रविशेषों के अंदर रसायन-विशेष डालकर पकाया जा सकता है। लेकिन इतने पर भी उस यंत्र को हम जीवित देह नहीं कहेंगे क्योंकि वह यद्यपि गेहूँ, चावल आदि को पका सकता है लेकिन रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श को नहीं पका सकता! पकाने का मतलब क्या है? जो ज्ञान हुआ अथवा जो अन्न अंदर गया जैसे गेहूँ, चावल आदि, वह तद्रूप से गया। उस गेहूँ चावल को तुमने रक्त, मांस या वसा रूप में परिणत किया। यही उसे 'पकाना' है। तुमने जो गेहूँ पेट में डाला, वह गेहूँ थोड़े ही खून में जाता है। उस गेहूँ को पकाकर, उसको खून या मांस रूप में परिणत किया जाता है। यही उसका पकना है। इसीलिये डाक्टर या वैद्य बहुत बार कह देते हैं कि तुम्हारे भोजन का पाक नहीं हो रहा है या रसपाक नहीं हो रहा है। खाते तो हो लेकिन खून नहीं बन रहा है। भोजन तो कर रहे हो। इसलिये पाक का मतलब है कि जिस चीज़ को तुमने लिया उसको तुमने दूसरे रूप में बदल दिया। उस रूप में बदल दिया जो तुम्हारे शरीर का हिस्सा है। खाये हुये पदार्थ से एक नवीन चीज़ बन गई। जो तुमने खाया वह कारण था लेकिन उससे जो उत्पन्न तुम्हारा मांस आदि वह कार्य हुआ। वह उससे भिन्न जाति का पदार्थ है। इसी का नाम है 'पकना'।

हम लोग रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श देखते हैं तो कैमरा जैसे रूप देखता है, ऐसे नहीं देखते हैं। या हम लोग शब्द सुनते हैं तो जैसे टेपरिकार्डर सुनता है ऐसे नहीं सुनते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। हम जिस रूप को देखते हैं, जिस शब्द को सुनते हैं, उसको अपने संस्कारों के अंदर पकाकर किसी नवीन रूप में परिणत कर लेते हैं, नवीन रूप में बदल देते हैं। भगवान् भाष्यकार लिखते हैं कि एक ही बात कहने पर भी चार शिष्यों में कोई उस बात को ठीक समझता है, कोई उलटा समझता है, कोई ग़लत समझता है और कोई समझता ही नहीं। एक ही वाक्य का उच्चारण कर रहे हैं लेकिन सुननेवाले चार बैठे हैं। उनमें से एक ठीक समझता है, जो तात्पर्य है वही समझ लेता है। दूसरा उसी बात को उलटा समझता है, कहनेवाले के भाव से ठीक विपरीत समझता है। जैसे हमने कहा 'पण्डितजी आये हैं,' वह उलटा समझता है कि यह कोई बेवकूफ आया है, उसको ताना मार रहे हैं। ऐसा कई बार होता है। पुराने सेठ लोग होते हैं, उनकी धोती में भी पैबन्द लगा होता है, कुर्ता भी दो जगह से सांध लगा होता है। हम कहते हैं कि सेठजी आये, तो लोग समझते हैं कि हँसी कर रहे होंगे! हम कहते हैं कि इनकी अपनी चार कपड़े की मिलें हैं। लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है कि लगता तो बिलकुल फटेहाल है। हमने तो सीधी बात कही लेकिन उलटा समझ लिया क्योंकि जो आधुनिक लोग हैं वे समझते हैं कि धन का जब तक अपने शरीर पर प्रदर्शन न हो तब तक कोई धनी कहाँ है। अथवा जैसे हमने कहा कि आटे को थोड़ी देर तक भिजाने से फुलका बढ़िया बनता है तो कोई सोचे कि चार दिन पहले ही भिजा दो! यह गलत समझ लेना हुआ। जो बात कही गई उसको ठीक समझ सकते हैं, गलत समझ सकते हैं, उलटा समझ सकते हैं या समझते ही नहीं कि 'क्या कहें! दिमाग में बात गई ही नहीं।' यह है किसी बात को पचाना। जो अपने पुराने संस्कार हैं, जो अपने मन के राग-द्वेष हैं, उनके द्वारा हम अपनी इन्द्रियों से जो कुछ भी ग्रहण करते हैं उसको बदल कर स्वयं अपना जो रूप है वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रदान करते हैं। इसलिये केवल अन्न ही नहीं, ये सब भी पचाये जाते हैं।

विचार करो, अनादि काल से लोग वेदों का अध्ययन करते हुये उसमें पढ़ते हैं 'तत्त्वमसि'। जो भी वेद पढ़ेगा उसमें उसे तत्त्वमसि पढ़ना ही पड़ेगा अर्थात् हे जीव! तू परमात्मरूप है, यह पढ़ेगा। कई जगह यह वेद में लिखा हुआ है। द्वैतवादी कहेगा कि जीव परमात्मरूप नहीं हो सकता। यह उसका दृढ संस्कार है। दृढ संस्कार होने के कारण कहता है कि जब कहा जा रहा है कि हे जीव! तू परमात्मरूप है, तो इसका मतलब है कि हे जीव तू परमात्मा का अंग है, अंश है, टुकड़ा है। यद्यपि वहाँ टुकड़ा या अंश का कोई शब्द नहीं है, फिर भी वह कहता है कि जीव ईश्वर तो हो ही नहीं सकता - यह तो हमारा दृढ संस्कार है। वेद कहता है तो इसका कोई दूसरा मतलब लगाओ कि इस मतलब से कहा होगा। कोई कहता है कि जैसे शालिग्राम विष्णु है नहीं लेकिन उपासना के लिये कह दिया है कि शालिग्राम को विष्णु मानकर उपासना करोगे तो तुमको वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी, वैसे ही जीव के अहम् में तुम परमेश्वर-भावना करोगे तो तुम्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति होगी। इसलिये जीव ब्रह्म नहीं, जैसे शालिग्राम विष्णु नहीं, लेकिन जीव में ब्रह्म की उपासना कर लो, यह इसका मतलब होगा। तीसरा कहता है कि श्वेतकेतु भगवान् का अवतार था इसलिये उसको कहा जा रहा है कि हे श्वेतकेतु! तू ब्रह्मरूप है। उसको कहा, हम लोगों को थोड़े ही तत्त्वमसि कहा है! जैसे गीता में भगवान् ने अर्जुन को अपना रूप बता दिया, प्रिय बता दिया। अर्जुन से कह रहे थे, हमें थोड़े ही कह रहे हैं! इसी प्रकार श्रुति श्वेतकेतु को तत्त्वमसि कह रही है, हमको नहीं। किसी ने अंश माना, किसी ने अवताररूप से उसकी कल्पना करने का विचार किया, किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने उपासना के लिये उसे कर्त्तव्य माना। कुछ लोग उससे भी आगे बढ़ते हैं। उन्होंने कहा कि वेद के कई शब्द ऐसे होते हैं जिनका मतलब पता नहीं लगता। जैसे वेदों में शब्द आते हैं 'जर्फरी, तुर्फरी' जिनका लोक में कोई प्रसिद्ध अर्थ नहीं है। फिर भी इनका पाठ करने से पुण्य होता है। जैसे बीज मंत्र होता है 'ऐं ह्रीं क्लीं' आदि, इनका क्या मतलब है? लेकिन जप करना चाहिये, उसी से फल होता है। बहुत से ऐसे शाबर मंत्र इत्यादि हैं जिनका मतलब कुछ नहीं लगता है लेकिन उनका पाठ करने से फल होता है। ऐसे ही तत्त्वमसि का मतलब कुछ नहीं है। इसका पाठ करने से फल होता है। हुं फट्, वौषट् आदि ऐसे ही शब्द हैं जिनका मतलब कुछ नहीं। मनुष्य इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से वेदों में आये हुये 'तत्त्वमसि' का अर्थ तरह-तरह से क्यों करता है? क्योंकि उसका पहले दृढ संस्कार है कि जीव ईश्वर हो ही नहीं सकता। उस संस्कार के कारण वेद का उद्घोष सुनते हुये भी उसे इधर-उधर कहीं-न-कहीं लगाना चाहता है। मनुष्य जो भी शब्द सुनेगा और देखेगा उसको अपने पूर्व संस्कारों के अनुसार, पूर्व राग-द्वेषों के अनुसार कहीं-न-कहीं लगाने का प्रयत्न करेगा। यह पचाना है, परिवर्तन करना है।

वैश्वानर अग्नि केवल अन्न को पचाता है, यहाँ अन्न का मतलब गेहूँ, चावल मात्र नहीं बल्कि चारों प्रकार का पकना है। 'वैश्वानरं जगद्योनिं' यह जो इसे पकाने का प्रकार है, यही सारे जगत् का योनि अर्थात् कारण बन जाता है क्योंकि इस प्रकार से उस चीज़ को जब उसने अपने रूप में बदला तो अपने रूप में बदलने के बाद तदनुकूल शुभ या अशुभ कर्म करेगा। जैसा समझेगा वैसा ही तो करेगा। जो करेगा उससे धर्म-अधर्म होगा और उसी से फिर आगे इस संसार चक्र का चलना बनेगा। यदि सही पचाया, जैसा वेद ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा, वैसे ही ठीक समझ लिया, तो समझेगा कि 'मैं कुछ भी न करता हूँ, न भोगता हूँ'। जहाँ अपने अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व को समझा वहीं जगत् का चक्र मिट गया। मिटने में देरी नहीं लगती। संसारचक्र को चलाने में परिश्रम है, इससे छूटना तो बड़ा सरल, सहज है! संसार में सबसे सरल चीज़ परमात्मा की प्राप्ति है क्योंकि वह तुम्हारा स्वरूप है। जो तुमको प्राप्त करना न चाहे, उसको तुम प्राप्त करने जाओ तो परिश्रम पड़ता है। जो तुमको पहले ही प्राप्त हो, तुम्हारे अंदर ही बैठा हो, उसको प्राप्त करने के लिये क्या परिश्रम करना है! इसीलिये पुराणों के अंदर बताया है कि जब त्रिपुरासुर को मारने के लिये भगवान् शंकर गये तो तैयारी बहुत की लेकिन मारते समय किया कुछ नहीं। भगवान् शंकर का नाम पुरहर अर्थात् पुरों का संहार करनेवाला है। मयासुर के कुल में त्रिपुरासुर उत्पन्न हुआ था। संसार के अंदर सबसे पहला नगर निर्माण करनेवाला, जिसे आजकल आर्किटैक्ट कहते हो, वह मय ही था। अनेक नगरों का उसने निर्माण किया था। तरह-तरह के नगरों की निर्मिति करते हुये मय ने एक बार अलग-अलग तीन नगर बनाये। एक लोहे का, एक चाँदी का और एक सोने का नगर बनाया। ये तीन नगर ऐसे बनाये जो चल नगर थे, स्थिर नहीं थे। अपने यहाँ तो जो मकान बनते हैं उनके अंदर खूब गहरी नींव खोदकर घुसाते हैं। लेकिन वे नगर ऐसे निर्मित किये गये जो चल थे, जिधर चाहो उधर चले जायें। इस प्रकार के घूमनेवाले इन पुरों के बीच में उसने एक छिद्र रखा। वह छिद्र ऐसा था कि जब तक तीनों नगरों के छिद्र एक-दूसरे की सीध में न आ जायें और एक ही बाण ऐसा न लग जाये जो तीनों छिद्रों में से पार हो जाये, तब तक वे नगर नष्ट नहीं हो सकते थे। एक छिद्र के अंदर यदि तुमने बाण मारा तो दूसरे की दीवाल वहाँ इतनी मजबूत पड़ जायेगी कि वह उसे खत्म कर देगी। इसलिये तीनों छिद्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सीध में हों और एक ही बाण उस समय लगे तो जैसे डायनामाइट लगने से चीज़ उड़ जाती है, वैसे ही पुर उड़ सकें।

उसने अपनी तीनों संतानों को अलग-अलग उन तीनों पुरों का मालिक बना दिया। तीन ही उसकी संततियाँ थीं - विद्युन्माली, तारकाक्ष और अम्बुजाक्ष। उन्हें समझा दिया कि 'इन तीनों शहरों को तुम कभी भी एक सीध में मत लाना।' उन घूमते हुये पुरों को लेकर मयासुर की संतति अजेय हो गई। कहीं भी दूसरे पर आक्रमण करें तो उन्हें हरा दें और दूसरा यदि उन पर चढ़कर आये तो वे अपने-अपने पुर में घुस जायें। वह कितना भी प्रयत्न कर ले, उस पुर में कभी न जा सके। जैसे-जैसे जीतते गये, वैसे-वैसे सिलसिला बढ़ता गया। अंत में उन्होंने देवताओं पर भी आक्रमण कर दिया। इंद्र, वरुण, यम आदि ने बड़ा परिश्रम किया, लेकिन किसी प्रकार से वे उन पुरों को नष्ट नहीं कर सके। देवता हार गये। स्वर्ग के ऊपर भी उनका ही राज्य हो गया। देवता लोग बड़ा कष्ट पाने लगे। जाकर भगवान् ब्रह्मा से प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! आप इसका कोई उपाय कीजिये।' ब्रह्मा जी ने कहा 'इनके पुर नष्ट करने का उपाय तो एक ही है। जब तक इन तीनों पुरों के छिद्र एक सीध में न आ जायें तब तक इन पुरों का नाश नहीं हो सकता, यह निश्चित बात है। इसलिये तुम ऐसा प्रयत्न करो कि किसी तरह ये पुर एक सीध में हो जायें।' उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। जितना भी देवता लोग प्रयत्न करें, कभी भी छिद्र इकट्ठे होवें नहीं। उलटा, उन लोगों को देवताओं पर बड़ा क्रोध आया कि ये लोग हम लोगों को नष्ट करना चाहते हैं। अब उन्होंने देवताओं को पूरी तरह से परेशान करना शुरू कर दिया। पहले तो केवल उनका राज्य लेकर बैठ गये थे, जब देखा कि ये लोग नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोड़ रहे हैं तो उन्हें तरह-तरह के दुःख देने लगे। देवता लोग भाग कर जंगल में, गुफाओं में, समुद्र के नीचे जा-जाकर छिप गये!

कुछ बड़े-बड़े देवता भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। भगवान् विष्णु ने कहा 'मेरी क्यों दुर्दशा कराते हो! वह अपने वश का खेल नहीं है, यह काम मुझसे नहीं होगा।' उन्होंने कहा 'कुछ उपाय तो कीजिये।' कहने लगे 'एक ही तरीका है कि अपने सब देवता लोग मिलकर कार्य करें तो यह काम कर सकते हैं। भगवान् शंकर स्वयं इस कार्य में आयें तब काम बने।' भगवान् विष्णु और ब्रह्मा को लेकर इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि सारे के सारे पहुँचे, भगवान् शंकर से प्रार्थना की। भगवान् ने कहा 'जिसको तुम सब नहीं जीत सके, उसे मैं अकेला कैसे जीतूँगा? इसलिये तुम सब मदद करो, बिना सब लोगों की मदद के, काम बनेगा नहीं। उनका पुर बड़ा दृढ है इसलिये उनके साथ लड़ने के लिये मेरा रथ भी मजबूत होना चाहिये।' पृथ्वी से कहा कि वह रथ बन जाये। पृथ्वी ने कहा - ठीक है, मैं रथ बन जाऊँगी। यह जो इतनी बड़ी पृथ्वी है, यह उस समय रथ बनी।

'रथः क्षोणी यंता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथांगे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधिः
विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः।।'

ब्रह्माजी को उस रथ को चलानेवाला सारथि बनाया गया। सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वीरूपी रथ के चक्के बने। धनुष भी दृढ होना चाहिये, तब इकट्ठा बाण छूटेगा। सुमेरु पर्वत को ही धनुष बनाया गया। भगवान् विष्णु को ही बाण बनाया गया। इस प्रकार तीनों पुरों को नष्ट करने के लिये सब देवता जुट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये। विचार करो कि वह कैसा जबरदस्त रथ होगा! सूर्य-चन्द्र जिसके चक्के थे, चतुर्मुख ब्रह्मा जिसको चलानेवाले, उसके ऊपर सुमेरु पर्वत धनुष बना, भगवान् विष्णु को बाण बनाकर भगवान् शंकर त्रिपुरासुर का संहार करने चले। मामला ही बड़ा कड़ा था, तैयारी होनी ही चाहिये थी।

जब वहाँ पहुँचे तो भगवान् शंकर ने पहले उन लोगों को कहा 'तुम लोग अब युद्ध के लिये स्थिर हो जाओ।' क्योंकि धर्मयुद्ध दूसरे को आह्वान करके किया जाता है, छिपकर नहीं किया जाता। यह तो पाश्चात्यों की प्रणाली देखकर हमारे यहाँ भी रात्रि में युद्ध करने की परम्परा चलाई गई। कोई भी काम रात को निशाचर लोग किया करते हैं। खुले-आम भला आदमी काम किया करता है। जिससे युद्ध करना हो उसे पहले आगाह किया जाता है। इसी प्रकार भगवान् शंकर ने वहाँ पहुँचकर कहा कि तुम लोग तैयारी करके आ जाओ। वे अपने तीनों पुरों को लेकर आये तो तीनों पुर ज़रा दूर-दूर थे। भगवान् शंकर ने कहा 'मेरे पास एक ही रथ है और मैं लड़नेवाला भी एक ही हूँ। तुम दूर-दूर क्यों खड़े हो? एक-साथ ही आओ तो काम हो जाये।' वे कहने लगे 'हम में से किसी एक के साथ ही लड़ लो।' भगवान् शंकर को यह सुनकर हँसी आई। उनके हँसने के साथ ही हवा जो ज़ोर से हिलने लगी तो तीनों पुर मिल गये! उनको इस प्रकार हिलते देखकर भगवान् शंकर को और ज़ोर की हँसी आ गई। बड़े ज़ोर से अट्टहास किया तो तीनों पुर एक सीध में आकर जलकर गिर गये और वे तीनों मर गये। भगवान् शंकर देवताओं से कहने लगे 'तुम लोग तो कहते थे कि ये बड़े जबरे हैं लेकिन ये तो तिनके जैसी चीज़ निकले जो हँसने से ही ख़त्म हो गये। एक अट्टहास ही सहन नहीं कर सके। तुम इतने से घबरा गये और हमसे भी इतनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बड़ी तैयारी कराई!' देवता लोग उनकी स्तुति करके कहने लगे – 'भगवन्! हम तो नहीं कर पाये थे। लगता है यह केवल खेल करने के लिये ही आपने इतना बड़ा आडम्बर रचा। हम लोगों के मन में जो गर्व था कि हम लोग सब मिलकर मारेंगे, इसको समाप्त करने के लिये ही आपने यह क्रीडा की।'

विचार करो; यह त्रिपुरासुर केवल किसी एक काल में पैदा हुआ हो और मरा हो, ऐसा नहीं है। प्रारंभ में ही बता आये हैं कि यह मनुष्य शरीर पुर है। इसमें भी तीन पुर हैं। एक तो स्थूल पुर यह स्थूल शरीर, एक इसके अंदर सूक्ष्म शरीर है जो इसको चलाता है। उसके अंदर एक कारण शरीर अज्ञान है जिसकी वजह से ये सब चल रहे हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तीनों शरीर मयासुर अर्थात् माया ने बनाये हैं। यह माया जो भगवान् की परब्रह्म-महिषी है उसी ने तीनों पुरों का निर्माण कर रखा है। स्थूल शरीर को चलानेवाला विद्युन्माली, सूक्ष्म शरीर को चलानेवाला तारकाक्ष और कारण शरीर को चलानेवाला अम्बुजाक्ष है। जैसे बिजली का पलकारा होता है और मिट जाता है ऐसे ही यह स्थूल शरीर का पलकारा होता है और नगण्य से सौ वर्ष बीतते-बीतते कब ख़त्म हो जाते हैं, पता ही नहीं लगता। अनंतकाल की अपेक्षा सौ साल बिजली से ज़्यादा महत् थोड़े ही लगते हैं! शरीर के अंदर जितनी चेतना है वह विद्युत्-प्रवेश से ही चलती है। स्नायुमण्डल में एक जगह से दूसरी जगह ज्ञान विद्युत् के द्वारा ही जाता है। इसलिये भी स्थूल शरीर को विद्युन्माली कहा जाता है। सूक्ष्म शरीर ही सारी साधनाओं को करके तरता है इसलिये तारकाक्ष है। मन ही बन्धन में जाता है, मन ही दूसरे शरीर में जाता है और मन ही अंत में मुक्त होता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में तैरकर पहुँच जाता है और अंत में तर जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। इसलिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूक्ष्म शरीर को ही तारकाक्ष कहा गया। कारण शरीर कमल की तरह सर्वथा निर्विकार रहता है। स्थूल-सूक्ष्म में तुमने जितने भोग किये, उन सबको लेकर जब तुम कारण शरीर में जाते हो तो उनका कोई प्रभाव नहीं रहता। सुषुप्ति आई तो स्थूल-सूक्ष्म की सब चिंतायें और सब ऐश्वर्य ख़त्म। करोड़पति को जो सुषुप्ति आती है और फुटपाथ पर पड़े हुये कंगले को जो सुषुप्ति आती है, दोनों का उस अवस्था में कोई फ़र्क नहीं। दोनों का एक ही अनुभव है 'सुखमहम् अस्वाप्सम्' और 'नाहं किंचित् अवेदिषम्' अर्थात् मैं सुख से सोया और मैंने कुछ नहीं जाना। यदि करोड़पति को करोड़ रुपये याद आते रहें तो सुषुप्ति नहीं। उनको छोड़ेगा तभी सुषुप्ति आयेगी। इसलिये सुषुप्ति काल में अम्बुजाक्ष है अर्थात् वहाँ जाकर कमल के पत्ते की तरह बिना किसी संस्कार के एकमात्र परमात्मा की स्थिति हो जाती है। इसलिये अम्बुजाक्ष कहा। स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों शरीर पुर की तरह हैं।

जब तक इन तीनों के छिद्र को न पकड़ा जाये, तब तक काम नहीं बनता। छिद्र पोल या आकाश को कहते हैं। उसी को यहाँ दहराकाश कह रहे हैं। स्थूल शरीर का छिद्र हृदय स्थल में, वहीं पर जब तुम अपने सूक्ष्म शरीर को उस दहर पुण्डरीक के आकाश में एकाग्र करो, और वहीं सुषुप्ति अर्थात् समग्र वृत्तियों को लीन करो अर्थात् सुषुप्तिकाल की भाँति जब किसी भी विषय का भान न रहे, तब तीनों छिद्रों का एक होना कहा जाता है। यह जब हो तभी आत्मस्थिति बनती है, नहीं तो ये तीनों इकट्ठे नहीं होते। हृदय में थोड़ा-सा ध्यान चलने लगेगा तो घुटने में दर्द होने लगेगा अर्थात् सूक्ष्म शरीर घुटने में पहुँच जायेगा। दहराकाश एक नहीं हो पाता। वहाँ से किसी तरह रोक कर ले आये तो किसी संस्कार से पुरानी याद या भविष्य की चिंता आ जायेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीनों शरीरों का जो आकाश या छिद्र है वह एक सीध में नहीं आता और जब तक एक सीध में न आये तब तक काम नहीं बनता। इसीलिये यह मयासुर का बनाया हुआ जो त्रिपुर है यह सारे देवताओं को जीतता रहता है। यह आसुरी लीला वह अनादि काल से कर रहा है।

देवता भगवान् शंकर से प्रार्थना करते हैं कि किसी प्रकार ये नष्ट हों। देव कौन है? 'को देवो यो मनःसाक्षी' अपने ही मन का साक्षी कभी-न-कभी इस संसारचक्र से तंग आकर वैराग्य को प्राप्त करता है कि न जाने किस जन्म से कितने प्रकार के भोग नहीं भोग लिये, लेकिन मुझे क्या मिला! न जाने कितने बच्चे नहीं पाल लिये, लेकिन मुझे क्या मिला! न जाने कितनी पत्नियों का अनेक जन्मों में पोषण कर लिया, लेकिन मुझे क्या मिला! यह प्रश्न यदि मनुष्य अपने आप से पूछने लगे, तो समझना चाहिये कि अब यह अपने छूटने की प्रार्थना परमेश्वर से कर रहा है। नहीं तो यह प्रश्न ही मन में नहीं उठता कि अनादि काल से इस चक्र में पड़ा हुआ मैं चल रहा हूँ, कहाँ पहुँचा, मुझे मिला क्या? इस प्रश्न को मन में लाना ही मनुष्य के लिये परमेश्वर की कृपा का फल है। अगर यह प्रश्न एक बार मन में जग गया तो फिर तुमको आराम की नींद नहीं लेने देगा। तुम चाहोगे कि हम इस प्रश्न को भूल जायें और भूलने के तरह-तरह के उपाय करोगे, लेकिन एक बार प्रश्न उठ गया तो चैन नहीं लेने देगा। मैं कौन हूँ? मेरा इन सब चीज़ों से क्या सम्बन्ध? मैं कहाँ फँस गया? अगर ये प्रश्न जग गये तो फिर मोक्ष की प्राप्ति के लिये बड़ी तैयारी कराते हैं।

त्रिपुरसंहार के लिये, परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिये पार्थिव शरीर को रथ बनाया जाता है, अर्थात् भाँति-भाँति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के तप का अभ्यास करता है। इस शरीर के अंदर भिन्न-भिन्न प्रकार के आसनों का, नेति, धौति, नौलि आदि कितनी-कितनी क्रियायें करता है कि इस शरीर को पहले ठीक करें। शरीर-रूपी रथ को ठीक करता है। फिर सूर्य और चन्द्र नाडी के अंदर प्राण चलते हैं। प्राणायाम के द्वारा, प्राणों के नियमन के द्वारा उनको चक्र बनाया जाता है इसको जीतने के लिये। सूर्य नाडी और चंद्र नाडी अर्थात् इडा-पिंगला का शोधन हो गया तो तुम्हारे शरीर-रूपी रथ के चलनेवाले चक्के भी ठीक हो गये।

ब्रह्मा को तुमने सारथि बनाया। वेद के ज्ञान से जो बुद्धि परिष्कृत हो गई है वही ब्रह्मा है। 'ब्रह्मणस्पतिः' ब्रह्मा को कहते हैं। जब बार-बार वेदाध्ययन किया जाता है तब बुद्धि शुद्ध होती है, बुद्धि में न जाने कौन-कौन सी चीज़ें दुनियाभर की भर रखी हैं; अधर्म भी भर रखा है और धर्मों को भी भर रखा है। आधुनिक काल में रैदास इत्यादि के उपदेशों से भी मुक्ति की आशा लोग करने लग गये! यह कलियुग की महिमा है कि अधर्म तो बढ़ता ही है लेकिन जो धर्म नहीं है उसे भी धर्म मानकर लोग मन के अंदर भरते रहते हैं। यह सारा कूड़ा-कर्कट तब मिटे जब बार-बार वेद का विचार करो। वेद के श्रवण-मनन से बुद्धि का कूड़ा-कर्कट निकलता है, नहीं तो जमा रहता है। ऐसी जो वेद के द्वारा परिष्कृत बुद्धि है, वह सारथि ब्रह्मा बनती है तब काम बनता है।

भगवान् विष्णु सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हैं। इसलिये सत्त्वगुण के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु को बाण बनाने का मतलब है कि सत्त्वगुण से जो वृत्ति सर्वथा एकाग्र हो गई है वही वहाँ चलकर प्रवेश कर सकती है। इस तरह एकाग्र वृत्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को बाण बनाया गया। हमारा जो मेरुदण्ड है जिसके अंदर सारे चक्र निहित हैं, इसी को सुमेरु-रूप धनुष बनाना पड़ता है। इसके ऊपर एकाग्र बुद्धि के द्वारा ही वह प्राप्त होगा। इतनी बड़ी तैयारी करके परब्रह्म परमात्मा भगवान् शंकर से कहा गया कि 'अब इस बाण को आप छोड़ो तब काम हो।' उन्होंने आकर कहा 'अरे अविद्या, अज्ञान! ज़रा सामने आ जाओ तो लड़ लें।' अविद्या वह होती है जो अविद्यमाना हो, जो हो ही नहीं! केवल स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीर नज़र आ रहे हैं। इनके अधिष्ठाता विश्व, तैजस, प्राज्ञ *नज़र* नहीं आ रहे हैं क्योंकि वे सारे शंकर से अभिन्न हैं। जब उन्हें देखते हैं तो बड़ी भारी हँसी आती है कि देवताओं ने इतनी तैयारी की। यह भगवान् शंकर का जो हँसना है यही वह सूर्य है जिसके कारण वह कमल हिलता है और तीनों एक सीध में हो जाते हैं। यह देखकर भगवान् शंकर को और हँसी आती है कि यह जो आकाश है अर्थात् कुछ नहीं, इस कुछ नहीं का क्या वेधन किया जाये! देखने मात्र से अट्टहास हो जाता है, पुण्डरीक हिल जाता है और तत्त्वप्राप्ति हो जाती है, लगता है कि इतनी तैयारी बेकार गई क्योंकि दुश्मन था ही नहीं। अगर कोई दुश्मन जीव विश्व, तैजस, प्राज्ञ होता तो इतनी बड़ी तैयारी करके ख़त्म करते। जब वहाँ कुछ है ही नहीं, आकाश है, तो किसको, ख़त्म करें? विचार करो, अगर नाश होता तो पुनरुत्पत्ति की सम्भावना होती। केवल कल्पनारूप था। इसलिये विवेकी कहता है कि इतनी बड़ी तैयारी करके जाओगे तो भी ख़त्म केवल अट्टहास से ही होना है। संसार को जब एक हँसी की चीज़ मानोगे तब ख़त्म होगा। जब तक बोझा माने बैठे हो तभी तक बोझा है, सत्य समझ लेने पर इसका पता नहीं लगेगा। बिना तैयारी के हँसी नहीं आती है तो तैयारी करो, लेकिन नष्ट तो अट्टहासमात्र से ही होना है। इसलिये कहा कि यह जो इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन का नाश है अर्थात् इन तीनों का एक छिद्र में आ जाना है, इसी के कारण त्रिपुरासुर का नाश हो जाता है और इन तीनों में जो पुण्डरीक आकाश है, इसी का ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी ध्यान करते हैं लेकिन ध्यान करते हुये भी 'ध्येयवर्जितं' ध्यान का विषय कुछ नहीं। इसके स्वरूप पर आगे विचार करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्दश प्रवचन

८.४.७६

दूसरा मंत्र

तं चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः। किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति।।२।।

प्रथम मंत्र के अंदर बताया कि किस प्रकार शरीररूपी ब्रह्मपुर में जो हृदयपुण्डरीक है, अत्यल्प स्थानवाला जो सिताम्भोज अर्थात् श्वेत कमल है, उस कमल के ऊपर सूक्ष्म आकाश है, उस आकाश के अंदर प्रवेश करके उसकी जिज्ञासा करनी चाहिये, उसको ढूँढना चाहिये। ब्रह्मपुर का और दहर पुण्डरीक का विचार बताया। वहाँ जो अल्प आकाश है उसका विचार अब करना है। प्रथम मंत्र में जो बता दिया उसे समझकर शिष्य प्रश्न पूछता है। स्वयं भगवती श्रुति प्रश्न पूछने का ढंग बताती है। आचार्य ने कहा कि शरीर के अंदर पुण्डरीक और उसके अंदर अत्यल्प आकाश है। पहले पुण्डरीक को ही बताया जो अत्यंत छोटा है फिर उस अत्यंत छोटे आकाश में रहनेवाला कमल उससे भी छोटा है। उस कमल के अंदर जो आकाश है उसके बारे में शिष्य पूछता है 'हे आचार्य! इस ब्रह्मपुर के अंदर अत्यल्प पुण्डरीक अथवा अत्यंत छोटा कमल जिसका वेश्म अर्थात् घर है, उसके अंदर पुनः अति अल्प आकाश है। अर्थात् पहले अत्यंत अल्प पुण्डरीक और उसमें अत्यंत अल्प आकाश, उस में कौन सी ऐसी चीज़ है जिसको ढूँढना है? पहले तो शरीर छोटा, उस में होनेवाला पुण्डरीक अर्थात् कमल अत्यंत छोटा और उसके अंदर भी जो अत्यल्प आकाश है, 'किं तत् अत्र विद्यते यत् अन्वेष्टव्यम्?' इतनी-सी छोटी-सी चीज़ का अन्वेषण करके,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतनी छोटी जगह में जाकर क्या मिलना है? उसमें ऐसा क्या है? शिष्य यह मानता है कि जो चीज़ जितनी छोटी होती है उसके अंदर अन्वेषण करने से उतना ही कम कुछ पता लगेगा। सामान्यतः यह प्रत्येक प्राणी के हृदय की भावना है कि यह जो इतना छोटा-सा आकाश या अवकाश है, इसमें क्या है जिसको ढूँढे? यथाकथंचित् यदि उसके अंदर तिल के जैसी कोई छोटी चीज़ हो भी तो उसकी जिज्ञासा से फल क्या होगा? इतने छोटे छिद्र के अंदर है ही क्या जिसका अन्वेषण किया जाये या जिसके बारे में पता लगाया जाये कि इसका रूप क्या है? इसलिये यह अन्वेषण प्रयोजनहीन है।

यह शिष्य का और प्रत्येक प्राणी का प्रश्न है। जब कहा जाता है कि अंदर रहनेवाले परमात्मा का अन्वेषण करो, तो मनुष्य क्या मानता है? इतने बड़े दीखनेवाले संसार और उसकी उन्नति को छोड़कर यह जो इतना छोटा-सा परमात्मतत्त्व है, इसको लेकर होगा ही क्या! इसीलिये वर्तमान काल में समग्र विचारधारा कहती है कि परमेश्वर के विषय में तो विचार करो ही नहीं और यदि तुमसे विचार किये बिना नहीं रहा जाता तो बेकार-सी चीज़ समझकर इसके बारे मे जो मर्ज़ी सो मान लो। इसकी सत्यता का निर्णय करने का प्रयत्न मत करो। वर्तमान काल में जो धर्मनिरपेक्षता है इसका आधार है कि पहले तो धर्म प्रयोजनहीन है, उसका कोई प्रयोजन ही नहीं और यदि यथाकथंचित् तुमसे उसके बिना नहीं रहा जाता तो जिज्ञासा मत करो, जो जैसा मानता है उसे वैसा मान लेने दो। उसके बारे में विचार करके निर्णय करने की आवश्यकता नहीं। इस प्रश्न का हृदय भी यही है।

दूसरा मंत्र प्रश्न ही है। शिष्य को आचार्य क्या जवाब देते हैं, यह तीसरा मंत्र है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स ब्रूयात् यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ।।३।।

तू तो पूछ रहा है कि इतने छोटे से आकाश में है ही क्या, किंतु 'यावान् वा अयम् आकाशः' अर्थात् जितना यह तुमको बाह्य जगत् दीख रहा है, अनंतकोटि ब्रह्माण्ड जो तुमको अपने सामने दीख रहा है, अपने सामने प्रतीत हो रहा है जिसका अंत तुम जान नहीं पा रहे हो, ऐसा जो यह बड़ा संसार है, 'तावान् एषःअन्तर्हृदय आकाश' उतना ही भेदवाला, उतना ही चित्र-विचित्र, उतना ही भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतीति करानेवाला अंदर का आकाश है। शिष्य का प्रश्न था कि इतनी-सी छोटी जगह में होना ही क्या है? गुरु का उत्तर है कि जितना तुमको यह बाहर दीख रहा है उतना सब अंदर है क्योंकि द्युलोक, पृथ्वी लोक सारा का सारा अंदर समाहित है अर्थात् अंदर भली प्रकार से रखा हुआ है। आगे बतायेंगे कि द्यावा पृथ्वी क्या है। अग्नि देवता, वायु देवता दोनों उसमें विद्यमान हैं। सूर्य और चन्द्रमा दोनों उसमें मौजूद हैं। जितनी बिजलियाँ चमकती हैं वे और नक्षत्र भी सब उसमें मौजूद हैं। जैसे बाह्य जगत् में वैसे द्यावा-पृथिवी, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र - ये सब वहाँ हैं। आगे श्रुति और ज़्यादा कहती है कि 'यत् अस्य इह अस्ति यत् च न अस्ति सर्वं तत् अस्मिन् समाहितम् इति' जो कुछ तुमको यहाँ मिला है, अनुभव में आया है, वह सब तो है ही और जिसका आज तक बाह्य जगत् में तुमने अनुभव नहीं किया, बाह्य जगत् में चारों तरफ घूमकर जिस चीज़ को, जिस आनंद को तुम नहीं देख पाये, वह भी तुम इसके अंदर जाकर देख पाओगे!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो चीज़ें बाह्य जगत् में नहीं हैं – अनंतता और आनंद। बाह्य जगत् में जितनी चीज़ें हैं, वे देश-काल-वस्तु-परिच्छेद के कारण अनंत नहीं हो सकतीं। किसी-न-किसी देश में हर चीज़ का अंत होता है। दिल्ली की जलवायु का अंत जयपुर तक तो जयपुर की जलवायु का अंत अहमदाबाद तक हो जाता है। लेकिन अंदर का आकाश या गुहा, सारे जगत् में घूम आओ, जिस देश में जाओगे उस देश में यह वैसा ही अनंत बना रहेगा। इसकी कभी सीमा नहीं आनी है। कालकृत परिच्छेद होता है कि जो कल था वह आज नहीं है, जो आज है वह कल नहीं रहेगा। बाहर सारे ही पदार्थ क्षयिष्णु हैं। पहले रसगुल्ले को खाने में जो मज़ा आता है वह दूसरे, तीसरे में नहीं रह जाता क्योंकि पदार्थें की क्षयिष्णुता है। लेकिन यह जो अंदर का आकाश या गुहा है, इसके अंदर जितनी बार प्रवेश करोगे उतनी बार कभी भी यह नहीं होना है कि आज समाधि का जो आनंद था, कल समाधि का आनंद उससे कम हो जाये! उस समाधि में परिवर्तन होगा तो बढ़ेगा ही, घटने की सम्भावना ही नहीं है। इसलिये श्रुति कहती है कि जैसे इसका देशकृत परिच्छेद नहीं, सब देशों में यह आनंद बना रहता है, जैसे इसका कालकृत परिच्छेद नहीं, सब कालों में एक जैसा बना रहता है, वैसे ही इसका वस्तुकृत परिच्छेद भी नहीं है। उपाधि के द्वारा प्रतीत यह होता है मानो इसकी अभिव्यक्ति किसी एक जगह होती है। विचार करो, जिस आनंद की प्राप्ति होती है उसकी अभिव्यक्ति का स्थल एक जगह होने पर भी विचार करने पर उसकी प्रतीति उस वस्तु तक ही निहित नहीं रहती।

दृष्टान्त से समझोः किसी आदमी को बड़ी ज़ोर की भूख लगी हुई है। कई दिनों से उसको भोजन नहीं मिला है। उसके सामने तुमने उसको अत्यंत प्रिय गुलाब-जामुन लाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रख दिया। (रसगुल्ले को जाने दो, क्योंकि लोग कहते हैं कि आप बार-बार रसगुल्ला ही कहते हैं!) उसको खूब भूख भी लगी हुई है, कई दिनों से उसने खाया भी नहीं है और उसको जो अत्यंत प्रिय गुलाब-जामुन है, वह तुमने उसके सामने रखा भी है लेकिन अभी तक 'नाभ्या आसीदंतरिक्षम्' आदि केवल भोजन की तैयारी के मंत्र का पाठ चल रहा है। मंत्र तो वह भी पढ़ रहा है क्योंकि ब्राह्मण है, पढ़ना ही पड़ता है। लेकिन पाठ करते हुये उसका सारा हृदय, सारी नज़र, सारी सुगन्धि लेने की शक्ति कहाँ एकाग्र है? सोचता है 'लगातार गुलाबजामुन देखूँगा तो कोई क्या कहेगा कि कहाँ से भुक्खड़ ब्राह्मण आ गया!' इधर-उधर देखते हुये भी उसका समग्र अंतःकरण उसी पर लगा हुआ है। यद्यपि उस गुलाबजामुन का स्वाद केवल उसकी जीभ लेगी लेकिन समग्र अंतःकरण वहाँ एकाग्र है। पाठ ख़त्म हुआ, अपोषण उच्चारण हो गया। जैसे ही यह सब काम पूरा हुआ, उसका हाथ सबसे पहले कहाँ पहुँचेगा? गुलाबजामुन पर ही पहुँचेगा। उसको उसने मुख में लिया, मुख में लेते समय क्या केवल उसको मुख में आनंद का अनुभव होगा या शरीर के कण-कण में आनंद का अनुभव होगा? लिया तो केवल उसने मुँह में है लेकिन आनंद सर्वशरीरव्यापी है। रोमांच हो जाता है, रोयें खड़े हो जाते हैं। विचार करो, ग्रहण उसका एक इन्द्रिय से होने पर भी उसका प्रभाव सर्वशरीरवर्ती हुआ या नहीं? ठीक इसी प्रकार जब यह चित्त अंदर की तरफ एकाग्र होता है उस समय केवल किसी एक इन्द्रिय की तृप्ति होती हो, ऐसा नहीं बल्कि सारी इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं। इसलिये कहा कि जो बाह्य जगत् के अंदर है वह तो वहाँ है ही लेकिन देशकृत, कालकृत, वस्तुकृत परिच्छेद वहाँ नहीं अर्थात् जहाँ एक वस्तु है वहाँ दूसरी नहीं - ऐसा इसमें नहीं होता। समाधि के काल में ऐसा नहीं होता कि एक वस्तु दूसरी वस्तु का अभाव बन सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरी बात, बाह्य जगत् के अंदर कभी आनंद नहीं है। इसलिये श्रुति ने कहा कि ये दो चीज़ें बाह्य जगत् में नहीं हैं। सत्ता चित्ता जैसी जगत् में वैसी ही अंदर; वे अंदर-बाहर दोनों तरफ हैं, लेकिन अनंतता और आनंदरूपता बाहर नहीं है। कहोगे कि संसार के पदार्थों में भी आनंद आता है; किंतु आनंद नहीं आता है, दुःखनिवृत्ति होती है। उसको तुम भ्रान्ति से सुख समझ लेते हो। भूख लगी, भोजन किया, भूख का दुःख हटा। यह दुःखनिवृत्ति है, आनंद कहाँ है! प्यास लगी, पानी पिया, प्यास का दुःख मिटा। इसी को तो संसार में आनंद कहते हैं। लेकिन दुःखनिवृत्ति अलग चीज़ है और आनंद अलग है। प्रायः मनुष्य दोनों के भेद को पकड़ नहीं पाता क्योंकि दोनों चीज़ें एक जाति की प्रतीत होती हैं। इसे इस प्रकार समझना कि घोर अंधकार हो तो आँख नहीं देख पाती और अत्यधिक तीव्र रोशनी आँख पर पड़े तब भी आँख नहीं देख पाती। कई बार लोग हमसे आकर कहते हैं कि 'आपका फोटो लेना है।' मना करें तो कहते हैं 'केवल फोटो ही ले रहे हैं।' लेकिन वे केवल फोटो नहीं लेते हैं, साथ में आँख को अंधा भी करते हैं! कैमरे के ऊपर एक लट्टू जलता है जिसके जलने के साथ ही आँखों से कुछ नहीं दीखता। बाद में उस फोटो को देखकर आँखें ऐसी लगती हैं मानो डर के मारे कोई शेर कूदा हो! कब कूदा था? तो याद आता है कि बल्ब में से कूदा था। उस समय इतने ज़ोर से पलकारा होता है कि बुझने के बाद भी कुछ देर तक नहीं जाता। यद्यपि वहाँ भी नहीं दीखा, और अंधकार में भी नहीं दीखा। इसलिये साधारण आदमी कहता है कि दोनों जगह अंधे हो गये। लेकिन दोनों जगह के अंधेपन में फ़र्क है। यह बात विचार से समझ में आती है। दोनों जगह आँखें काम नहीं कर रही हैं - यह बात तो ठीक है। इसी प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख के काल में भी दुःख नहीं हो रहा है, यह ठीक है। आनंद के काल में भी दुःख नहीं हो रहा है, यह भी ठीक है। दुःखनिवृत्ति समान होने पर भी, एक में दुःख पहले था जो पैदा होकर नष्ट हो गया। दूसरे में दुःख पैदा ही नहीं हुआ, इसलिये नष्ट है। आनंद एक भावरूप प्रत्यय है जबकि दुःख का अभाव - इतनामात्र सुख कहा जाता है। दुःखाभाव-मात्र से दोनों को एक नहीं समझ लेना चाहिये। आनंद की विशेषता क्या है? कैसे पता लगे कि यह आनंद है? जो प्रतिक्षण बढ़ता जाये वह आनंद होता है और जो प्रतिक्षण घटता जाये वह सुख या दुःखनिवृत्ति होती है। यह मोटा लक्षण याद कर लो। जहाँ दुःखनिवृत्ति से तुमको सुख की प्रतीति होगी वह धीरे-धीरे उस दुःख की कमी के अनुसार घटता जायेगा। जहाँ आनंद की स्थिति होगी वहाँ धीरे-धीरे हमेशा बढ़ता जायेगा, कभी भी घटने का नाम उसमें नहीं होगा। यह आनंद और सुख में मूलगत भेद है। आनंद और अनंतता जगत् में कभी नहीं मिलते हैं। ये परमात्मा में ही मिलेंगे, यह जो अंदर का आकाश या छिद्र है उसमें ही मिलेंगे।

आगे श्रुति कहती है 'सर्वं तत् अस्मिन् समाहितं' इस प्रकार जो कुछ है वह सब इसके अंदर समाहित है अर्थात् इसके अंदर ही आहित है, रखा गया है। शिष्य का प्रश्न था कि इस अत्यल्प आकाश में क्या होना है? गुरु ने जवाब दिया कि इसी के अंदर अनंत आनंद की प्राप्ति होनी है, और कहीं होनी नहीं है। इसके अंदर जाने के लिये क्या करना आवश्यक है? बहिर्मुखता छोड़कर अंतर्मुखता करने पर ही इसकी प्रतीति होगी। आकाश शब्द का प्रयोग श्रुति ने अनेक जगह ब्रह्म के अर्थ में किया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में, 'ओं खं ब्रह्म', ख शब्द का प्रयोग आकाश अर्थ में किया। ब्रह्मसूत्रों में 'आकाशस्तल्लिंगात्' में कहा कि ब्रह्म-सूचक चिह्नों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के कारण आकाश-शब्द ब्रह्म का बोधक है। आकाश ब्रह्म का ही लिंग या मूर्ति है। 'आ समन्तात्' चारों तरफ, 'काश' प्रकाश अर्थात् ज्ञान। इसलिये आकाश का मतलब होता है सर्वव्यापक ज्ञान। हम लोगों को जो ज्ञान हो रहा है वह खण्ड ज्ञान है। आकाश सर्वव्यापक ज्ञान को कहते हैं। इसे छांदोग्योपनिषत् के सातवें अध्याय में उसकी सर्वव्यापकता बताते हुये कह आये हैं कि वह परब्रह्म परमात्मा कैसा है? ऊपर जाओ तो भी वह ब्रह्म सद्रूप रहता है, नीचे जाओ तो भी उसके ज्ञान में कहीं कमी नहीं। दायें-बायें चारों तरफ उसका आनंद एकरूप रहता है। जैसे सूर्य के प्रकाश और दीपक के प्रकाश में क्या अंतर है? आजकल के दीपक, लट्टू के नीचे ज़्यादा प्रकाश और दीपक के ऊपर कम प्रकाश रहता है। प्राचीन काल का दीपक हो तो ऊपर की तरफ प्रकाश और नीचे अंधकार रहेगा। जितना उससे दूर जाओगे, उतना प्रकाश कम होता जायेगा। कमरे में बिजली का लट्टू जल रहा है, किताब नहीं पढ़ पा रहे हैं, अक्षर नहीं दीख रहे हैं। दूसरा कहता है 'लट्टू के पास चले जाओ।' लेकिन क्या सूर्य का प्रकाश ऐसा घटता-बढ़ता है? जहाँ सूर्य के सामने बैठोगे, उसका प्रकाश सर्वत्र है और चारों तरफ सूर्य के ऊपर, नीचे, अगल में, बगल में एक जैसा ही प्रकाश है। ऊपर-नीचे की प्रतीति होने पर भी प्रकाशरूपता में फ़र्क नहीं है। इसी प्रकार से वह परब्रह्म परमात्म-तत्त्व चारों तरफ एक जैसा ही प्रकाशित होता है। इसीलिये 'आकाशस्तल्लिंगात्' आदि ब्रह्मसूत्र में आकाश शब्द से उसी का ग्रहण करते हैं। यहाँ भी आकाश शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिये किया।

उसकी तरफ जाने के लिये मन को कैसा बनाना पड़ेगा? अंतर्मुखी बनाना पड़ेगा। बाहर की तरफ जाने की मन की प्रवृत्ति को अंदर की तरफ ले जाने की प्रवृत्तिवाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

करना है। स्वभाव से मनुष्य की इन्द्रियाँ किधर की तरफ फैलती हैं? आगे की तरफ या बाहर की तरफ ही बढ़ती हैं, फैलती हैं। अब उस प्रवृत्ति को कहाँ ले जाना है? वह जो अत्यंत सूक्ष्म आकाश है, उसके अंदर ले जाना है। बाहर की प्रवृत्ति को अंतर्मुखी करना है। अंतर्मुख करने का तरीका क्या है? श्रुति ने बाहर के आकाश और अंदर के आकाश की एकता का प्रतिपादन पहले क्यों किया? मन को अंदर ले जाने के दो तरीके हैं। एक, मन को बाहर के विषयों से रहित करना। यहाँ यह न बताकर एक सूक्ष्म साधना बता रहे हैं। एक तो हुआ कि उसे उलटा करके ले जाओ। यहाँ कह रहे हैं कि उलटा करके ले जाने की ज़रूरत नहीं है। इन्द्रियाँ जिस समय बाहर की तरफ विषय करती हैं उसी समय इनको बजाय इसके कि बाहर के आकाश में जाओ, अपने अंदर के आकाश की तरफ ले जाओ। तात्पर्य यह है कि अभी तो हमें लगता है कि पदार्थ बाह्याकाश या भूताकाश में हैं, बाहर दीख रहे हैं। उसकी अपेक्षा इन दीखनेवाले पदार्थों को इस प्रकार देखते हुये ही 'ये चित्ताकाश में दीख रहे हैं' यह चिंतन करो। वृत्ति को बाहर जाने दो, उलटाकर ले जाने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन जिस समय बाहर वृत्ति हो रही है उसी समय समझना है कि यह भूताकाश नहीं, चित्ताकाश है। रात्रि-दिन व्यवहार करना ही पड़ेगा, आँख, कान, नाक इत्यादि बंद करके कब तक बैठे रहोगे! घण्टा, दो घण्टा, चार घण्टा बैठ जाओगे। बाहरवाली वृत्ति को घुमाकर अंदर की तरफ कसकर बैठोगे, अंदर ले जाओगे तो वह कसावट कब तक रहेगी? जब तक किसी तीव्र प्रारब्ध का उदय हुआ नहीं। जैसे ही तीव्र प्रारब्ध का उदय हुआ, फिर वह वृत्ति विषयों को ग्रहण करेगी, बहिर्मुखी होगी। यहाँ श्रुति उपाय बता रही है कि बजाय इसके कि कसकर अंदर ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखने का प्रयत्न करो, इसको बाहर जाने दो, लेकिन बजाय भूताकाश के, अंदर के गुहाकाश के अंदर सब देखो।

यह कैसे होगा? विचार से होगा। विचार क्या है? जब तुम समझ रहे हो कि जगत् के पदार्थ बाहर दीख रहे हैं, उस समय में भी क्या वे मनरूप होकर नहीं दीख रहे हैं? जब मन तदाकार होगा, तभी न वह चीज़ दीखेगी। जब तक मन उस पदार्थ के आकारवाला नहीं बनेगा तब तक क्या उसका ज्ञान होगा? आँख के द्वारा तुम घड़े तक पहुँचे, यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन आँख के द्वारा घड़े तक पहुँचकर जब तक मन घड़े के आकार का नहीं बनेगा तब तक तो घड़ा नहीं न दीखेगा। इसलिये जब तुम कह रहे हो कि 'हमें घड़ा दीख रहा है', उस समय में भी घड़े के आकार का मन ही दीख रहा है। वेदांत के सत्संगी हो, इसलिये यह बात समझ ही रहे हो। तुम समझ रहे हो कि घड़ा दीखता है लेकिन अब समझना है कि घड़े के आकार का चित्त दीख रहा है। जितना-जितना इसका अभ्यास करोगे कि 'बाह्य पदार्थ नहीं, मेरी वृत्ति ही तदाकार हुई प्रतीत हो रही है,' उतनी ही उतनी पदार्थों की तृष्णा कम होती जायेगी। बाह्य जगत् में बार-बार ले जानेवाली चीज़ बाह्य तृष्णा ही है। बाह्य तृष्णा के कारण ही बाह्य जगत् के पदार्थ हैं और इस तृष्णा के कारण ही मनुष्य बार-बार उनकी तरफ दौड़ता है। जैसे-जैसे समझोगे कि ये सारे पदार्थ केवल चित्तरूप हैं, वैसे-वैसे फिर उन पदार्थों की प्रवृत्ति की तृष्णा कम होती जायेगी। भूताकाश या बाह्य आकाश में पदार्थ जब तक मनुष्य देखता है तब तक पदार्थों की तरफ दौड़ता है। कभी उन्हें सुधारना और कभी बिगाड़ना चाहता है। कभी उन्हें छोड़ना और कभी पाना चाहता है। भगवान् सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि जगत् जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक दीखेगा तब तक तुम्हारी प्रवृत्ति जगत् के प्रति कम नहीं होगी।

ब्राह्मणों का एक अग्रहार था। उसका नाम यज्ञस्थल था। प्राचीन काल में, जहाँ केवल ब्राह्मण रहें उसे अग्रहार कहते थे। वहाँ का एक जमींदार एक बार जंगल में लकड़ी काटने गया हुआ था। लकड़ी काटते समय लकड़ी की एक फाँस उसकी जांघ में घुस गई। बड़े ज़ोर से खून बहा। मूर्च्छित हो गया। किसी व्यक्ति ने उसे देखा और उसे वहाँ से उठाकर घर ले आया। घर में उसकी पत्नी ने उसके घाव को धोया, मल्हम-पट्टी की, वैद्य से सलाह की, दवाई लगाई। लेकिन सब कुछ होने पर भी वह घाव भर नहीं रहा था। बहुत कुछ उपचार किया लेकिन वह कमज़ोर ही होता चला गया। बहुत बड़ा फोड़ा हो गया, पक गया। तरह-तरह के उपचार होने पर भी वह ठीक नहीं हुआ। उस गाँव में एक ब्राह्मण रहता था जो उसका मित्र था। ब्राह्मण ने उससे कहा 'अपने गाँव में पहले एक यज्ञदत्त नाम का व्यक्ति रहता था। उसने एक पिशाच को प्रसन्न किया। पिशाच ने प्रसन्न होकर उसे धन दिया, उसकी गरीबी हट गई और सुखी हो गया। तुम भी यदि उस पिशाच को सिद्ध कर लो तो वह तुम्हारे घाव को ठीक कर सकता है।' वह अत्यंत कष्ट पा रहा था। यहाँ तक कि 'मैं जियूँगा या नहीं' इसमें भी उसे संदेह हो गया था। उसने कहा 'मुझे भी वह मंत्र बता दो।' उसने उसे मंत्र बता दिया और कहा कि 'आधी रात को जिस समय आकाश में पूर्ण अंधकार हो, अमावास्या इत्यादि के पास, बालों को खोलकर नंगे होकर, मुँह में पानी भरकर बिना कुल्ला किये हुये, दो मुट्ठी चावल दोनों हाथों में लेकर इस मंत्र को बोलकर चौराहे पर छोड़ देना। उस समय चाहे जितनी कोई आवाज़ दे, बिना मुड़ कर देखे घर आ जाना। कुछ दिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा करने पर तुमको पिशाच सिद्ध हो जायेगा। लेकिन किसी भी हालत में पीछे मत देखना और मौन मत तोड़ना।' उसने कुछ दिन ऐसा किया और उसे पिशाच सिद्ध हो गया। उसने बहुत आवाज दी लेकिन उसने मुड़कर नहीं देखा। जब वह घर आ गया तो पिशाच आकर उसके पैर में पड़ने लगा 'मुझे कोई भी काम बता दो। तुम जो कहोगे मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगा।' उसने कहा 'मेरा घाव ठीक कर दो।' पिशाच ने कहा 'घाव ठीक करने में क्या लगता है!' वह वहाँ से हिमालय पर्वत पर जाकर संजीवनी बूटी ले आया और जैसे ही उसके घाव से छुआया, उसका घाव भर गया। वह दो दिन में बिलकुल सामान्य हो गया।

अब वह पिशाच उससे कहने लगा 'मैंने तेरा एक घाव भर दिया, अब मुझे दूसरा घाव दे, उसे भरूँ क्योंकि मैं खाली नहीं बैठ सकता। तूने मुझे घाव भरने का काम बताया, अब वही बता।' उसके पड़ोसी के घाव था, उसके कहने पर उसने वह ठीक कर दिया। उसने दस बीस दिन में वहाँ गाँव-कस्बे को खबर कर दी कि जिस किसी के शरीर में घाव हो उसे मैं ठीक कर दूँगा। गाँव-कस्बे के लोग ठीक होते गये। थोड़े दिनों में सब ठीक हो गये। वह पिशाच कहे कि 'मेरे को तो और घाव दो। नहीं दोगे तो मैं तुम्हें ही घाव दूँगा!' वह घबराया और उससे कहा कि हफ़्ते भर बाद आना। उपाय सोचने लगा, उससे न खाया जाये, न पिया जाये। मारे चिंता के अत्यंत व्याकुल था 'क्या करूँ, क्या न करूँ।' उसकी एक विधवा लड़की थी वह कहने लगी 'पिताजी! आपकी तबियत खराब है। आप दुनिया भर के घावों को ठीक कर रहे हैं। आपके ऊपर क्या आपत्ति हो सकती है?' उसने कहा 'यही तो आपत्ति है कि वह पिशाच कहता है कि रोज़ घाव ठीक करने का काम बताओ नहीं तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे ही घाव करूँगा। मैं रोज कहाँ से घाव लाऊँ? गाँव में सब के सब ठीक हो गये है।' उसकी लड़की बड़ी चतुर थी, कहा 'अब की बार आये तो उसे मेरे पास भेज देना। मैं उसे ठीक कर दूँगी।' पिशाच आया तो पिशाच को उसने वह घाव दिखाया जिस घाव से लोग उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। पिशाच मूर्ख तो होता ही है। वह बेचारा संजीवनी बूटी लाया। लेकिन उससे क्या होना है! अंततोगत्वा वह हार गया। हाथ जोड़कर कहने लगा 'मेरी छुट्टी करो। मुझ से तुम्हारी दवाई नहीं हो सकती।' लड़की ने कहा 'मेरे पिता से माफी माँगो।' उसने उसके पिता के पास जाकर कहा 'मेरे को बख्शो। तुमने जो काम बताया वह मैं नहीं कर सकता।' उसने कहा 'चला जा और फिर कभी मत आना।' पिता की भी छुट्टी हो गई।

विचार करो कि यहाँ कौन-सी ऐसी चीज़ है जो कभी भी भरती नहीं? जीवरूपी जमींदार शरीररूपी यज्ञस्थल में रहनेवाला है। जिसको ब्राह्मणों का अग्रहार कहा उसी को यहाँ श्रुति ब्रह्मपुर कह रही है। 'ब्रह्म एव ब्राह्मणः' ब्रह्म को ही ब्राह्मण कहा गया है। अग्रहार में रहनेवाला जीव ही वस्तुतः ब्रह्मपुर में रहने वाला है। वह इस शरीर में क्या करने आया है? यह शरीर यज्ञस्थली है। यहाँ यह परमात्मा को प्राप्त करने का यज्ञ करने के लिये आया है। अपने अंदर उस अहं को खत्म करके ब्रह्माकार वृत्तिरूपी जो भगवती है उसको सर्वस्व आहुति देने के लिये यह मनुष्य आया है। यह मनुष्य शरीर ही वस्तुतः यज्ञस्थल है और यही ब्राह्मणों का अग्रहार है। रोज़ प्रार्थना करते हो 'यज्ञेन यज्ञमयजंत देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्!' प्रथम धर्म अर्थात् जो आदि धर्म है। वह है इस शरीर को ही यज्ञस्थल बनाकर यज्ञ करना। सब यज्ञों के अंत में इसलिये पुरुषमेध यज्ञ आता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जहाँ पुरुष की बलि दी जाती है। बलि का मतलब सिर काटना हीं नहीं! पुरुष की शुद्धि की जाती है। अहंकार को उस भगवती में, ब्रह्माकारवृत्ति में, लीन कर दिया जाता है। उसी भगवती की उपासना आप लोग नवरात्रि में नौ दिन करते हैं। लेकिन जीव की जांघ के अंदर लकड़ी की एक फाँस घुसी हुई है जो इसका घाव पूरा नहीं होने देती। यह जो कामना है, यह कभी समाप्त नहीं होती। पिशाच क्या करता है? जांघ के घाव को भरने के लिये तो वह संजीवनी बूटी लाकर घाव को भर देता है। इसी प्रकार जिस-जिस पदार्थ की कामना होती है, तुम प्रयत्न करके उसे तो पूरा कर लेते हो, लेकिन कामना या तृष्णा स्वयं तो फिर वैसी ही बनी रहती है। मन पिशाच कहता है कि अब एक कामना पूरी हो गई तो दूसरी कामना लाओ। दूसरी लाते हैं तो वह कहता है, तीसरी लाओ। अनादि काल से एक के बाद एक कामना की पूर्ति में लगे हुये हो और मन पिशाच तुम्हारे ऊपर दिन-रात चढ़ा रहता है कि और लाओ, और लाओ।

अब इस मन पिशाच से कभी-न-कभी जीव तंग आ जाता है। तब बुद्धिवृत्तिरूपी अपनी विधवा कन्या से पूछता है 'मैं तो बड़े ही कष्ट में हूँ क्योंकि इस कामना से प्रताडित हुआ निरंतर धोखा खा रहा हूँ।' बुद्धि इसे मार्ग बताती है। कहती है कि परमात्मकामना को तू पूरा कर दे। सारे जगत् को उत्पन्न करनेवाला, दहराकाश में रहनेवाला परमात्मा ही है। उस मन रूपी पिशाच से कहती है 'मेरे हृदय में जो परमात्मा की कामना है, अनंत आनंद की कामना है, वह तू पूरी कर दे।' लेकिन मन पिशाच तो छोटी-छोटी कामनाओं को ही पूरा कर सकता है। अनंत आनंद की, परमात्मा की कामना को पूरा करना इसके वश में नहीं है। जैसे ही इसे इसमें लगाओ तो पहले यह साधन ढूँढता है कि इसके द्वारा मेरा काम पूरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो जाये, लेकिन होता नहीं है। तब मन कहता है 'अरे! यह जो अनंत भूमा की कामना तूने कर ली, इसे मैं पूरा नहीं कर सकता।' तब उसे कहते हैं कि इसे पूरा नहीं कर सकता तो तू जा यहाँ से। 'मनसो हि अमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते' जैसे ही मन गया वैसे ही कामना, तृष्णा अपने आप ही समाप्त है। जब तक बाह्य पदार्थों की कामना करते रहोगे, भूताकाश में जाते रहोगे तब तक तो कभी भी स्थिरता, शान्ति नहीं होनी है। जैसे ही दहराकाश में, चित्ताकाश में मन को लगाया, जैसे ही इसमें मन की प्रवृत्ति की, अर्थात् इस जगत् को देखते हुये ही इसको चित्ताकाश में देखना प्रारंभ किया, वैसे ही यह मन पिशाच अकार्यकारी हो जाता है, कार्य करने में असमर्थ हो जाता है और समाप्त हो जाता है।

'समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसः प्रवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तद् अन्तःकरणेन गृह्यते।।'

समाधि के द्वारा पवित्र मन आत्मा में प्रवेश कर जाता है अर्थात् समाधि की पूर्णता में मन नहीं रहता। तब किसी चीज़ का पता नहीं रहता है। न बाहर की और न अंदर की किसी चीज़ को जानते हो। जिस समय मन समाधि की अंतिम सीमा में लीन हो गया उस समय में यह मन उसी दहराकाश में, आत्माकाश में लीन हुआ है। अपनी सत्ता छोड़े हुये है। जब तक अपनी सत्तावाला था तब तक तो इसके अंदर पूर्णरूप से क्रियाशीलता थी, कार्य करने की सामर्थ्य थी, कार्य कर रहा था। जिस समय उस आत्मा में प्रविष्ट होकर इसकी अपनी सत्ता चली गई तब वह क्रिया कुछ नहीं कर सकता। उसकी क्रिया समाप्त हो गयी। क्रिया समाप्त होते ही जिस सुख की प्राप्ति होती है उस समय का जो सुख या आनंद है वह वाणी से अतीत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दहराकाश के अंदर प्रवेश करने के लिये पहला कदम श्रुति बता रही है कि जो कुछ भी जगत् जिस काल में दीखता है उसको भूताकाश में न देखकर चित्ताकाश में देखो। जो चीज़ दीख रही है वह सिवाय अंतःकरण की वृत्ति के और कुछ भी नहीं दीख रही है। जैसे-जैसे यह स्थिति होती जायेगी वैसे-वैसे अपने आप तृष्णा निवृत्त होती जायेगी और अनंत आनंद में वृत्ति होती जायेगी। यह किस प्रकार होती है इस पर विचार चलेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चदश प्रवचन

९.४.७६

श्रुति ने बताया कि पुण्डरीकाकाश, चिदाकाश के अंदर द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनों छिपे हुये हैं। द्युलोक वह है जिसमें देवता रहते हैं और पृथ्वी लोक वह है जिसमें हम लोग रहते हैं। कर्मफल का दान करना देवताओं का और कर्मफल का भोग करना हम बाकी जीवों का काम है। कर्मफल को भोगने में हम परतंत्र हैं लेकिन कर्म करने में हम स्वतंत्र हैं। दूसरी तरफ, कर्म का फल देने में देवता परतंत्र हैं लेकिन देवता कर्म नहीं कर सकते! देवताओं को कर्माधिकार नहीं है, अपनी तरफ से कुछ करने का अधिकार उनका नहीं है। ब्रह्मसूत्रों में देवताधिकरण में देवताओं की ब्रह्मज्ञान की योग्यता का प्रतिपादन तो किया लेकिन कर्म करने का अधिकार वहाँ भी उनका नहीं माना क्योंकि दूसरा कोई देवता नहीं जिसके निमित्त से वे कर्म करें। द्यु लोक में रहनेवाले देवता परमेश्वर की फलदान-शक्ति व्यक्त करते हैं। पृथ्वी लोक में परमेश्वर की कर्मशक्ति का प्रयोग करनेवाले जीवरूप से कर्म करते हैं। परमेश्वर ही अधिदैवरूप से, देवतारूप से कर्म का फल देते हैं। श्रुति कहती है कि वस्तुतः द्यु लोक अर्थात् देवता कहीं और, तथा कर्म करनेवाले हम कहीं और, लेकिन अपना जो चिदाकाश है, इसके अंदर ही कर्म का फल देनेवाले देवता और कर्म करनेवाले हम, दोनों ही बैठे हैं। जब तक हम अंतःकरण-विशिष्ट रूप से अपने को समझते हैं, अंतःकरणावच्छिन्न रूप से या अंतःकरणवाला अपने को समझते हैं तब तक हमारा कर्म करने का भाव है। जैसे-जैसे अंतःकरण बदलता जाता है उसके अनुसार हम बदल रहे हैं, यह हमारी प्रतीति है। जब तक अंतःकरणविशिष्ट रूप से हम अपने को समझते हैं, अंतःकरण से एक करके समझते हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब तक हम कर्म करने वाले हैं। जहाँ अंतःकरणविशिष्ट है वहीं अंतःकरण-उपहित भी तो है। जैसे जहाँ घड़ा रखा हुआ है वहाँ घड़े के अंदर का आकाश (घटाकाश) और वहीं घड़े के बाहर का आकाश भी तो मौजूद है। घड़े के अंदर यदि हम धूप बत्ती जला देते हैं और घड़े का मुँह बंद कर देते हैं, तो धुआँ घड़े के अंदर रहते हुये घड़े के अंदरवाले आकाश को धूमिल करता है, वही धुआँ घड़े के बाहरवाले आकाश को धूमिल नहीं करता। इसी प्रकार अंतःकरण की परिधि के अंदर अंतःकरणावच्छिन्न चेतन जो अंतःकरण का साक्षी है, वह उससे अस्पृष्ट रहता है। वही वस्तुतः फल देनेवाला है। हृदय के अंदर ही वह बैठा हुआ उपाधिवाला कर्म कर रहा है और उपाधि से अलग जो साक्षीरूप से बैठा हुआ है, वही उसका फलदाता ईश्वर है। वह फलदाता ईश्वर किसी-न-किसी निमित्त से कर रहा है, निमित्त इन्द्रियाँ और मन हैं। मनुस्मृति, सूतसंहिता आदि के अनेक अध्यायों में इसका विचार किया गया कि किस कर्म का क्या फल है। सर्वत्र दृष्टि एक ही हैः शरीर से जो कर्म किया जाये उसका फल शरीर के द्वारा भोगा जाये। इन्द्रियों के द्वारा, मन के द्वारा जो कर्म किया जाये, उसे इन्द्रिय और मन के द्वारा भोगा जाये, उसका बड़े विस्तार से पुराणों में भी वर्णन किया गया। लेकिन हर हालत में, इन इन्द्रियों, शरीरों और मनों के द्वारा जो कर्म किया जाता है उसका फल देनेवाला सांक्षात् ईश्वर ही है। कहीं यम, कहीं इन्द्र, कहीं वरुण के *द्वारा* देता है। तात्पर्य है कि यद्यपि वह साक्षी परमात्मा ही हमारे कर्मों का फल देता है लेकिन यदि हाथ की क्रिया से देता है तो इन्द्र ही उसका अधिष्ठाता है, पैर की क्रिया से देता है तो पैर के अधिष्ठाता विष्णु के द्वारा देता है। यदि जीभ में कोई कष्ट हो जाये तो उसका अधिष्ठाता देवता वरुण है इसलिये वरुण के द्वारा ही वह फल दिया जा रहा है। इस तरह द्यावा-पृथिवी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों इसी आकाश के अंदर हैं। द्यावा के द्वारा कर्मफल देनेवाला साक्षी, और जो कर्म करनेवाला या भोगनेवाला जीव है उसे पृथ्वीरूप से बताया गया।

जब मनुष्य इस बात को समझ लेता है कि वस्तुतः उपाधियों के भेद से कर्म किया जा रहा है और फल भोगा जा रहा है, तब वह जानता है कि कर्म करनेवाले और भोगनेवाले शरीर मन इत्यादि अनात्म पदार्थ हैं। जिस समय घड़े में धुआँ दीख रहा है वह उस समय में भी वस्तुतः उस आकाश को धूमिल नहीं करता है। यह कैसे पता लगता है? यदि उस घड़े को वहाँ से पाँच फीट दूर ले जाकर रख दो तो आकाश तो नहीं ले गये, आकाश जहाँ था वहीं रह गया, लेकिन धुआँ घड़े के साथ चला गया। जहाँ-जहाँ घड़ा पहुँचा वहाँ-वहाँ उस घटावच्छिन्न आकाश के अंदर धुयें की प्रतीति से लगता है कि वह आकाश धूमिल हो गया। लेकिन घड़े के चले जाने पर वह घड़े से परिच्छिन्न आकाश पहले के जैसा निर्मल रहता है। ठीक इसी प्रकार से यद्यपि लगता है कि एक अंतःकरण के अंदर आत्मा, दूसरा अंतःकरण से उपहित आत्मा, तथापि सर्वव्यापक आत्मा होने की वजह से जहाँ-जहाँ अंतःकरण जाता है वहाँ-वहाँ अंतःकरण के दोषों के कारण प्रतीति होती है कि दोष आत्मा में है लेकिन आत्मा निर्दुष्ट है, निर्विकार है। यह दहर विद्या इसी सत्य को समझाने के लिये है। द्यावा और पृथ्वी अर्थात् कर्मफल देनेवाला साक्षीरूप परमेश्वर अंतःकरण से उपहित है और जिस शरीर अथवा इन्द्रिय-मन के द्वारा फल मिलता है उससे अवच्छिन्न वही आत्मा जीव, कर्त्ता-भोक्ता है। अंतःकरण-उपहित कर्मफल देनेवाला और अंतःकरण-विशिष्ट कर्म करनेवाला तथा भोगनेवाला, दोनों इसी पुण्डरीक आकाश में ही हैं।[1]

[1] यह प्रवचन इतना ही उपलब्ध हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षोडश प्रवचन

१०.४.७६

प्रथम मंत्र के अंदर ब्रह्मपुर में दहराकाश, उस में पुण्डरीक और उस पुण्डरीक के अंदर जो आकाश है उस में जो तत्त्व है उसको अन्वेष्टव्य बताया। दूसरे मंत्र में प्रश्न हुआ कि वह जो अति-अल्प आकाश है उसमें हो ही क्या सकता है कि जिसका अन्वेषण किया जाये, जिसकी जिज्ञासा की जाये? उस प्रश्न का जवाब तीसरे मंत्र में दिया जा रहा है। इसमें कल बताया था कि यद्यपि वह आकाश अति अल्प प्रतीत होता है लेकिन वस्तुतः उसके अंदर सब कुछ समाहित है। 'सब कुछ' का नाम लेकर सबसे पहले बताया 'अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते' द्यु लोक और पृथ्वी लोक के द्वारा अधिदैव और भौतिक जगत् बताया अर्थात् जीव और साक्षी दोनों इसमें सन्निहित हैं, यह बताया।

अगली चीज़ कहते हैं 'असौ अग्निश्च वायुश्च' अग्नि और वायु इसके अंदर हैं। अग्नि और वायु बड़े प्रधान देवता हैं। वेद का प्रारंभ ही अग्नि की स्तुति से है। वेद में सर्वाधिक मंत्र इन्द्रदेवता के और उसके बाद अग्निदेवता के मंत्र हैं। सर्वप्रथम अग्निदेवता के मंत्र हैं। इतना ही नहीं, सामवेद की केनोपनिषद् के अंदर जिस समय देवता परब्रह्म परमात्म-तत्त्व का दर्शन करने को प्रवृत्त हुये, उस समय सबसे पहले अग्नि और वायु ही भेजे गये। इससे पता लगता है कि अग्नि और वायु वैदिक विचारधारा में बड़े प्रधान रहे हैं। अग्नि वायु की प्रथमता और प्रधानता को यजुर्वेद में बताया। सामवेद में भी अग्नि और वायु को ही सर्वप्रथम भेजा। तीसरी बार इन्द्र गये। यजुर्वेद के अंदर भी कठोपनिषद् में जिस समय यह समस्या आई कि उस परब्रह्म-परमात्मा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यापकता कैसे समझाई जाये, तो श्रुति ने अग्नि और वायु को ही दृष्टान्त पकड़ा 'अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' (२.२.९) और 'वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टः' अग्नि और वायु दो को ही आत्मा की व्यापकता का प्रतिपादन करने के लिये दृष्टान्त बनाया। सभी श्रुतियों में इस प्रकार आत्मा का अग्नि और वायु से विशिष्ट सम्बन्ध बताया गया। भगवान् भाष्यकार कठोपनिषद् भाष्य में स्पष्ट करते हैं कि 'अग्निः एव स्वप्रकाश आत्मा' अग्नि आत्मा की ज्ञानशक्ति को बतानेवाली है। उसी का अनुवाद करके गीता में भगवान् ने भी कहा 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते' सारे कर्मों को नष्ट करनेवाली ज्ञान-अग्नि ही है।

अग्नि देवता विशेषरूप से ज्ञान को बतानेवाली है, परमात्मा की ज्ञानरूपता का प्रतिपादन करनेवाली है। कई चीज़ें समान होने पर ही प्रतीकता होती है। दो चीज़ें *सर्वथा* एक-जैसी हों तब भी दृष्टान्त नहीं बनता और दो चीज़ें बिलकुल समान न हों, तो भी दृष्टान्त नहीं बनता। अग्नि में दृष्टान्तरूपता इसलिये है कि जैसे अंधकार को अग्नि नष्ट कर देती है उसी प्रकार ज्ञान अज्ञान को नष्ट कर देता है। इतना ही नहीं, जैसे अंधकार के अंदर मनुष्य गिरता है, काँटे चुभते हैं, रस्सी इत्यादि को सर्प आदि समझते हैं, अनेक प्रकार के अनर्थों का कारण जिस प्रकार से अंधकार है, उसी प्रकार अनेक प्रकार के अनर्थों का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य उस परमात्मतत्त्व को अत्यंत सन्निहित होने पर भी नहीं देख पाता। बार-बार वेद आदि का उद्घोष करने पर भी कि वह तुम्हारा आत्मा है, उसे तो देख नहीं पाता, और जिस बात को किसी शास्त्र ने नहीं कहा, उस अनात्म जगत् को देखता रहता है, उसका विचार करता रहता है! भगवान् भाष्यकार कहते हैं 'प्रतिबोध्यमानोऽपि' बार-बार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगाये जाने पर भी आत्मतत्त्व का दर्शन करता नहीं और जिसे कभी नहीं कहा जाता, उस अनात्मा को पकड़ कर बैठ जाता है। कारण अज्ञानांधकार ही है। यह दोनों की समानता है। इतना ही नहीं, प्रकाश उत्पन्न होते ही अंधकार नहीं रहता। ऐसा कुछ नहीं होता कि प्रकाश उत्पन्न होने के बाद कुछ हो और फिर अन्धकार नष्ट होगा। प्रकाश को उत्पन्न करने के लिये चाहे जितने साधन अपनाओ, दीपक, तेल, बत्ती इत्यादि तैयार करो, दीयासलाई ले आओ। दीपक को प्रज्वलित करने के पहले चाहे-जितनी तैयारी कर लो, लेकिन दीप प्रज्वलित होने के बाद दीपक कुछ *करेगा* तो अंधकार नष्ट होगा, ऐसा नहीं। इसी प्रकार, जैसे अंधकार को नष्ट करने के लिये दीपक का प्रयोजन है ऐसे ही अज्ञान को ज्ञान नष्ट करता है। ज्ञान को उत्पन्न करने के लिये जितनी तैयारियाँ अपेक्षित हैं वे ज़रूरी हैं, लेकिन उत्पन्न होने के बाद वह और किसी चीज़ की अपेक्षा नहीं रखता।

तीसरी समानता - केवल अज्ञान को ही ज्ञान नष्ट नहीं करता वरन् जैसे प्रकाश केवल अंधकार को नष्ट नहीं करता, अंधकार से उत्पन्न जितने मिथ्या अज्ञान हैं, जितने भय, कंप आदि हैं, उन सबको नष्ट कर देता है, उनके लिये अलग से चेष्टा नहीं करनी पड़ती, इसी प्रकार जैसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है, उत्पन्न होते ही अज्ञान के जितने कार्य हैं उन सबको नष्ट कर देता है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मात्सर्य आदि सारे के सारे अज्ञान के कार्य हैं। ये जब तक हैं तब तक अज्ञान नष्ट नहीं होता। भगवान् सुरेश्वराचार्य स्पष्ट कहते हैं कि कैसे पता लगे कि हमारे हृदय में ज्ञान का दीपक जल रहा है या नहीं? स्पष्ट चिह्न बताते हैं 'रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु'। कई बार लोग कहते हैं कि कैसे पता लगे कि ज्ञान पूरा हुआ या नहीं? भगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरेश्वराचार्य बड़ी सीधी-सी निशानी बताते हैं कि अज्ञान का चिह्न राग है। राग का मतलब है कि जिस चीज़ में हमको पहले कभी सुख हुआ, जिस अनुभूति से हमें सुख हुआ उस अनुभूति के समय जो कारण सामग्री थी, जिन-जिन चीज़ों की उपस्थिति थी, उनके प्रति शोभनाध्यास कर लेना कि यह सारा अच्छा है क्योंकि इससे सुख हुआ था। यही राग है।

ज्ञान होने से दो चीज़ों का निश्चय हो जाता है। पहली चीज़ यह कि कारण और कार्य में कोई सम्बन्ध नहीं है! 'यावद् हेतुफलावेशः तावद् हेतुफलोदयः' जब तक हेतु अर्थात् कारण और फल अर्थात् कार्य में आग्रह है कि 'कारण से कार्य उत्पन्न होता है,' जब तक यह मन में जमा हुआ है, तब तक कार्य देखकर कारण का अनुमान और कार्य को उत्पन्न करने के लिये कारण सामग्री के इकट्ठा करने की प्रवृत्ति बनी ही रहेगी। राग का प्रयोजन होता है कि हमने पहले किसी कारण सामग्री के अव्यवहित उत्तर क्षण में सुखानुभूति को किया इसलिये मन में यह अध्यास हो गया, अभिनिवेश हो गया, संस्कार बैठ गया, आग्रह हो गया, कि यह-यह चीज़ यदि उपस्थित हो जायेगी तो सुखानुभूति होगी। इसलिये राग पुनः उन्हीं चीज़ों को इकट्ठा करने के लिये प्रवृत्ति कराता है। ज्ञान उत्पन्न होते ही बता देता है कि वस्तुतः कार्य-कारण-भाव है ही नहीं। इसलिये शोभनाध्यास की निवृत्ति हो जाती है। वही कारण-सामग्री होने पर भी वही कार्य उत्पन्न हो, यह ज़रूरी नहीं। सारे के सारे कारण वैसे के वैसे इकट्ठे कर लो, लेकिन वही कार्य उत्पन्न नहीं होगा। दृष्टान्त आप लोगों ने सुन ही रखा है : एक राजा भूखा था, जंगल में जाट की बनाई हुई मक्की की रोटी खाई, बड़ा स्वाद आया, घर आकर कहा कि वही रोटी बनाओ। रानी ने कहा 'बनानी नहीं आती।' जाट ने आकर बनाई लेकिन मज़ा नहीं आया। मज़ा कहाँ से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आये! क्योंकि उस दिन तो वह तीन दिन का भूखा था। वह तीन दिन का भूखापना कैसे वापिस आयेगा! इसी प्रकार जिस समय पुण्य प्रारब्ध होता है उस समय जो कारण-सामग्री इकट्ठी हुई, उस कारण-सामग्री की तो केवल औपचारिकता थी, गौणरूपता थी, वस्तुतः तो पुण्य प्रारब्ध ही सुख देनेवाला था, वह दे गया। दुबारा कारण-सामग्री तो वही इकट्ठी कर लोगे लेकिन वही पुण्य प्रारब्ध कहाँ से लाओगे? इसलिये शोभनाध्यास नहीं रह जाता।

दूसरा कारण राग न रहने का यह है कि राग बाह्य पदार्थों की सत्ता मानकर होता है। बाहर कुछ है - ऐसा मानेंगे तब राग होगा। ज्ञान होने पर पता चलता है कि संसार में केवल दो ही चीज़ें हैं, एक अज्ञात ब्रह्म और एक ज्ञात ब्रह्म। इसके सिवाय तीसरी चीज़ नहीं है। अज्ञात ब्रह्म ही माया शब्द से, ईश्वर शब्द से कहा जाता है, जीव शब्द से आत्मा इत्यादि शब्दों से अभी जैसा ज्ञात है वैसा ब्रह्म कहा जाता है। तुम्हारे अंतःकरण की वृत्ति बनती है - यह तो ठीक है। वृत्ति बनकर लगता है कि हम कुछ देख रहे हैं। आँखें बंद करके लक्ष्मी-नारायण की मूर्ति देखो तो भी वैसी ही दीखती है जैसे आँखें खोलकर बाहर दीखती है। आँखें बंद करके वह मूर्ति बाहर तो देख नहीं सकते, और दीख ज़रूर रही है। इसलिये आँखें बन्द करके आँखों के अंदर ही, अंतःकरण के अंदर ही देखने पर भी बाहर की तरह प्रतीत होती है। इसी प्रकार यह सारा जगत् केवल अंतःकरण की वृत्ति-रूप से प्रतीत होता है। अंतःकरण की वृत्ति अज्ञात ब्रह्म को विषय कर रही है। वहाँ क्या है? जो ब्रह्म बाहर फैला हुआ-सा लग रहा है, वह तो अज्ञात है, उसका पता नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसीलिये शास्त्रकारों ने बताया कि यह जो मन या अंतःकरण है यह इन्द्रियों के द्वारा बाहर जा रहा है। बाहर जो निर्गुण तत्त्व है उसको समझ रहे हैं कि सगुण है। 'ज्ञानमेकं पराचीनैः इन्द्रियैः ब्रह्म निर्गुणम्' एक ही निर्गुण परब्रह्म परमात्मा ज्ञानस्वरूप से सब जगह फैला हुआ है। इन्द्रियों के द्वारा अंतःकरण बाहर जाता है। जिस-जिस इन्द्रिय के द्वारा जाता है वैसा-वैसा उसके ऊपर ढक्कन डाल देता है। जैसे बढ़िया सुन्दर मखमल की रजाई हो और उसके ऊपर खद्दर का खोल चढ़ा दो तो अंदर के मखमल की मुलायमियत छिपी रहती है और खद्दर का कड़ापन प्रकट रहता है। कई बार लोग ऐसी रजाई ओढ़ने को देते हैं तो मखमलवाला हिस्सा ऊपर कर देते हैं और नीचे कड़ावाला हिस्सा रख देते हैं। हम उसे उलटकर ओढ़ते हैं तो कहते हैं कि ऐसे अच्छा नहीं लगता। हम कहते हैं कि मुलायमियत तो हमें चाहिये या तुम्हारी आँखों को चाहिये? लोग कहते हैं कि अपने शरीर पर तो कड़ा हिस्सा रखो, दुनिया को मुलायम दीखे। हम कहते हैं कि मुलायम हमें रखने दो, तुम्हें कड़ा दीखता हो तो दीखे। इसी प्रकार अंतःकरण की वृत्ति इन्द्रिय के द्वारा जाकर अज्ञात ब्रह्म की एक खोल चढ़ा देती है। उस खोल को हम जानते हैं। उस खोल के अंदर क्या है? वह हमेशा अज्ञात है और अज्ञात ही रहेगा। खोल के भिन्न-भिन्न रंग हो गये। इसलिये कहा कि कान के द्वारा वही अंतःकरण की वृत्ति शब्द का खोल, आँख के द्वारा रूप का खोल, जीभ के द्वारा स्वाद का खोल चढ़ा देती है। एक अज्ञात ब्रह्मं और दूसरा जीवरूप से ज्ञात ब्रह्म जो अहंरूप से स्फुरण कर रहा है। 'मैंने घड़े को जाना' आदि रूप से प्रमाता ज्ञात हो रहा है, और 'घड़े को जाननेवाला मैं' - इस बात को साक्षीरूप से जान रहा हूँ, यह ज्ञातवाला हिस्सा है। अग्नि इस ज्ञानवाले स्वरूप को बताती है। वास्तविक ज्ञाननिष्ठा आने पर बाहर केवल एकमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अज्ञात ब्रह्म परमेश्वर है, उसके सिवाय कुछ नहीं है। उसे माया, प्रकृति, मायाविशिष्ट चेतन, किसी भी नाम से कहो, लेकिन है अज्ञात ब्रह्म, अज्ञानविशिष्ट चेतन समझ में आ जाता है।

राग-निवृत्ति के दो साधन बताये - हेतु की निवृत्ति अर्थात् कार्य-कारणभाव की निवृत्ति इसलिये शोभन अध्यास नहीं; और बाहर कुछ है ही नहीं जिसकी प्राप्ति के लिये हम प्रवृत्ति करें - यह बोध दूसरा साधन। जब तक इन दोनों के अंदर प्रवृत्ति है, इन दोनों की तरफ वृत्ति जाती है, तब तक समझ लो कि अज्ञान हमारे अंदर जड़ जमाये बैठा है। 'चित्तव्यायामभूमिषु' भगवान् सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि गहरी नींद या सुषुप्ति में राग नहीं रहता है तो क्या ज्ञान हो गया? आँख बंद करके समाधि लग गई तो राग नहीं, पर क्या ज्ञान हो गया? जिस समय किसी चीज़ को सोच नहीं रहे हो उस समय मन खाली है, किसी पदार्थ के प्रति निवृत्ति-प्रवृत्ति, राग-द्वेष नहीं हैं, तो क्या ज्ञान हो गया? भगवान् सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि उसे ज्ञान नहीं कहेंगे। बल्कि जिस समय चित्त डटकर कसरत कर रहा हो उस समय राग है तो पता चलता है कि अभी अज्ञान है। अखाड़े में जाकर ताल ठोकोगे तब पता लगेगा कि पहलवान हो। घर में तो सभी कहते हैं कि 'मैंने उसे मार दिया, ठीक कर दिया!' उसी प्रकार चित्त में, जब व्यवहार काल आता है, प्रारब्धवेग से पदार्थों की तरफ चित्तवृत्ति जाती है, तरह-तरह का व्यायाम होता है, उस समय क्या रागात्मिका वृत्ति बनती है या नहीं? यदि बनती है तो अबोध बैठा हुआ है। जिस प्रकार सुषुप्ति में अज्ञान बैठा हुआ है, भले ही उसके कारण राग प्रकट नहीं है, इसी प्रकार जब शान्ति से बैठे हो अथवा समाधि में भी अज्ञान चुपचाप बैठा हुआ है, तब भी उसका ज़हर निकला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं। दृष्टान्त से कह दिया कि जैसे पेड़ की कोटर में आग जल रही हो तो वह पेड़ कब तक हरा रह सकता है? अर्थात् यदि हमारे अंदर राग है और ऊपर से किसी तरह तप के बल से, अंतःकरण के नियंत्रण के बल से ज़बरदस्ती हमने उसे दबाकर रखा, तो जैसे ही काल आयेगा फिर वैसा का वैसा राग खड़ा हो जायेगा। इसलिये चाहे बाहर से पेड़ हरा दीख भी रहा है पर अंदर-अंदर जल रहा है तो वह हरियाली टिकनेवाली नहीं है। इसी प्रकार बिना अज्ञान को नष्ट किये हुये, बिना राग को इस प्रकार कारण-सहित नष्ट किये हुये, दबा रखा है तो समय आने पर वह राग फिर खड़ा हो जाता है। श्रीमद्भागवत में सौभरि महर्षि की कथा आती हैः कई हज़ार साल तक तपस्या करने के बाद भी केवल मच्छ-मछली को देखकर उनके मन में कामवासना जाग्रत् हो गई। अतः अग्नि इस ज्ञानशक्ति को बताती है।

और वायु क्रियाशक्ति को बताती है। कठोपनिषद् में 'वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' प्राणरूप वायु को कह दिया। प्राण ही सारी क्रियाओं को करनेवाला है। जब तक मनुष्य में प्राण का स्पन्द है तब तक क्रिया है, प्राण वायु नहीं तो क्रिया नहीं। प्राण में ही परमेश्वर की क्रियाशक्ति प्रकट हो रही है। इसीलिये अपने अंदर, इस आत्मा के अंदर अग्नि और वायु अर्थात् ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियाँ निहित हैं, दोनों बैठी हैं। जितना भी जगत् में विस्तार है वह या तो ज्ञानशक्ति का या क्रियाशक्ति का विस्तार है। ज्ञानशक्ति के द्वारा परमात्मा ने जो सृष्टि की उसे हम क्रिया शक्ति के द्वारा समझ रहे हैं। उस सृष्टि में हम जो परिवर्तन कर सकते हैं, करते हैं। जीव में पंचमहाभूत बनाने की सामर्थ्य नहीं। ये परमेश्वर ने बना दिये। इसी प्रकार अंतःकरण आदि सूक्ष्म महाभूतों के कार्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को बनाने की सामर्थ्य जीव में नहीं, प्राण आदि बनाने की भी उसमें सामर्थ्य नहीं है। यह जो सूक्ष्म महाभूतों के बाद स्थूल पंचमहाभूत बने वहीं से मनुष्य की सामर्थ्य शुरू होती है। 'ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता।' 'मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ' - इस प्रकार पंचमहाभूतों की सृष्टि करके उसमें प्रवेश किया, जीवरूप से बन गया, यहाँ तक परमात्मसृष्टि है। वहाँ जीव क्या कार्य करे, कैसे वहाँ खेले - इसमें उसकी अपनी क्रियाशक्ति काम करेगी।

ये दोनों उसमें सन्निहित हैं। परमात्मा की सृष्टि को जानना और उनके नियमों के अनुसार अपनी क्रियाशक्ति को प्रकट करना - ये दोनों उसी पुण्डरीक में, हार्दाकाश में हैं। वहीं अहं का जब तक स्फुरण होता है तब तक 'मैंने जाना, मैंने किया' ऐसी प्रतीति होती है। पुण्डरीक आकाश के अंदर क्या हो सकता है? - इसका जवाब देते हुये आज बताया कि ज्ञान और क्रिया की शक्ति के माध्यम से सारी सृष्टि में हम जो कुछ भी कर रहे हैं वह भी यहीं सन्निहित है। इसमें और क्या सन्निहित है, इस पर आगे विचार होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तदश प्रवचन

११.४.७६

इस मनुष्य शरीररूप ब्रह्मपुर में मध्य देश के अंदर जो दहर, उसमें जो पुण्डरीक अर्थात् कमल और उस कमल के अंदर जो आकाश और उस आकाश में जो है उसका अन्वेषण करें, उसका अनुभव करें, उसको जानने की इच्छा करें - यह वेद ने प्रतिज्ञा की। प्रश्न हुआ कि वहाँ इतने अल्प आकाश में है ही क्या जिसकी जिज्ञासा की जाये? ऋषि उसका जवाब देते हैं कि यद्यपि यह अत्यल्प आकाश है तथापि इसमें परमेश्वर सब देवताओं सहित, सब कर्मों को करनेवाला जीव, द्यावा पृथ्वी आदि भी विद्यमान हैं। इसी में समग्र ज्ञान और क्रिया की शक्ति विद्यमान है।

आगे कहते हैं कि 'सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि' यह जो तुमको अत्यल्प आकाश लग रहा है, इसके अंदर ही सूर्य और चन्द्र भी विद्यमान हैं। सूर्य और चन्द्र को कालदेवता अर्थात् समय को बतानेवाला कहा गया है। सूर्य और चन्द्र की गति से ही संसार के सब व्यवहारों में काल का निर्णय होता है। तुम्हारी घड़ी काल का प्रतीक है। वह किस प्रकार समय बताती है? वर्ष में जिस दिन सूर्य भूमध्य रेखा पर रहता है, उस दिन ठीक छह बजे सूर्योदय सारे संसार में होता है। अर्थात् भूमध्य रेखा के ऊपर सूर्य के उदय काल में विश्व भर में छह बजे होते हैं। यही काल का निश्चय करनेवाला, घड़ी के समय का निश्चय करनेवाला है। यह दूसरी बात है कि व्यवहार की दृष्टि बनाने के लिये प्रत्येक जगह छह बजे न मानकर के सामान्य व्यवहार के लिये स्थानीय छह बजे के समय को प्रमाण मान लिया गया। लेकिन हर हालत में सूर्य ही काल का प्रतिपादक है। सूर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और चन्द्रमा जब एक-दूसरे के बिलकुल साथ होते हैं तब अमावास्या का दिन होता है। अमा अर्थात् जब दोनों साथ-साथ उदय होते हैं। इसीलिये सूर्य और चन्द्रमा ही तिथि का निर्णय करते हैं। उसके बाद धीरे-धीरे सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा बारह डिग्री आगे बढ़ता जाता है। प्रत्येक बारह अंश की समाप्ति में एक तिथि पूरी हो जाती है। चौबीस अंश हुये तो द्वितीया तिथि समाप्त हो गई। १८० अंश हुये तो पूर्णिमा हो गई। पुनः वहाँ से लौटते हुये पहुँचे तो अमावास्या हो गई। यह काल का विचार है। आगे चन्द्रमा और सूर्य पूर्णिमा-अमावास्या के हिसाब से मासों का निर्णय कर देते हैं। चन्द्रमा पुनर्वसु में पहुँच गया तो कहा जाता है कि आज पुनर्वसु नक्षत्र है, पुष्य में पहुँचा तो उसमें कहा जाता है। यहाँ बता रहे थे कि सूर्य और चन्द्रमा ही तिथि, नक्षत्र, घड़ी, घण्टा सबको निर्णीत करनेवाले हैं।

जैसे काल का निर्णय बाह्य जगत् में सूर्य-चन्द्र करते हैं वैसे ही अपने शरीर में जो बायीं और दायीं नासिका चलती हैं, ये भी काल का निर्णय करती हैं। प्रतिदिन जितनी साँसें चलती हैं, उससे जीवन-काल का पता चलता है। कितनी देर दायीं नासिका चलेगी, कितनी देर बायीं नासिका, पुनः संधिकाल आयेगा तो दायीं तरफ चलेगी, पुनः सन्धिकाल में बायीं तरफ चलेगी, यह निश्चित है। व्यक्ति ठीक २४ घण्टे की समाप्ति में अपने श्वास का निर्णय करके यदि गलत चल रही हो तो उसे ठीक करके चला सकता है। उसकी प्रक्रिया कोई कठिन नहीं है। जिस तरफ की साँस चलानी हो उस तरफ से ऊपर को पसवारा करके लेट जाओ तो श्वास की तरफ बदल जायेगी। मनुष्य प्रातः काल के समय चार बजे उठकर निर्णय कर ले कि कौन-सी नाडी चलानी है जिससे स्वास्थ्य पर कोई खराबी न आये, तो यह करने में सफलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती है। यह भी बताया गया कि किस कार्य को करने के लिये कौन-सी नाडी चले, तो वह क्रिया सफल हो जाती है। छोटे-छोटे नुस्खे होते हैं। किसी से अगर कोई काम आप कराना चाहते हैं, आप चाहते हैं कि वह मेरी बात मान ले, तो जिधर श्वास चल रहा है उसके दूसरी तरफ उस व्यक्ति को रखो तो देखोगे कि अपने अंतःकरण का उस पर अधिक प्रभाव पड़ता है और वह अपनी बात जल्दी मान लेता है।

काल का निर्णायक जैसे बाह्य जगत् में सूर्य-चन्द्रमा वैसे ही अन्तर्जगत् के काल का निर्णय कराने के लिये श्वास व प्रश्वास हैं। इन्हीं को सूर्य नाडी और चन्द्र नाडी भी कहा है। इनसे आंतरिक काल-निर्णय भी होता है; अगर रोज़ सवेरे दस बजे भोजन करने का समय है तो आपको कोई घड़ी देखने की ज़रूरत नहीं है। किसी काम में लगे हो तो अकस्मात् लगेगा 'मुझे भूख लगी है'। बहुत बार आदमी समझता है कि पेट में भूख लगती है। यह विज्ञान का विषय है; भूख पेट में नहीं, दिमाग में लगा करती है! मस्तिष्क में एक केन्द्र है जो भूख का नियामक है और एक प्यास का नियामक है। यहाँ तक वैज्ञानिक प्रयोग किये गये हैं कि यदि उस केन्द्र को कुण्ठित कर दिया जाता है तो उस व्यक्ति को कभी भूख नहीं लगती। हमारे यहाँ योगशास्त्र में कहा गया है 'कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः' कंठकूप में संयम करने से भूख-प्यास की निवृत्ति हो जाती है। कण्ठकूप से एक नाडीविशेष मस्तिष्क में गई हुई है जिसका नियंत्रण करने से भूख-प्यास का नियंत्रण हो जाता है, नतीजा होता है कि भूख प्यास का अनुभव नहीं होता। वैज्ञानिक जिस काम को यंत्रों से करते हैं उसे हम स्वतंत्रतापूर्वक अपनी नाडी के नियमन से कर लेते हैं। दिमाग में ठीक दस बजे भूख लगती है और तुम कहते हो कि भूख लगी है। यहाँ भी वही बात है कि जो श्वास की गति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चल रही है वह अपने आप काल का नियमन कर देती है यद्यपि तुम उसे नहीं देख रहे हो। इसी प्रकार शरीर की अधिकतर क्रियाओं का नियंत्रण होता है।

भोजन करने के कितनी देर बाद हमारा यकृत ठीक-ठीक प्रकार से अम्लों को स्रावित करे कि भोजन ठीक-ठीक पचे। थोड़ा-सा भी विज्ञान का सिद्धान्त जाननेवाला व्यक्ति जानता है कि इन सब कामों में एक एक सैकेण्ड का महत्त्व होता है! यदि नियत समय के पाँच सैकेण्ड पहले अम्लस्राव बढ़ जाये तो मनुष्य के पेट में फ़ोड़ा हो जाता है क्योंकि यकृत इतने तीक्ष्ण अम्ल का स्राव करता है कि यदि उस समय किसी के पेट में अंगुली रख लो जब अम्लस्राव हो रहा हो, तो अंगुली में घाव हो जाये। इतनी तीव्र शक्ति का स्राव होता है। और पेट अंदर से कितना मुलायम है, यह भी जानते ही हो। इतने पर भी घाव प्रायः नहीं होता। किसी-किसी को रोग-विशेष हो जाये तो बात अलग है। इतने समय में भोजन इतने परिमाण में पहुँचा हुआ हो कि वह अम्लस्राव पेट की दीवाल पर न पहुँच पाये और अन्न में मिलकर इतना पतला हो जाये कि पेट की सीमा पर पहुँचने पर प्रभाव न डाल सके तो व्यक्ति स्वस्थ रहेगा। यदि यथाकथंचित् निकलने में देरी हो गई अर्थात् जिस समय निकलना चाहिये था उस समय नहीं निकला, तो भोजन पचेगा नहीं। पेट से नीचे जहाँ भोजन आंतड़ियों में जाने लगा, उसके बाद यदि अम्लस्राव हुआ, तो कोई लाभ नहीं पहुँचायेगा। तब अपच हो जाती है। लेकिन विचार करो, साल में कितने दिन अपच होती है? प्रायः ठीक समय से सारा कार्य हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूस के एक विद्वान् पावलोव ने यह प्रयोग किया : अपने कुत्ते को जब वह भोजन दे, उसके पहले घण्टी बजाये। जैसे ही घण्टी की आवाज़ हो, वह उसे खाने को दे। ऐसा उसने महीने भर तक किया। उसने शल्य द्वारा उसके पेट से एक छेद करके बाहर निकलनेवाले स्राव को इकट्ठा करने का एक उपाय कर लिया। अब उसने घण्टी बजाई, भोजन नहीं दिया। फिर भी ठीक उतनी ही देर में जितनी देर में भोजन कुत्ते के पेट में पहुँचता और अम्लस्राव होता, उस कुत्ते के पेट से अम्ल स्राव हो गया! भोजन पेट में गया नहीं तो उसका नियामक कौन है? जब चार-पाँच दिन ऐसा किया तो स्राव बन्द हो गया। क्योंकि उसके दिमाग में था कि अब घण्टी बजी है तो भोजन आनेवाला है, इसलिये घण्टी सुनकर कुत्ते का दिमाग स्राव के लिये हुक्म दे देता था लेकिन जब पाँच-चार दिन भोजन नहीं मिला तो दिमाग ने समझ लिया कि वह व्यवस्था नहीं रही। उसने निर्णय किया कि भोजन और घण्टी बजने का कोई कार्य-कारण-भाव नहीं है।

संसार के अधिकतर कार्यों में काल का नियंत्रण सूर्यनाडी और चंद्रनाडी से चलता है। इन श्वास-प्रश्वास का भी प्रधान नियामक कौन है? हृदय खून को एक बार दबाता है और पुनः उस खून को ग्रहण करने के लिये फूलता है और वही प्राण-अपान की गति का नियंत्रण करता है। हृदय के केन्द्र में समग्र काल का निर्णय करनेवाला साधन भी मौजूद है। इसलिये काल को चलानेवाला भी वहाँ है। इस सृष्टिचक्र में एक विचित्रता, एक विलक्षणता यह है कि यह सृष्टि अनेक नहीं, एक ही है। जैसे हमारे शरीर में यदि घुटने में दर्द हो रहा हो तो यह नहीं होता है कि घुटने में दर्द हो, और उसका असर सारे शरीर की क्रियाओं पर न हो, क्योंकि शरीर अभिन्न है। एक जगह की कमज़ोरी, एक जगह का दर्द सारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीर पर अपना असर डालेगा ही। अथवा मान लो तुम्हें एक चीज़ की चिंता है कि आजकल बिक्री कम हो रही है इसलिये फ़ायदा कम हो रहा है, धनागम कम हो रहा है। चिंता तो केवल धनागम की है लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बाकी चिंता न हो। जहाँ धनागम की चिंता पूर्ण हुई, लड़की के विवाह की चिंता; और फिर लड़की के बच्चा होनेवाला है, पहला बच्चा अपने घर में कराना पड़ेगा, उसके खर्चे की चिंता। न जाने उस चिंता से सम्बन्धित कितनी चिंतायें हो जाती हैं! नतीजा होता है कि धन का आगम कम होने पर उसको पत्नी का बोलना भी प्रिय नहीं लगता। कहता है 'चुपचाप रहो, बक-बक मत करो।' वह समझ जाती है कि दुकान में बिक्री कम हो रही है। हमारा शरीर और हमारा मन जैसे एक, अक्षुण्ण हैं, इसलिये एक कोने पर असर पड़ा तो सर्वत्र पड़ता है, उसी प्रकार हमारा मनुष्य शरीर और यह ब्रह्माण्ड एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंधवाले हैं। इनमें भी एक-दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। बाह्य जगत् की गति के अनुसार ही अन्तर्जगत् की गति में परिवर्तन होता है।

चौबीस घण्टे में पृथ्वी २१६०० मील चलती है और इतने ही श्वास मनुष्य के शरीर में चौबीस घण्टे में चलते हैं! इसलिये दोनों का आपस में सम्बन्ध है। यह संख्या इधर-उधर नहीं होती, हमेशा एक ही रहती है। इसी प्रकार से जैसे सूर्य और चन्द्र की गति, वैसे ही बाकी सभी ग्रहों की गति है। यदि किसी प्रकार हम अपनी गति पर नियंत्रण कर लेते हैं तो विश्व की गति पर प्रभाव डाल देते हैं, अच्छा या बुरा जो भी हो। कई बार पुराणों में सुना होगा कि किसी ऋषि ने सूर्योदय को रोक दिया। उसने श्वास की गति को इतना प्रधान बना दिया है कि अपने श्वास की गति रोकने के साथ ही सारे ब्रह्माण्ड के सूर्य की गति को रोकने में सफल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो जाता है। साधक थोड़ा-बहुत अभ्यास करता हो तो थोड़ा-बहुत असर होता है लेकिन पूर्ण अभ्यास न होने से असर पूरा नहीं होता है, किन्तु असर अवश्य पड़ता है। जितना-जितना प्रत्येक व्यक्ति का जीवन संयमित होता चला जाता है, उतना-उतना वातावरण में परिवर्तन होता चला जाता है। आजकल प्रायः देखा जाता है कि वातावरण में तरह-तरह की खराबियाँ आ गई हैं। कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की खराबी बाह्य वातावरण पर असर डालती है। वैपरीत्येन, यदि वातावरण ठीक होता जाये तो बाह्य परिस्थितियाँ सुधरती जाती हैं। बाह्य जगत् का नियंत्रण मनुष्य इस प्रकार कर सकता है। इस प्रकार उस अत्यल्प आकाश को कालदेवता से सम्बद्ध बता दिया।

आगे श्रुति कहती है 'विद्युत् नक्षत्राणि' विद्युत् और नक्षत्र भी उसी अत्यल्प आकाश में विद्यमान हैं। जो विशेष प्रकार से चमके उसे विद्युत कहते हैं अर्थात् ज़ोर से चमकना लेकिन स्थिर न रहना। इसलिये 'विद्युत् चंचला चपला च' विद्युत् अस्थिर पदार्थों को बताती है। संसार के जितने अस्थिर पदार्थ हैं और जितने भी नक्षत्र हैं वे सब वहाँ मौजूद हैं। 'नक्ष' धातु का अर्थ होता है जो चीज़ बदलती रहती है। विद्युत् के द्वारा चीज़ दीखी, विशेषेण भान हुआ और खत्म हो गई जैसे अनेक प्रकार के प्रातिभासिक पदार्थ, रस्सी में साँप आदि। आजकल तो एक बड़ा जबरदस्त प्रातिभासिक पदार्थ बहुत दिखाई दे रहा है। लोग कहते हैं कि सम्वत् २०५० में जनसंख्या इतनी हो जायेगी कि 'जनसंख्या विस्फोट' होगा और खाने को नहीं मिलेगा! हम लोगों को यही पता नहीं कि कल सवेरा होगा या नहीं, अणु बमों का खूब प्रयोग हो रहा है। चारों तरफ लोग उसकी तैयारियाँ कर रहे हैं। ऐसे-ऐसे 'आई सी बी एम' बना रहे हैं जो २५ हज़ार मील

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक मार कर सके। पृथ्वी के बाहर नक्षत्रों में उपग्रह को इसीलिये भेजा जा रहा है कि वहाँ से दूसरे पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर सकें। इतनी तैयारी के बावजूद लोग चिंतित हैं कि बीस साल बाद जनसंख्या विस्फोट होगा! यह सब प्रातिभासिक है।

एक आदमी को आधुनिकों की तरह चिंता करने की आदत थी। उसके चार लड़कियाँ हो गई थीं, लड़के भी थे। वह रोज़ चिंता करता रहता था कि 'एक-एक लड़की के ब्याह में बीस-बीस हज़ार रुपया लगाऊँगा तो अस्सी हज़ार निकल जायेगा। तीन लड़कों के ब्याह में तीस हज़ार का सोना लग गया तो इतना निकल जायेगा। कैसे इतना खर्चा पूरा कर सकूँगा?' हमेशा यही चिंता करता रहता था। उसकी पत्नी सत्संगिनी थी। उसे बहुत समझाया, लेकिन माना नहीं। एक दिन जब वह घर आया तो देखा कि पत्नी ने न बर्तन मांजे थे, न कपड़े धोये थे और ऐसे ही पड़ी हुई थी। उसने पूछा – 'क्या तबियत खराब है, काम कुछ नहीं किया?' उसने कहा 'चिंता के मारे परेशान हूँ।' उसने पूछा 'किस बात की चिंता है?' वह कहने लगी –'अपने घर में चार लड़कियाँ हैं, दो लड़के और दो हम, आठ प्राणी हैं। सवेरे-शाम तीन-तीन थालियों के हिसाब से २४ थालियाँ माँजने को हों तो महीने में ७२० थालियाँ हो गयीं। बारह महीने में न जाने कितने हज़ार थालियाँ हो जायेंगी! अगर पचास साल ज़िंदा रहना पड़ा तो मैं तो थालियाँ मांजते-मांजते मर जाऊँगी! यह तो थालियों का हिसाब है। एक दाल और एक साग भी बनायें तो दो कटोरे हो गये जो भी दुगुने हो जायेंगे। और कहीं लड़कों का ब्याह हो गया और बहुएँ आ गयीं तो और ज़्यादा। आगे उनके बच्चे हों तो? कपड़े धोने का हिसाब अलग ही है। मैं तो चिंता के मारे मरी जा रही हूँ, इतना काम मैं कैसे कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकती हूँ?' उसने कहा 'यह सब चिंता छोड़ो। एक दिन में सारा थोड़े ही करना है। रोज़ थोड़ा-थोड़ा करेगी, और साल भी तो पचास हैं ऐसे ही निकल जायेंगे।' तब पत्नी ने कहा 'फिर तुमको ही कौन चारों की शादियाँ एक दिन में कर देनी हैं! धीरे-धीरे सब निकल जायेगा, इसलिये अपनी चिंता छोड़ो।'

इसी प्रकार लोग वर्तमान काल में काम नहीं कर पाते क्योंकि इस चिंता में ग्रस्त हैं और अरबों रुपया इस बात पर खर्च कर रहे हैं कि २०५० विक्रम संवत् में जाकर परेशानी न उठानी पड़े। इसी में परेशान हैं और यही नहीं समझते हैं कि जो व्यक्ति आयेगा वह एक मुँह और दो हाथ लेकर आयेगा, अपना प्रारब्ध लेकर आयेगा। अभी थोड़े दिन पहले पढ़ रहे थे कि भारतवर्ष में कुल उपज का पच्चीसवाँ हिस्सा चूहे खा जाते हैं। चूहों जितना भरोसा भी नहीं है! भगवान् उन्हें खिलाने का इंतजाम करने को तैयार है। कुत्तों और मच्छरों को मारने के लिये अरबों रुपया खर्च होता है और हर साल मच्छर फिर तगड़े के तगड़े आ जाते हैं। क्या भगवान् के हिसाब में मनुष्य ही ऐसा गया-बीता प्राणी है कि हमारे लिये भगवान् ने कोई इंतजाम नहीं सोच रखा है? लेकिन परेशानियाँ मनुष्य को तंग करती रहती हैं। इसी प्रकार विद्युत्वत् संसार के प्रातिभासिक पदार्थों की जो स्थिति नहीं आई, उसका विचार करकर के ही लोग परेशान हैं जैसे शेखचिल्ली ने अपने बस्ते को लात मारी तो खाने के सत्तू से भी हाथ धोया। अतः विद्युत् प्रातिभासिक पदार्थों को बताती है।

नक्षत्र के द्वारा बताया कि संसार के पदार्थ परिणत होते रहते हैं, स्वरूप से नष्ट न होने पर भी एक रूप से दूसरे रूप में बदलते रहते हैं। ये व्यवहार के पदार्थ हैं। पृथ्वी जल आदि व्यावहारिक पदार्थ स्वरूप से नष्ट तो नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते। महाप्रलय में यदि नष्ट भी हो जायें तो अपने कारण अविद्या में ही जाते हैं इसलिये अग्रिम सृष्टि उत्पन्न होने पर पुनः उपस्थित हो जाते हैं। वह तो जैसे गहने को गलाकर सोना बना दिया, वैसे ही पंचमहाभूतों को गलाकर अविद्या में परिणत कर दिया। फिर जब वे जन्मते हैं तब पुनः पृथ्वी आदि रूपों को धारण कर लेते हैं। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, इनकी परम्परा चलती ही रहती है। इसलिये इसे नक्षत्र शब्द से कहा।

जितने प्रातिभासिक और व्यावहारिक पदार्थ हैं, वे सारे के सारे अंतराकाश में मौजूद हैं। विचार करो, पदार्थ कब बनेगा? बाह्य पदार्थ जब तक किसी-न-किसी जाननेवाले से सम्बन्धित नहीं होता तब तक न उसके लिये कोई पद {शब्द} होगा और न वह पद का अर्थ होगा। वहाँ क्या है और क्या नहीं है - यह पदार्थरूपता है। 'गुलाब' एक पद हुआ। उस गुलाब पद का अर्थ हुआ इतने रंगवाला ऐसे दलोंवाला स्थूल पदार्थ-विशेष, उसके रूप रस आदि भी प्रतीत हो रहे हैं। इसका पद गुलाब है और अर्थ ये सब हैं। तभी उसमें पदार्थता आयेगी या शास्त्रीय भाषा में प्रमेय कहेंगे। कोई-न-कोई प्रमाता होगा तभी प्रमेय कहेंगे। इसलिये वस्तुतः जितने भी व्यावहारिक पदार्थ हैं वे भी किसी-न-किसी प्रमाता की अपेक्षा करके ही पदार्थ बनते हैं और प्रातिभासिक पदार्थ तो सर्वथा प्रमाता, ज्ञाता के अधीन हैं। जैसे ही प्रमाता की दृष्टि वहाँ से हटी, उस समय वह पदार्थ नहीं रहा। इतना ही भेद कह सकते हैं कि प्रमाता की दृष्टि हटने पर जहाँ व्यवहारमात्र न रहे वह व्यावहारिक पदार्थ और जहाँ वह वस्तु ही न रहे, वह प्रातिभासिक है। प्रायः प्रातिभासिक व्यावहारिक भेद माना गया है लेकिन कुछ आचार्यों ने दृष्टि-सृष्टिवाद में भेद नहीं भी माना है। इसीलिये इस प्रातिभासिक और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यावहारिक सत्ता को बताने के लिये विद्युत् और नक्षत्र पदों का प्रयोग किया।

'यत् च अस्य इह अस्ति यत् च न अस्ति सर्वं तत् अस्मिन् समाहितं' आगे श्रुति कहती है कि जो यहाँ है और जो यहाँ नहीं है। जो है उसे साक्षी अस्तिरूप से जानता है और जो नहीं है उसे नास्तिरूप से जानता है। इसीलिये संसार के यावत् पदार्थ वेदान्त शास्त्र में साक्षी के द्वारा तो ज्ञात ही माने गये हैं! सम्बन्ध बदल जाता है : एक जगह उसे जाननेवाले सम्बन्ध से और दूसरी जगह न जाननेवाले सम्बन्ध से जाना जा रहा है। लेकिन यहाँ जो कुछ भी है और जो कुछ भी नहीं है, ये दोनों ही साक्षी-प्रत्ययवेद्य हैं अर्थात् साक्षी के द्वारा जाने जा रहे हैं। जैसे 'वाल्डार्फ एस्टोरिया' बहुत अच्छा है, तुम जानते नहीं हो। लेकिन तुमको ज्ञान होता है कि 'यह मेरे अज्ञान का विषय है अर्थात् अज्ञात है अर्थात् अज्ञान सम्बन्ध से मैं उसको जानता हूँ। मेरे अज्ञान का विषय हो गया।' अगर तुमसे कह दिया गया कि वाल्डार्फ एस्टोरिया न्यूयार्क का होटल है तो उसका ज्ञान तुम्हें परोक्ष रूप से हो गया कि जैसे यहाँ होटल हैं ऐसा वहाँ वह है। तुमको हवाई जहाज से ले जाकर उसके कमरे में बैठा दिया तो अपरोक्ष ज्ञान हो गया। लेकिन हर हालत में, एक बार 'मैं नहीं जानता' इस ज्ञान का विषय, और दूसरी बार 'मैं उसको परोक्षरूप से जानता हूँ' यह शब्द और उपमान प्रमाण से जानने का विषय, और तीसरी बार आँख आदि के द्वारा 'अपरोक्ष जानता हूँ' इस ज्ञान का विषय। हर हालत में तुमसे असम्बन्धित नहीं रहा। इसलिये जो है उसे है-रूप से जानना और जो तुम नहीं जानते हो, उसे 'नहीं जान रहा हूँ'- इस रूप से जानते हो। दोनों रूप लिये होने के कारण कहते हैं कि जो कुछ है वह सब इसमें समाहित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरे मंत्र में प्रश्न था कि यह जो अत्यल्प स्थल है, इसमें ऐसा क्या है जिसका अन्वेषण करके कुछ मिलेगा? उसका जवाब इस तीसरे मंत्र में दिया कि सारी चीज़ें यहाँ विद्यमान हैं। यदि इसे समझ लिया तो सब समझ लिया जायेगा।

विचार करो तो सारे विज्ञान का यही नियम है। वैज्ञानिक प्रगति क्या होती है। एक पदार्थ लिया जाता है। उस पदार्थ के अंदर कई हिस्से होते हैं। उन हिस्सों को अलग-अलग करके वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं। यह माना हुआ है कि यदि उन हिस्सों के अलग-अलग हिस्सों का अध्ययन कर लिया जायेगा तो उसका आधारभूत सिद्धान्त बन जायेगा। पहले उन लोगों ने पदार्थों के अणुओं का अध्ययन और अणु जिससे बने थे उन परमाणुओं का अध्ययन और फिर वे परमाणु जिससे बने उस शक्ति का अध्ययन किया। वह शक्ति कहाँ से आई? इस विषय में वर्तमान विज्ञान कुछ कहने मे असमर्थ है! इतना ज़रूर कहता है कि शक्ति ही किसी-न-किसी प्रकार परमाणुओं में और परमाणु अणुओं में परिणत हो जाते हैं। अणु आगे चलकर बाकी सृष्टि, सारा विश्व जगत् बन जाता है। वेदांत कहता है कि उस शक्ति का उद्भावक कौन है? भूताकाश की शक्ति चित्ताकाश से आई और चित्ताकाश की शक्ति चिदाकाश से आई। उस चित् में प्रवेश करके पता चलेगा कि इसका मूल बीज चित् का स्पन्द है। जिसने प्रथम संकल्प कर लिया 'एकोहम्' यह उस अखण्ड चित् का प्रथम स्पन्द है। इस स्पन्द के कारण चिति का निर्माण हुआ। वही शक्ति उस चित् में छिपी हुई है इसलिये आगे सृष्टि-प्रक्रिया कराती रहती है। इसका जो मूल स्रोत है, चित्ताकाश में घुसकर उस चिदाकाश को देखो। देखने में अत्यल्प लग रहा है कि कहाँ अनंतकोटि ब्रह्माण्ड और कहाँ इतनी मात्र इच्छा 'एकोहम्'! बहुत छोटी-सी चीज़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लग रही है। ठीक उसी प्रकार समझ लो जैसे एक क्षण को इच्छा आती है कि मैं अपनी किसी खुजली को मिटाऊँ। बस इतनी-सी इच्छा की परिणति कहाँ होती है? 'पिताजी! आप कुछ समझते नहीं, चुपचाप बैठे रहो, काम करने दो!' कुछ नहीं-सा, अति सूक्ष्म संकल्प था। अगर उस समय नियंत्रण कर लिया होता तो आज कौन कहता कि 'पिताजी तुम कुछ नहीं जानते'? विचार करो, जैसे उस संकल्प का ही यह सारा फल है, इसी प्रकार परब्रह्म ने संकल्प किया 'एकोहम्' मैं एक हूँ; उस समय लगता है कि उस संकल्प में कुछ बल नहीं है। लेकिन तुम्हारे एक संकल्प में जैसे इतनी शक्ति है वैसे उस परब्रह्म परमात्मा की माया के संकल्प में उतनी है जिससे ये अनंतकोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो गये। प्रत्येक चीज़ उसी में निहित है। वहाँ से लेकर महाप्रलय पर्यन्त, और पूर्णज्ञान पर्यन्त, वह चिदाकाश चित्ताकाश की उपाधि में, चित्ताकाश भूताकाश की उपाधि में भिन्न-भिन्न रूप से परिणत हुआ अनंत कोटि ब्रह्माण्डों में परिणत होकर वापिस वहीं आयेगा। अंत में परोक्षत्व भी चला जायेगा, अहंत्व भी चला जायेगा। केवल वही चित् वैसा-का-वैसा रह जायेगा। जिस स्थान पर इसका अनुभव होना है, जहाँ से चित् प्रवहित हो रहा है, लौटकर जब वहाँ उसी स्पन्द में पहुँचोगे, पहुँचने के साथ ही माया निवृत्त होकर स्वरूपस्थिति हो जायेगी। 'तत् सर्वं अस्मिन् समाहितं' रूप से चित् के स्पन्द को पकड़ोगे तो सारी माया की निवृत्ति हो जायेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुबन्ध

११.४.७६

विश्वनाथ संन्यास आश्रम वार्षिकोत्सव
तृतीय दिन सान्ध्य आशीर्वाद

यदि आप आँख बंद करके गुरुमूर्ति का ध्यान करेंगे तो आपको प्रत्यक्ष लगेगा मानो वे स्वयं बोल रहे हैं। एक विलक्षण बात का ध्यान रखना, वह हम आज बताते हैं। सबसे बड़ी चीज़ जो हमारे सामने कठिनाई की है वह है कि एक तरफ शास्त्रों से, गुरुओं से, अनुभवियों से, संतो से बार-बार सुनते हैं कि एक ही तत्त्व है 'एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्'। भिन्न-भिन्न लोगों के द्वारा अनुभवपूर्ण वेदान्त का आप लोगों ने श्रवण किया। उसमें बार-बार बताया गया कि 'तत्त्व एक ही है - अद्वैत ही है।' दूसरी तरफ, आप लोगों को निरंतर अनुभव यह हो रहा है कि यहाँ नानात्व है, चीज़ें अनेक हैं। पुत्र अलग है, पुत्री अलग है, पुत्र उत्पन्न होता है तो थाली बजती है, पुत्री उत्पन्न होती है तो सूपड़ा बजता है। फिर एक कैसे मान लें? यह विरोध है। शास्त्र, गुरु इत्यादि बार-बार अद्वितीय तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं और अनुभव निरंतर हो रहा है द्वैत का। हम इन दोनों के विरोध को हृदय से मिटाना चाहते हैं। यदि न मिटाना चाहते होवें तो सत्संग करें नहीं। मिटाना चाहते तो हैं, लेकिन मिटा पाते नहीं हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है मानो छाती को कोई तौलिये या गम्छे की तरह निचोड़ रहा हो! बार-बार अद्वितीय तत्त्व की तरफ दृष्टि करने का प्रयत्न करते हैं और दृष्टि है कि फिर द्वैत में चली जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका क्या समाधान है? कभी-कभी हथियार डाल देते हैं। मनुष्य कह उठता है कि 'लगता है यह काम हम से होगा ही नहीं। इतना विचार किया, इतना सत्संग किया, ध्यान-धारणा की, लेकिन क्या बतायें, कहीं पहुँच नहीं पा रहे हैं। लगता है जहाँ थे वहीं हैं।' ऐसा प्रतीत होता है। हथियार डाल देते हैं। बात बड़ी सीधी-सी है और वह यह है कि तुमको प्रत्यक्ष अनुभव तो हो रहा है द्वैत का। प्रत्यक्ष अर्थात् इन्द्रिय और मन से तुमको द्वैत का अनुभव हो रहा है। बुद्धि के द्वारा, शब्द के द्वारा, वेद के द्वारा और गुरुवाक्य से तुमको अनुभव हो रहा है अद्वैत का। ये दो भिन्न-भिन्न अनुभव हैं। अब तक हृदय के अंदर एक निश्चित गाँठ बाँध रखी है कि जो इन्द्रिय और मन का अनुभव होता है वह प्रत्यक्ष और इसलिये जो बुद्धि से, शब्द से अनुभव होता है वह परोक्ष है, अप्रत्यक्ष है। मन में यह बीज बैठा हुआ है। विचार की बात बताते हैं, लेकिन अनुभव की बात हैः इन्द्रिय और मन तो द्वैत देख रहे हैं, संसार में भेद देख रहे हैं। बुद्धि को बार-बार वेद के वाक्यों से समझाकर बुद्धि के द्वारा अद्वैत पकड़ रहे हो। ये दो चीज़ें हो रही हैं। अनादि काल के संस्कारों के कारण यह मानते हो कि इन्द्रियों के द्वारा अनुभव अपरोक्ष है, प्रत्यक्ष है, साक्षात् है। शब्द और बुद्धि के द्वारा हुआ अनुभव परोक्ष है, अप्रत्यक्ष है, असाक्षात् है। इसलिये, इन दोनों का विरोध हो रहा है तो प्रत्यक्ष जिसको मानोगे वह जीत जायेगा। तुम क्या कोशिश करते हो? बुद्धि के निश्चय को, श्रुति के निश्चय को इन्द्रिय और मन के द्वारा प्रत्यक्ष बनाना चाहते हो। यह असम्भव चीज़ है। वह जो हृदय चीरा जाता है वह भी इसलिये कि बुद्धि के निश्चय को तुम चाहते हो कि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करो। यही सबसे बड़ा भ्रम है। अपरोक्ष ज्ञान, प्रत्यक्ष या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षात् ज्ञान केवल इन्द्रिय और मन से होवे, यह नियम नहीं है।

जैसे अभी हमारे अभिन्न महामण्डलेश्वर जी ने आप लोगों को बताया, कि 'तू दसवाँ है' इस वाक्य के द्वारा अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है। यह वाक्य सुनकर आँख से कुछ नया दीखा क्या? मन से कोई नई वृत्ति बनी क्या? केवल जो बुद्धि में भ्रम आ गया था कि 'हम नौ हैं,' वह उस वाक्य से दूर हो गया। जीवन में कई बार शब्द से होनेवाला ज्ञान और इन्द्रिय से होनेवाला ज्ञान परस्पर विरुद्ध होते हैं। कई बार ऐसा होता है कि एक आदमी आता है, उसके कपड़े फटे हुये, झुर्रियाँ पड़ी हुई, जूते भी फटे हुये; वह आकर बैठता है। उससे पूछते हैं 'कहाँ से आये, तुम्हारा नाम क्या है?' कहता है 'मेरा नाम लखपतिराम है।' यहाँ शब्द से ज्ञान हो रहा है उसका नाम लखपतिराम, वस्त्र आदि से ज्ञान हो रहा है कि वह खखपतिराम है! क्या दोनों ज्ञानों में विरोध मानेंगे? अथवा लकड़ी टेकती हुई एक अंधी हमें रास्ते में मिलती है, उससे पूछते हैं 'तेरा क्या नाम है?' कहती है 'कमलनयना।' लकड़ी टेक करके चल रही है इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञान है कि चक्षुहीन है, अंधी है, लेकिन वह कह रही है 'मेरा नाम कमलनयना है;' ऐसा तो नहीं मानते कि इसका नाम कमलनयना नहीं है। बल्कि यही मानते हैं कि नाम और रूप दोनों भिन्न-भिन्न हैं, दोनों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। इस विरोध का परिहार करने के लिये, इस विरोध को हटाने के लिये हम डण्डा लेकर पिल नहीं पड़ते। यह नहीं कहते कि 'या तू अपना नाम बदल या तू बिना लकड़ी के चल।' इसी प्रकार से बुद्धि के द्वारा, श्रुति के द्वारा पता लग रहा है कि सारे जगत् में एक अद्वितीय तत्त्व है। इन्द्रियों के द्वारा, मन के द्वारा पता लग रहा है कि यह सारा संसार भिन्न-भिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इन दोनों में विरोध ही नहीं है। इन दोनों निश्चयों में विरोध नहीं है। विरोध केवल एक अंश में है: किसी चीज़ की सत्यता का निश्चय बुद्धि करती है क्योंकि निश्चयात्मिका बुद्धि है। मन और इन्द्रियाँ किसी चीज़ का वास्तविक निश्चय कर नहीं सकतीं। इसलिये जहाँ मन-इन्द्रियों के ज्ञान का बुद्धि के निश्चय से भेद होता है वहाँ बुद्धि का निश्चय सच्चा होता है और मन का विचार झूठा होता है। मान लो हमारे वृद्ध पिता हैं, बड़ी लम्बी उनकी उम्र है, चलना-फिरना उनसे हो नहीं सकता है। इस परिस्थिति में मन और इन्द्रियाँ कहती हैं कि इनकी दवाई पर, इनके पथ्य पर, इनकी सेवा पर जो भी खर्च किया जाये, सब बरबाद होगा, ये आज मरें या छह महीने बाद मरें, कोई फ़र्क नहीं पड़ना है बल्कि आज मर जायेंगे तो दस-बीस हज़ार रुपया राष्ट्र का, मानवता का बच जायेगा! लेकिन बुद्धि कहती है कि पिता पूज्य हैं, घरवाली के गहने बेचकर भी इनकी सेवा की जाये। यहाँ मन-इन्द्रियों का एक निश्चय और बुद्धि का दूसरा निश्चय है। इनमें बुद्धि का निश्चय ही सत्य निश्चय है और मन-इन्द्रियों का निश्चय झूठा है। इसी प्रकार मन इन्द्रियाँ नानात्व देख रही हैं; युक्ति, बुद्धि और श्रुति अद्वैत देख रही हैं तो मन और इन्द्रियों के द्वारा हुआ द्वैत निश्चय मिथ्या है, झूठा है। मन का काम निश्चय करना नहीं है। इसलिये 'एकं ब्रह्मैवाद्वितीयम्' यह सत्य है। बार-बार प्रतिज्ञा करके कहते हैं 'सत्यं' सत्य है। 'न इह नाना अस्ति किंचित्' वस्तुतः नानात्व नहीं है।

मन में शंका रहेगी कि हमारी इन्द्रियाँ और हमारा मन नानात्व देखते क्यों हैं? इसका कारण भी समझ लो : इन्द्रियों की अपनी सीमा है जैसे आँख रूप ही देख सकती है, गंध को नहीं देख सकती क्योंकि यह आँख की शक्ति में नहीं है। इसलिये *गंध* की वास्तविकता का निर्णय आँख नहीं कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकती। आँख किसी चीज़ को देखेगी तो दूरी के हिसाब से उसका रूप बदल जायेगा। चन्द्रमा में लोग घूम-फिरकर आ गये हैं लेकिन यहाँ से चन्द्रमा को देखो तो फिर बित्ता भर का ही दीखता है! सूर्य करोड़ों योजन के विस्तार का है लेकिन फिर भी सूर्य को जब देखोगे तो बित्ता भर का दीखेगा। क्या आँख से सूर्य को बित्ता भर देखने के कारण बाकी सब प्रमाणों से जो निर्णीत है कि सूर्य बित्ता भर का नहीं, उसे झूठा मान लेते हो? उलटा यह निश्चय करते हो कि बित्ता भर दीख रहा है, बित्ता भर दीखता ही रहेगा। झगड़ा नहीं करते कि अगर सूर्य सचमुच करोड़ों योजन लम्बा चौड़ा है तो कब मेरी आँख उसके करोड़ों योजन लम्बे-चौड़े रूप को देखेगी? - ऐसा प्रयत्न नहीं करते हो। बुद्धि का निश्चय अटल होता है, बदलता नहीं है। वह जानता है कि मन और इन्द्रियों की अपनी सीमा के कारण जब वे अद्वितीय को देखेंगी तो अपनी सीमा में देखने से सद्वितीय को देखेंगी। विचार करो, तुम लोग क्या कभी दिल्ली शहर भी देख पाते हो? दिल्ली शहर देखने का मतलब क्या है? किसी ने चांदनी चौक देख लिया, किसी ने विजयनगर, किसी ने डिफेन्स कालोनी और किसी ने सुन्दरनगर देख लिया। वह भी सारा का सारा क्या एक-साथ, युगपत् देख पाते हो? हमको कभी वायुयान से जाने का मौका मिला। उससे भी हमने बड़ा प्रयत्न किया कि सारा दिल्ली शहर दीख जाये, लेकिन नहीं देख पाये। यदि हवाई जहाज नीचा होता है तो अपना घण्टाघर नज़र नहीं आता। घण्टाघर नज़र अगर आने लगता है तो राष्ट्रपति भवन नज़र नहीं आता। थोड़ी देर के बाद जब ऊपर चला जाता है तब कहने को सारी दिल्ली दीखती है, लेकिन बस एक तरफ कुछ रोशनियाँ दीखती हैं! वहाँ से भी न अपना घण्टाघर नज़र आता हैं और न राष्ट्रपति भवन का शिखर नज़र आता है। सारे दिल्ली शहर को एक साथ देखने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारा प्रयत्न आँख से किये जाने पर निष्फल है। लेकिन क्या इसलिये यह मान लेंगे कि दिल्ली नाम का कोई शहर ही नहीं है! जब देखेंगे तब टुकड़े देखेंगे लेकिन बुद्धि का निश्चय है कि दिल्ली एक शहर है, उसका एक मुख्य कार्यकारी पार्षद है जिसका हुक्म सारे दिल्ली शहर पर चलता है। यह सब निश्चय बना रहता है। एक मुख्य कार्यकारी पार्षद होने का निश्चय है जिसका हुकम चलता है, लेकिन रास्ते चलते कभी पुलिस का हाथ दीख जाता है रोकनेवाला, कभी सेल्सटैक्स ऑफिसर आ जाता है, कभी इन्कम टैक्स ऑफिसर आ जाता है। क्या सर्वत्र एक ही मुख्यकार्यकारी पार्षद या प्रधानमंत्री को शासन करते हुये देखते हो? लेकिन इन सब भिन्नताओं को देखते हुये भी दृढ निश्चय है कि राज्य तो एक का है। और यह निश्चय सत्य है, यह भी जानते हो। बुद्धि का निश्चय इन्द्रियों के द्वारा गृहीत होवे, यह आग्रह ही हमें ज्ञान की निश्चयरूपता होने नहीं देता, विचलित कर देता है, हटा देता है और यही हमारी शंका का बीज है।

एक राजा था। वह अपने छोटे पुत्र के छोटे वयस् में रहते हुये ही मर गया। राजा के भाई ने राज्यभार सम्भाला। बच्चा ज़रा बड़ा हुआ तो चाचा ने सोचा कि 'यह बड़ा होकर के राज्य ले लेगा इसलिये इसको किसी तरह से अगर हटा दें तो काम बनेगा।' उसने किसी को धन देकर कहा 'इस लड़के को ले जाकर मार डालो।' और उसी उम्र का एक अत्यंत मूर्ख का लड़का उसने ले लिया और उसको भतीजे के रूप में प्रचारित कर बड़ा करता रहा इस आशा में कि यह लड़का बड़ा होने पर भी मूर्ख ही होगा और राज्य मेरा ही चलता रहेगा। यह उसकी भावना थी। धीरे-धीरे वह मूर्ख राजा बड़ा हो गया। उसको गद्दी पर बैठा दिया गया। वह तो कुछ करने में सक्षम था नहीं इसलिये राज्य बड़े राजा का भाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही करता रहा। धीरे-धीरे वह राजा बुड्ढा हो गया तो उससे भी काम नहीं हो। वह मूर्ख लड़के से कहे भी 'तू क्यों नहीं करता' पर वह कहाँ से करे! धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आई कि उस राज्य पर किसी दूसरे राजा ने आक्रमण किया। अब युद्ध करने कौन जाये? चाचा अपने मन में विचार करने लगा 'यदि आज वह राजकुमार, मेरा भतीजा वस्तुतः राजा होता तो मेरी ऐसी दुर्दशा न होती। अब इस बुढ़ापे में बिना राज्य के जंगलों में जाकर भटकूँगा या मारा जाऊँगा।' उसने जब यह भाव प्रकट किया तो वह व्यक्ति वहीं था जिसको उसने भतीजे को मारने के लिये भेजा था। उसने कहा 'आज आपका भाव देखकर मैं सच्ची बात बताता हूँ कि उस दिन मैंने आपके भतीजे को मारा नहीं था, बल्कि देश के बाहर जाकर छोड़ दिया था।' अब वह विह्वल होकर कहने लगा कि किसी तरह से उसका पता लगाओ। लोग पता लगाने के लिये गये। पता लगाते-लगाते अंत मे पता लगा कि जिस राजा ने आक्रमण कर रखा था उस राजा का सेनापति वही लड़का था!

उसको खबर भेजी। पहले उसने मना किया कि 'यह बात तो गलत है, मैं उधर छोड़कर तुम्हारी तरफ नहीं आ सकता और मुझे कैसे पता कि तुम यह बात ठीक कहते हो।' चाचा ने विचार किया कि इसको निश्चय कराना चाहिये। उससे कहा 'तुम अपनी तरफ के सेनापति हो और मैं राजा हूँ। हम लोग दोनों निःशस्त्र अवस्था में आकर एक जगह कैम्प में मिलें। वहाँ हम लोग एक दूसरे को देखकर समझ लेवें और उसके बाद यदि आवश्यक हो तो युद्ध किया जाये।' यह बात उस सेनापति ने मान ली। दोनों निःशस्त्र अवस्था में एक पटकुटी में जाकर मिले। अब राजा ने उस लड़के को उसके बचपन की बातों को बताना शुरू किया कि उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिन्न-भिन्न अंगों में कहाँ तिल, मस्सा और कहाँ किसी समय चोट लगी थी तो घाव हुआ था। वह सब धीरे-धीरे उसने बताया और दिखाया। अंत में उसके बचपन का एक फोटो निकालकर उसको दिखाया। यह सब देखने पर सेनाध्यक्ष को निश्चय हो गया कि 'वस्तुतः उस राज्य का मालिक मैं हूँ।' उसके चाचा ने कहा कि 'मेरे से गलती हुई। अब तुम ही आकर राजा बन जाओ।' उसने कहा 'ठीक है, लेकिन मैं अपने राजा से मिलकर बात करूँगा।' वहाँ से जाकर उसने अपने राजा को सारी बात बताई कि ऐसी-ऐसी स्थिति है। उस राजा ने भी प्रसन्न होकर के कहा 'तुमने जीवन-भर मेरी भिन्न-भिन्न लड़ाइयों को जीता है इसीलिये आज मैं तुम्हें स्वतंत्रता देता हूँ, तुम वहाँ जाकर राजा बन जाओ।' वह आकर राजा बन गया, वह और उसका चाचा दोनों सुख से रहने लगे।

विचार करो, जैसे यहाँ जब तक उसे निश्चय नहीं हुआ था कि मैं सचमुच राजा हूँ तब तक वह विरोधी था। निश्चय हो जाने पर दूसरी सेना का अधिपति होकर भी उसकी भावना बदल गई। इसी प्रकार ये जीवात्मा है तो परमात्मा का पुत्र लेकिन परमात्मा के जैसा ही मानो दूसरा बहुत बड़ा भाई अज्ञान बैठा हुआ है! यह अज्ञानरूपी इसका चाचा चाहता नहीं कि जीवात्मा मालिक बने। परमात्मा तो जीवात्मा को ही जगत् का अधिपति मानता है। इसीलिये उन्होंने कह दिया 'जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्' उन्होंने तो जीवात्मा को बनाया, उनका पुत्र है, लेकिन यह अज्ञान के संरक्षण में है, अज्ञान के अंतःपाती है, अज्ञान में प्रतिबिम्बित है, अज्ञान से अवच्छिन्न है। अज्ञान ने इसको क्या कर रखा है? देश-निकाला दे रखा है। है तो यह आत्मा, लेकिन रात-दिन अपने को अनात्म जगत् के अंदर ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखता है और अपने आत्मजगत् में इसका प्रवेश कभी होता नहीं। कभी अंतःकरण में घुसा हुआ है। अगर सो भी गया तो अविद्या में घुसा हुआ है 'नाहं किंचित् अवेदिषम्' अज्ञान का अनुभव कर रहा है। जाग्रत् में आ गया तो भी भेदानुभव कर रहा है। निरंतर कोई-न-कोई अनात्म पदार्थ इसके पास रहता है और यह बिना अनात्म पदार्थ के अपने आत्मस्वरूप में स्थिर होता नहीं। वहीं का सेनापति है। कभी मन का शासन करता है, कभी शरीर का शासन करता है। रात-दिन इनकी उन्नति के लिये प्रयत्न कर रहा है। स्वयं सेनापति होकर के कार्य सब कर रहा है लेकिन इसके हाथ क्या पड़ता है? कभी आँख को प्रसन्नता हो जाती है अच्छा रूप देखकर, कभी कान को प्रसन्नता हो जाती है मधुर ध्वनि सुनकर और कभी जीभ को प्रसन्नता हो जाती है बढ़िया सुन्दर लड्डू खाकर। इनको प्रसन्नता होती है और इनकी प्रसन्नता के लिये यह अपना सेनाध्यक्ष का काम कर रहा है।

कभी-न-कभी इसका अज्ञान के साथ निःशस्त्र भाव से मिलन होता है अर्थात् समाधि के अंदर अज्ञान का शस्त्र आवरण नहीं रहता। यही अज्ञान का बहुत बड़ा हथियार है। उसके द्वारा वह तुमको कभी अपनी दृष्टि आत्मा की तरफ ले जाने नहीं देता। समाधि के अंदर अज्ञान का आवरण नहीं रहता। अनावृत अज्ञान हुआ तो उधर आत्मा भी अनावृत है क्योंकि आत्मा उस अज्ञान से हीं तो आवृत था। यही दोनों का मिलना है। मिलने पर वह उसको लक्षण बताता है कि हे आत्मा! सचमुच तेरा लक्षण क्या है?

'अहमस्मि सदा भामि नाहमस्मि कदाऽप्रियः।
ब्रह्मैवाहमतः सिद्धं सच्चिदानन्दलक्षणम्।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरे आत्मा! एक बात बता। तेरा एक चिह्न बताते हैं कि आत्मा कभी न हो ऐसा नहीं है। अभी थोड़ी देर पहले अपने अत्यंत प्रिय स्वामी ओंकारानन्दजी ने आप लोगों को बताया कि आत्मा का जन्म-मरण कभी किसी ने अनुभव नहीं किया। इसी प्रकार आत्मा चिद्रूप है। कभी भी ऐसा नहीं होता कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ; क्योंकि कुछ नहीं जान रहा हूँ - इसी बात को जानता रहता हूँ! कभी ऐसा क्षण नहीं आता जब मुझे अपने आप से प्रेम न हो। सबका प्रेम हट जाता है लेकिन क्या अपना प्रेम भी कभी हटता है? बस, यही ब्रह्म का लक्षण है। यह जैसे ही जीव को पता लगा, पता लगते ही इसने समझ लिया कि मैं वास्तविक राजा हूँ। वास्तविक राजा, जैसे ही अपने को जाना, वैसे ही आत्मराज्य का राजा बन गया। इसका जितना मन का भाव था, वह सारा का सारा दूसरा हो गया। इसी बात को समझना है कि दोनों में कोई विरोध नहीं है।

बुद्धि के विरोध के निश्चय को हम कैसे छोड़ें? प्रारम्भ किया था एक उपाय बताने के लिये, अभी करके देखना : यहाँ परमपूज्य महाराजश्री की श्रुति सुनायेंगे। आँखें बन्द करके उसे ध्यान से सुनना। सुनते हुये उनके रूप का ध्यान करना कि वे यहीं बैठे हुये हैं और प्रवचन कर रहे हैं। ऐसी अपने हृदय में गुरुमूर्ति बनाकर देखना। अब यह विचार करो कि जो तुम देख रहे हो, वह तुम्हारा मन ही देख रहा है या और कोई देख रहा है? देखोगे तो मन से ही। जिस मूर्ति को देखोगे, वह मूर्ति भी कैसी होगी? मनोमयी मूर्ति होगी। जिसको देख रहे होंगे वह भी मन ही और जो तुम देख रहे हो वह भी मन ही है। जो दीखने का काम हो रहा होगा वह भी मन ही है। किस आधार से यह देख रहे होंगे? कान में पड़े शब्द के द्वारा। शब्द बार-बार उनका स्मरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करा रहा होगा। बाकी समय बैठकर सोचोगे तो मन इधर-उधर चला जायेगा। लेकिन यह जो निरंतर शब्द है, इस का श्रवण आपके ध्यान को एकाग्र करेगा। यह तो अभी करने को बताया। ठीक इसी प्रकार घर में भी जब ध्यान करो तो कोई भी अपना जो गुरुमंत्र है, वह स्मारक होगा। उसकी ध्वनि सुन रहे हो, जिसको सुन रहे हो और सुनने की क्रिया; अथवा जो कोई अपना इष्ट है उसे देख रहे हो, जो देख रहे हो और देखने की क्रिया - तीनों एक ही हैं। यह करने का काम है। अभी बैठकर अच्छी तरह करना, तब अभ्यास होगा। घर जाकर नहीं होगा, अभी करने से निश्चय होगा। जब तीनों की इस एकता को देखते हुये एकाग्रता के काल में ध्यान करोगे तब उसका फल यह होगा कि व्यवहार काल में भी जब तुम पदार्थों से व्यवहार करने लगोगे तब भेद देखते हुये भी तुम जानोगे कि मैं ही सत् रूप से जगत् रूप प्रतीत हो रहा हूँ और मैं ही चित्-रूप से द्रष्टा प्रतीत हो रहा हूँ और इन दोनों का सम्बन्ध करनेवाली चाक्षुषी वृत्ति भी मै ही हूँ। इस प्रकार आत्मा का निश्चय ध्यान काल में दृढ होगा, वही फिर व्यवहार काल में स्थिर होता चला जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक

श्रीदक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन

वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi